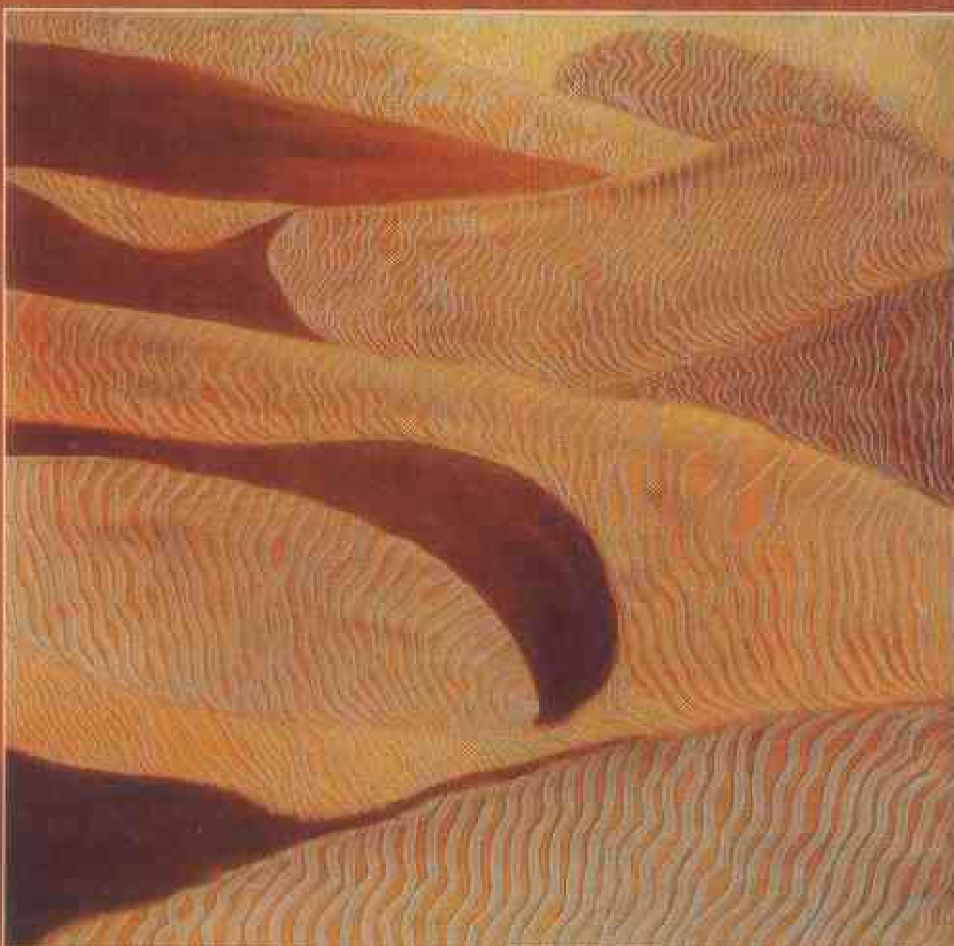
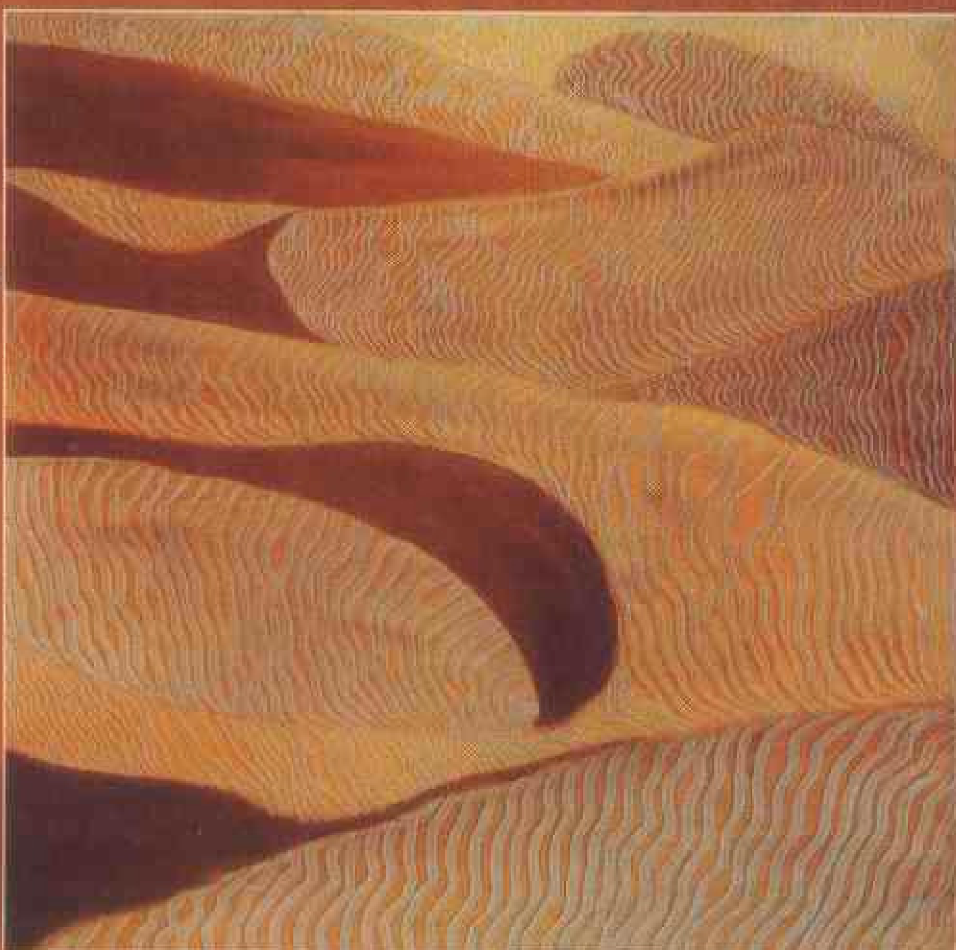
गंधर्व की पहचान

शकुन्तला दुबे



गंधर्व की पहचान

शकुन्तला दुबे



गंधर्व की पहचान

एक मनोवैज्ञानिक होने के नाते मेरी लेखनी ने इस उपन्यास में निरंतर प्रयत्न किया है कि वह किसी अमुक पात्र के प्रति पक्षपात न करे। यद्यपि एक महिला होने के नाते मुझे यह लिखने में संकोच नहीं है कि इस उपन्यास के नायक सत्यवान के व्यवहार की सबसे बड़ी विडंबना को सावित्री ने मानसिक रोगी बन कर भोगा, अन्य पात्रों ने कैसे भोगा और क्यों नहीं भोगा, इसका निर्णय पाठकगण उपन्यास को पढ़ कर स्वयं करें। किंतु इसमें संदेह नहीं कि आधुनिक मनोचिकित्सक सावित्री के मनोरोग का कारण सत्यवान जनित मानसिक त्रासदी को नहीं मानेंगे। यह सब जान कर भी मेरे इस उपन्यास के ताने-बाने में प्रेम संबंधों का तनाव प्रतिध्वनित है, मानो ऐसी स्थिति की तदनुभूति ने मेरे मन में आतंक जगाया है और सभ्य समाज में ऐसे व्यवहार को अवांछनीय और उसके आघात के दुष्परिणाम को कहने के लिए उद्वेलित किया। नायिका सावित्री की मूक वेदना को मुखरित करने के लिए मैंने निजी भावुकता और करुणा से उभर कर उसके व्यक्तित्व विकास को ऐसे ऊंचे आयाम पर पहुंचाया है जिसे मनोविज्ञान में वियोजय-व्यष्टीयन (Speration-Individuation) कहा जा सकता है, बहुधा इसे उदात्तीकरण (Sublimation) भी कहते हैं। किंतु दर्द के लंबे सिलसिले की परिणति उदात्तीकरण बतला कर मेरी संवेदना को ग्लोरिफाई (अत्यधिक श्लाघापूर्ण रूप वर्णन) करना, यह ध्येय नहीं है, ना ही ऐसी विषम स्थिति से उभरने के लिए नारी स्वतंत्रता की समाज में गुहार लगाना। इस उपन्यास की पृष्ठभूमि में पाठकों को सहृदयी और सहयोगी बना कर उन्हें मानवीय संबंधों की सुखद एवं विषम परिस्थितियों से उपजे 'व्यक्तित्व' की मानो सही पहचान करवाने के लिए, मुझे लगा कि साहित्य की शैली—उपन्यास ही इसके लिए सही माध्यम रहेगा। आशा है पाठकगण इस उपन्यास

(शेष दूसरे फ्लैप पर)

ISBN 81-214-0189-5

मूल्य : 250.00

(पहले फ्लैप का शेष)

को पढ़ते समय चेतन और अचेतन मन की परतों को खोल कर पात्रों को समझने का भरसक प्रत्यन करेंगे, केवल कथावस्तु को जान लेने मात्र से अपनी जिज्ञासा समाप्त नहीं करेंगे। मनोविज्ञान की गहन गहराइयों में उतरने के लिए पाठ्कों को तटस्थ होने और सतत संघृत अवधान (Sustained free floating attention) की आवश्यकता पड़ती है। किंतु इस उपन्यास को पढ़ लेने के पश्चात् यदि पाठक अपने आसपास के समाज में ऐसे पात्रों के व्यक्तित्व से टकरा कर उन्हें पहचान कर, सहज उपजी अपनी प्रतिशोध की भावना के आवेग में उन्हें झकझोर (Confront) कर बेनकाब (Unmask) कर देना उचित समझते हों तो उनसे मेरा सविनय निवेदन है कि यह अधकच्चा मनोविज्ञान कहलायेगा। 'व्यक्तित्व' के विकास में एक साथ बड़ी विरोधी प्रेरणाएं निरंतर सक्रिय रहती हैं, इन्हीं अंतर्विरोधी प्रवृत्तियों से हमारा मन चेतन और अचेतन की परतों में बंट जाता है। मनुष्य केवल परिस्थितियों का दास बन जाता है, जो उसे मानवीय गुणों से अधिक पशुवत् व्यवहार करने के लिए उद्वेलित करता रहता है।

There are two ways to know the reality. If you want to know objective reality, then Science is the way out. If you want to know subjective reality, then turn to Spirituality. Three pillars of Self Confidence are: Feeling good, taking responsibility and developing the ... Our worldly works earn us a living and our inner work (Sadhana) earns us the bliss of an enlightened life.

लो विदका को शुभि

नेशनल पब्लिशिंग हाउस

2/35 अंसारी रोड, दरियागंज, नयी दिल्ली-110002

शाखा

चौड़ा रास्ता, जयपुर

इस उपन्यास की घटनाएं, पात्र आदि कल्पना पर आधारित हैं। किंतु कथावस्तु के निरूपण में आधुनिक सभ्य समाज की विसंगतियों पर प्रकाश डाला गया है। अतएव, कदाचित् समानता का आभास हो जाना केवल एक संयोग माना जाये। इस उपन्यास को बाल-अवस्था में पढ़ना वर्जित है।

मूल्य : 250.00

नेशनल पब्लिशिंग हाउस, 2/35 अंसारी रोड, दरियागंज, नयी दिल्ली-110002 द्वारा प्रकाशित / प्रथम संस्करण : 2005 / © शकुन्तला दुबे / कलरप्रिंट, विश्वासनगर, शाहदरा, दिल्ली-110032 में मुद्रित।

[ISBN 81-214-0189-5]

e-mail : sales@nationalpublishinghouse.com

Fax : (011) 23254407

प्रस्तावना

गंधर्वों का कामातुर आकर्षण सुंदर कन्या और तरुणियों पर ही होता है। शायद आप भी जानते होंगे। भोले ग्रामवासी तो अपनी सयानी लड़की के विवाह में तनिक भी देरी नहीं करते, क्योंकि लोकमान्यता है कि गंधर्व का आवेष पज़ेशन (Possession) हो जाने पर उस कन्या का झाड़-फूंक द्वारा उपचार करवाना पड़ता है। संस्कृत की एक पुरानी कहावत है—'योषित् कामा वै गंधर्वाः'। अस्तु भारतीय जनमानस इस लोकमान्यता से कब तक त्रसित रहेगा। मनोविश्लेषण की चिकित्सा द्वारा व्यक्तित्व के उपचार का सतत अनेक गत वर्षों से मेरा व्यवसाय रहा है। इस व्यवसाय में जुड़े लोगों को पाश्चात्य एवं साहित्य में साइकोएनालिटिक साइकोथेरापिस्ट (Psychoanalytic Psychotherapist) के नाम से जाना जाता है। इस उपचार को आर्थिक अभाव के कारण अमेरिका जैसे संपन्न देश में साधारण लोगों के लिए करवाना संभव नहीं हो पाता। सौभाग्यवश मुझे इस उच्चस्तरीय प्रशिक्षण के लिए अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान (ए.आई.आई. एम.एस., नयी दिल्ली) द्वारा सन् 1969-71 फुलब्राइट फेलोशिप (Fulbright Fellowship) के अंतर्गत न्यूयार्क शहर के एक प्रख्यात संस्थान में भेजा गया और मुझे इस प्रशिक्षण पर आधारित चिकित्सा प्रणाली को मुक्त रूप से (बिना फीस लिये) उपचार करने एवं अपने शोधकार्य को अनेक वैज्ञानिक लेखों और अन्य पुस्तकों में प्रस्तुत करने के लिए प्रोत्साहन मिलता रहा है। संस्थान से सन् 1995 में अवकाश प्राप्त करने के बाद भी मैं इस व्यवसाय में 'मनोबल स्टडी' नामक एक ग़ैर-सरकारी संस्था में सक्रिय हूं।

साहित्य चर्चा में स्वर्गीय जैनेन्द्र जी से मैंने घंटों उनके स्त्री-पुरुष के संबंधों का मनोवैज्ञानिक लेखा-जोखा किया किंतु यह वैज्ञानिक चिंतन अब तक आधा-अधूरा रहा है। कदाचित् इसीलिए मेरी लेखनी चल पड़ी सत्यवान-सावित्री की एक पौराणिक कथा का चोला पहना कर आधुनिक सत्यवान-सादित्री की इस त्रिकोणी ट्रेजडी को उजागर करने। इस उपन्यास के पाठकगण, आप अपनी अपनी दृष्टि, संवेदना, परिवेश की सीमा और मान्यताओं के अनुसार इन काल्पनिक पात्रों के मनोविज्ञान को समझने के लिए स्वतंत्र हैं। लेकिन स्मरण रहे कि एक मनोवैज्ञानिक होने के नाते मेरी लेखनी ने इस उपन्यास में निरंतर प्रयत्न किया है कि वह किसी अमुक पात्र के प्रति पक्षपात न करे।

यद्यपि एक महिला होने के नाते मुझे यह लिखने में संकोच नहीं है कि इस उपन्यास के नायक सत्यवान के व्यवहार की सबसे बड़ी विडंबना को सावित्री ने मानसिक रोगी बन कर भोगा, अन्य पात्रों ने कैसे भोगा और क्यों नहीं भोगा, इसका निर्णय पाठकगण उपन्यास को पढ़ कर स्वयं करें। किंतु इसमें संदेह नहीं कि आधुनिक मनोचिकित्सक सावित्री के मनोरोग का कारण सत्यवान जनित मानसिक त्रासदी को नहीं मानेंगे। यह सब जान कर भी मेरे इस उपन्यास के ताने-बाने में प्रेम संबंधों का तनाव प्रतिध्वनित है, मानो ऐसी स्थिति की तदनुभूति ने मेरे मन में आतंक जगाया है और सभ्य समाज में ऐसे व्यवहार को अवांछनीय और उसके आघात के दुष्परिणाम को कहने के लिए उद्वेलित किया। नायिका सावित्री की मूक वेदना को मुखरित करने के,लिए मैंने निजी भावुकता और करुणा से उभर कर उसके व्यक्तित्व विकास को ऐसे ऊंचे आयाम पर पहुंचाया है जिसे मनोविज्ञान में वियोजय-व्यष्टीयन (Speration-Individuation) कहा जा सकता है, बहुधा इसे उदात्तीकरण (Sublimation) भी कहते हैं। किंतु दर्द के लंबे सिलसिले की परिणति उदात्तीकरण बतला कर मेरी संवेदना को ग्लोरिफ़ाई (अत्यधिक श्लाघापूर्ण रूप वर्णन) करना, यह ध्येय नहीं है, ना ही ऐसी विषम स्थिति से उभरने के लिए नारी स्वतंत्रता की समाज में गुहार लगाना। इस उपन्यास की पृष्ठभूमि में पाठकों को सहृदयी और सहयोगी बना कर उन्हें मानवीय संबंधों की सुखद एवं विषम परिस्थितियों से उपजे 'व्यक्तित्व' की मानो सही पहचान करवाने के लिए, मुझे लगा कि साहित्य की शैली-उपन्यास ही इसके लिए सही माध्यम रहेगा। आशा है पाठकगण इस उपन्यास को पढ़ते समय चेतन और अचेतन मन की परतों को खोल कर पात्रों को समझने का भरसक प्रयत्न करेंगे, केवल कथावस्तु को जान लेने मात्र से अपनी जिज्ञासा समाप्त नहीं करेंगे। मनोविज्ञान की गहन गहराइयों में उतरने के लिए पाठकों को तटस्थ होने और सतत संघृत अवधान (Sustained free floating attention) की आवश्यकता पड़ती है। किंतु इस उपन्यास को पढ़ लेने के पश्चात् यदि पाठक अपने आसपास के समाज में ऐसे पात्रों के व्यक्तित्व से टकरा कर उन्हें पहचान कर, सहज उपजी अपनी प्रतिशोध की भावना के आवेग में उन्हें झकझोर (Confront) कर बेनकाब (Unmask) कर देना उचित समझते हों तो उनसे मेरा सविनय निवेदन है कि यह अधकच्चा मनोविज्ञान कहलायेगा। 'व्यक्तित्व' के विकास में एक साथ बड़ी विरोधी प्रेरणाएं निरंतर सक्रिय रहती हैं, इन्हीं अंतर्विरोधी प्रवृत्तियों से हमारा मन चेतन और अचेतन की परतों में बंट जाता है। मनुष्य केवल परिस्थितियों का दास बन जाता है जो उसे मानवीय गुणों से अधिक पशुवत् व्यवहार करने के लिए उद्वेलित करता रहता है।

—शकुन्तला दुबे

238, मुनीरका विहार
नयी दिल्ली

एक

यह प्रेम संवाद किसी गहन जंगल में एक सावित्री ने सत्यवान को देख एकाएक किसी अलौकिक प्रेरणा से ओत-प्रोत हो कर नहीं किया, यह तो महानगरी के एक संभ्रांत बस्ती के बीचोंबीच की दुर्घटना है। दो आहत हुए स्त्री-पुरुष एक तनावपूर्ण जीवन घटनाचक्र में गत कई वर्षों से प्रभावित होते गये, उन दोनों में लंबे समय तक प्रेम प्रसंग चलता रहा, किंतु इनका मिलन-बिछोह एक ऐसे बिंदु पर आ पहुंचा जहां पहुंच कर उनकी शारीरिक आवश्यकताएं सामाजिक मान्यता के लिए छटपटाने लगीं।

मानव समाज की संरचना में गृहस्थ जीवन का अपना स्थान है क्योंकि दांपत्य बंधन का समाजीकरण शारीरिक इच्छाओं की पूर्ति और अभिव्यक्ति सहज कर देता है, जैसे घर में हवा, पानी, भोजन आदि सब कुछ सहज उपलब्ध हो जाता है। जब कभी शारीरिक भूख असहनीय बन मनुष्य को विचलित कर बाध्य कर देती है कि वह उस क्षुधा को तुरंत शांत करे, विशेषकर प्रेम की विफलता की स्मृतियों के कारण जो तनाव अवचेतन में बना रहता है, समय की तेज़ रफ्तार में धूमिल पड़ जाने के बजाय वे स्मृतियां, पैनी हो कर रात्रि के सघन अंधकार में विचारों का ताना-बाना बना कुछ ऐसा रौद्र रूप धारण कर लेती हैं कि विरहाकुल व्यक्ति सो नहीं पाता। ऐसी त्रासदी की क्या मानसिक परिणति होती है, आप कल्पना भी नहीं कर सकते। इस कथा की नायिका सावित्री ने अपने को ऐसे तनाव से मुक्त होने के लिए अपने प्रेमी सत्यवान का एकाएक शपथपूर्वक परित्याग किया। यह जान कर आप विचलित न हों, इस कथानक को जान लेने से आपका सावित्री के इस भावनात्मक आत्मदाह के प्रति संवेदनशील हो उठना स्वाभाविक है।

माना प्रेम का संवेग आदिकाल से स्त्री-पुरुष में अद्भुत संचारी भाव पैदा करता आया है, किंतु विरले प्रेमी इस आकर्षण में आ जाने के बाद अपनी भूख, प्यास, नींद आदि खो देते हैं। बहुधा प्रेमीजन अपने जीने की इच्छा को नहीं खोते हैं, परिणामतः उसने हमारी नायिका सावित्री को नष्ट करके रख दिया।

पौराणिक कथा की नायिका सावित्री ने यमराज से अपने सत्यवान को जीवित करने के वाक्‌युद्ध में अपने जीने की इच्छा को नहीं खोया था, उसने तो अनेक पुत्रों की मां बनने का वरदान यमराज से मांगा था। लेकिन इस उपन्यास की नायिका सावित्री पढ़ी-लिखी अति आधुनिक होते हुए भी, प्रेम के संचारी भंवर में फंस कर सत्यवान को

अपनी कल्पना के ताने-बाने में संजो, जन्म-जन्मांतर तक उसे अपना पति मान बैठी। अतएव, उसकी चरमनिष्ठा और अटल विश्वास के कारण उसे इस उपन्यास की नायिका होने का गौरव प्रदान किया जा रहा है।

आधुनिक भारतीय जनमानस में बसी सावित्री-सत्यवान की कथा का बड़ा महत्त्व है, क्योंकि उसे भारतीय नारी की अस्मिता से जोड़ दिया गया है। नायिका सावित्री को इस आधुनिक परिवेश में प्रस्तुत करने के पश्चात पाठकगण को बतलाना आवश्यक हो गया है कि जब सावित्री ने सत्यवान से शपथपूर्वक परित्याग ले लिया तब उसे सती-सावित्री का गौरव कैसे प्रदान किया जा सकता है? इस उपन्यास की अंतिम जीवन घटना को पाठकगण के समक्ष पहले से प्रस्तुत करने का लक्ष्य उन्हें समय-काल आदि की सीमा को लांघ कर नायिका सावित्री के पूर्ण विश्वास से जोड़ देना है, क्योंकि हमारी सावित्री का पौराणिक कथा की नायिका जैसा ही पूर्ण विश्वास है कि उसका सत्यवान इस संसार में जहां भी होगा केवल वह उसका ही प्रेमी है। इस जन्म में क्या (हो सकता है कि सत्यवान आजकल इस संसार में नहीं है, परलोक में हो) अनेक जन्मों से वह उसका पति है इसलिए सावित्री को देखते ही सत्यवान विवाहित होते हुए भी मोहित हो उठा। यह अलौकिक शक्ति की प्रेरणा है जिसके वरदानस्वरूप जन्म-जन्मांतर तक उनका मिलन-बिछोह होता रहेगा।

पाठकगण इसे नियति का कठोर नियम मान करके न चलें। कथा विस्तार से जान लेने की जिज्ञासा मात्र से इस उपन्यास को उलटा (अप साइड डाउन) करके क्या इसका विश्लेषण किया जा सकता है कि सावित्री ने क्यों, कब और कैसे सत्यवान का परित्याग कर अपना आत्मदाह किया? संसार में हमारा ज्ञानबोध इस पर निर्धारित रहता है कि हमारी आंखें तसवीर के किस कोण पर टिकी हुई हैं और किसे उसका बाहरी दायरा समझ बैठी हैं। अकसर हमारी दृष्टि इन्हीं नये नये आयामों को खोज कर देखने में भ्रमित हो जाती है। इस उपन्यास की नायिका सावित्री, जो प्रेमी सत्यवान की परम प्रिया आह्लादिनी शक्तिरूपा, सहचरी रही थी, परित्याग के दृढ़ निश्चय के बाद परित्यक्ता, मायावी आदि का चोला पहन नायक के पास खड़ी हो अपने परित्याग के अभिनय में सफल हो जाती है। सत्यवान से बिदा ले लेने के बाद वह फिर खंडिता नायिका रात्रि के सघन अंधकार में आशाद्वीप जलाये प्रतीक्षा में बैठी रहती है कि शायद उसे खोजते हुए उसके जन्मांतर का पति वापस आ जाये। दोनों के इस प्रणय में परस्पर विश्वास की एक सी लगन होती तो अवश्य ही हमारे नायिका-नायक का मिलन संभव था, लेकिन इस कथानक के नायक सत्यवान का प्रेम क्षणिक आवेश में एक विवाहित कामुक पुरुष का कुछ काल तक दुर्व्यसनवश पथभ्रष्ट हो जाना मात्र था। उसने सावित्री से परित्यक्त हो कर यह जानने की कोशिश ही नहीं की कि क्यों उसकी सावित्री एकाएक शपथ ले कर उसका परित्याग कर बैठी? सत्यवान इस निश्चय को सुन कर अवश्य दुखी और अवाक् हुआ था।

अपने समस्त पुरुषत्व के बल से प्रहार करते हुए बोल उठा था, ''अब तुम्हें अपने जीवन में मेरी कोई आवश्यकता नहीं रही है। कितने सालों से मैंने प्यार किया है। अपनी पत्नी को छोड़ कर तुम्हें प्रेम दिया, केवल इसीलिए तुम्हारे पास पागलों की तरह भाग भाग कर आता रहा हूं। तुमने मुझे मन-प्राण से अपना सब कुछ माना, मुझे अपना शरीर सौंप दिया, फिर अपनी निजी ज़रूरतों को पूरा करने के बाद आज मुझे छोड़ कर क्यों जा रही हो?''

''बस, चुप रहिए, आपकी समझ में मेरा समर्पण केवल निजी ज़रूरतों को पूरा करने के लिए था,'' कह कर सावित्री का गला भर आया। नारी हृदय की कोमल भावनाओं पर आघात लग जाने के कारण सावित्री कुछ कहने-सुनने में असमर्थ थी। सत्यवान ने आगे बढ़ कर सावित्री के निढाल शरीर को अपने प्रेमपाश में बांध लेने का दुस्साहस किया किंतु दर्पित सिंहनी की तरह सावित्री ने अपने शरीर को बंधन मुक्त करके कहा, ''मुझे छूने का प्रयत्न न करें। आपकी समझ में हमारा पवित्र संबंध केवल शारीरिक भूख मात्र था जिसे आप··· लेकिन अब आपकी समझ में जो आये, उसे मान कर चलें, यही कटु बातें हम दोनों को सदैव के लिए अलग हो जाने की प्रेरणा दे सकेंगी। आपके ये शब्द मेरे कानों में गूंज गूंज कर हमारे भावनात्मक बंधन को जला कर रख देंगे।''

''लेकिन तुम्हारे एकाएक इस कठोर निर्णय से मुझे चोट लगी है। क्या यह मृत्यु के समान मेरे लिए असहनीय वेदना नहीं है?'' सत्यवान ने खीज कर पूछा।

''मृत्यु आ जाने पर सारा परिवार एकजुट हो कर रोता है, सब रिश्तेदार, मित्र शोक मनाते हैं, किंतु हमारे संबंध विच्छेद पर आंसू बहाने वाला यहां कोई नहीं है। आपके मन में मेरे प्रति जो घृणा, क्रोध, अवहेलना उपज आयी, उस अन्याय की सुनवाई किस न्यायालय में की जा सकती है? संसार के किसी न्यायालय में अपील नहीं की जा सकती,'' कह कर सावित्री कुछ देर के लिए ठगी, मौन सत्यवान की आंखों में भरी घृणा को आत्मसात् करती रही। मन ग्लानि से भर उठा। जो बात अपने अंतःकरण को छू जाती है, उसे मुंह से कहने की क्या ज़रूरत थी?

सत्यवान को यह मौन असहनीय लगने लगा। उसने सावित्री के हाथ को अपने हाथों में बांध लेने की पुनः कोशिश की। सावित्री की चेतना उस स्पर्श से हिल गयी, अपनी नयी स्वतंत्रता व्यवहार में लाने के प्रयास में वह बोल उठी, ''आपके लिए कुछ करना जीवन में कभी असंभव नहीं रहा है, किंतु मेरा यह निश्चय मृत्यु के समान है। एक बार अचानक आ जाने पर जिसे टाला नहीं जा सकता।''

''यह मृत्यु तो हार्ट अटैक (हृदय आघात) सी है, जीवित शरीर पर मानो बिजली एकाएक कड़क कर गिर पड़ी हो,'' सत्यवान ने क्रोधित हो कर सावित्री को ललकारते हुए पूछा, ''मुझसे प्रेम का नाटक क्यों किया था?''

सावित्री ने धीरज से कहा, ''यदि मुझे किसी न्यायालय में जा कर अपने लिए न्याय मिलने की आशा होती तो मैं कदापि इस निर्णय को न लेती। प्रेम तो मैंने पूर्वजन्म के

बंधनवश किया किंतु आपसे विवाह न करने का निर्णय···"

सत्यवान ने वाक्य को पूरा होने से पहले टोक कर सुझाव दिया, "तो क्यों न तुम किसी न्यायालय की खोज करो? मैं तुम्हें पूरे विश्वास से कह सकता हूं कि न्याय अवश्य मिलता है। मैं हाई कोर्ट से अपना केस हार चुका था, बिलकुल निराश हो गया था, लेकिन मुझे सुप्रीम कोर्ट में केस दाखिल करने का परिवार के लोगों का सुझाव मानना पड़ा। मेरी पत्नी और उसके मायके वालों का यह चमत्कार था, कहते हैं, सुप्रीम कोर्ट में जा कर जीत अवश्य होती है," कह कर सत्यवान शून्य में ताकने लगा, जैसे किसी गंभीर समस्या के समाधान की सोच में फंस गया हो!

"मेरा केस बहुत जटिल है। मुझे पता नहीं है, किस न्यायालय में जा कर अर्जी दूं, कौन वकील मेरा केस ले सकेगा, फिर इतने समय तक इस अन्याय के प्रति मैंने उत्कंठा तक नहीं की है। मैं अपने जीवन के सांध्यकाल में न्याय की अपील (प्रार्थना) करने का साहस कैसे जुटा सकती हूं? मुझे तो आपसे कुछ कहना-सुनना नहीं है, आपके दुर्व्यवहार की निंदा सुनना मेरे लिए असहनीय है, आप पर दोषारोपण करने से मुझमें स्वयं अपराध भावना जाग्रत हो आयी है। जैसे सुतली की रस्सी में कहीं बट लग जाने पर वह कट कर रह जाती है, ऐसे अपराधबोध के साथ किसी न्यायालय में अपील नहीं की जा सकती। यदि मैंने यह निर्णय पहले ले लिया होता तो इतने सालों तक मुझे मानसिक त्रासदी की घुटन से कब का छुटकारा मिल गया होता," कह कर सावित्री मौन हो गयी।

सत्यवान उसकी अंतरतम की पीड़ा को देख भावुक हो बोल उठा, "अरे, तुम तो सावित्री हो, यमराज को भी बाध्य कर सकने में सशक्त, आज क्यों एकाएक इतनी टूट गयी हो?" कुछ देर चुप रह कर पुनः बोला, "मेरा दोष क्या है? मैंने अपनी पत्नी को तन दिया, तुम्हें मन दिया है। इस तरह से इतने सालों तक समझौते करने में मैंने कितनी बार अपनी पत्नी से झूठ बोलने के लिए क्षमा भी मांगी है। मैं अपने भयंकर अपराधों के लिए क्षमा याचना करने में अभ्यस्त हो गया हूं, तुम्हारे लिए न्यायाधीश के पास जा कर···"

सावित्री ने बीच में टोक दिया, "केवल मेरा भगवान ही साक्षी है और वही है मेरा न्यायाधीश। आपका दोष इतना है कि आपने पति की मर्यादा का निर्वाह कभी नहीं किया है, न अपनी विवाहित पत्नी उमा के साथ, न मेरे साथ जिसे आप सदैव प्रियतमा की पदवी देते रहे हैं। आपके लिए नारी भोग्यामात्र है। काश, मैं सती सावित्री होती और आपको सत्यवान सा निष्ठावान पति बना कर इसी जन्म में अंगीकार कर पाती! मैं तो आपसे विलग हो पल भर के विरह को सहन नहीं कर पाती, बिछुड़ कर मानसिक रोगी बन जाती हूं किंतु आपके आचरण में इस तनाव का कोई भी असर नहीं दिखलायी पड़ता। जैसा उत्तरदायित्वहीन आचरण आपका मेरे प्रति रहा है···" कहते हुए सावित्री रो पड़ी।

"मुझे दंड दो न! मैं कब कहता हूं, मैंने कोई अपराध नहीं किया है? विवाहित हो

कर तुमसे प्रेम करना अपराध है, मैं तुम्हारा दोषी हूं, किंतु तुम्हारा भी इसमें योगदान रहा है। इसलिए कहता हूं, इतने सालों बाद अविभाज्य अंग आज काट करके क्यों अलग छोड़ा जा रहा है? मैंने अपनी पत्नी को वह स्थान नहीं दिया है जिसे मैंने तुम्हारे लिए सदैव सुरक्षित रखा और अब वह स्थान जन्म-जन्मांतर तक केवल तुम्हारे लिए सुरक्षित रहेगा। अब इस तरह से छोड़ देने का तुम्हारा यह निर्णय मुझ पर लागू नहीं हो सकता,'' कह कर सत्यवान ने आगे बढ़ कर सावित्री का हाथ कस कर पकड़ लिया।

इस स्पर्श में अद्‌भुत चुंबकीय शक्ति थी। सावित्री कांप उठी। क्षण मात्र के लिए उसे ऐसा लगा, जैसे सत्यवान से अंतिम विदा लेने का निश्चय केवल उसके अहं का दंभ मात्र था। शायद इतने सालों से विरह में जलते रहने के कारण वह कठोरहृदया हो गयी और मानसिक रूप से थक कर चकनाचूर हो वह संबंध विच्छेद का आज प्रस्ताव कर बैठी है। दूसरे ही क्षण उसके मस्तिष्क में वास्तविकता (रियलिटी) के विचार कौंध गये। वह सत्यवान से इस जन्म में कदापि नहीं मिल सकेगी। वह इतने साल प्रेम में तप कर भी सत्यवान को अंतरतम में अपने पास नहीं बिठा सकी है। उसके लिए इस जन्म में चिरविरही रहने की नियति सुनिश्चित है। पत्नी और प्रेयसी में से किसके पास सत्यवान तन और मन से सुखी रह सकेगा, आज इसका निर्णय स्वयं उसे करना होगा, उसी को कठोर हो कर इस मोहपाश को सदैव के लिए तोड़ना होगा। सहसा सावित्री की विचार शृंखला टूट पड़ी, मानो जलती पृथ्वी पर वर्षा की नन्ही बूंदें बरस कर उमस को अत्यधिक असहनीय बना गयी हों।

सत्यवान के ये कठोर शब्द उसके कानों में गूंज उठे, ''मेरी भावना से खिलवाड़ करने का तुम्हें क्या अधिकार था? तुम्हारा निश्चय सुन कर मुझे लग रहा है जैसे तुमने आम चूस कर उसकी गुठली को निकाल कर फेंक दिया हो। मैं यह अवहेलना किसी की सहन नहीं कर सकता,'' कह कर सत्यवान ने अपने समस्त प्रेम को भस्मीभूत कर देने के लिए सावित्री की भर्त्सना करते रहने की अपेक्षा वहां से चला जाना उचित समझा। उसे पीछे मुड़ कर सावित्री पर उसके इन कठोर शब्दों की क्या प्रतिक्रिया हुई, इसकी जिज्ञासा न थी।

लेकिन यदि पाठकगण जिज्ञासु हो उठे हों तो इस अनन्य (यूनिक) चिरबिदा को समझने के लिए उन्हें धैर्यपूर्वक इस कथानक के इन पात्रों के चरित्र निर्माण के ताने-बाने का अवलोकन करना होगा। यह कथन कि स्त्री प्रौढ़ा होने तक समझ नहीं पाती कि कैसे व्यक्ति से प्रेम करना चाहिए, शायद इसी कारणवश इस उपन्यास की नायिका सावित्री जीवन भर मानसिक त्रासदी का कष्ट उठाती रही, जब तक कि उसका अंतःकरण हिल नहीं गया। अपने प्रिय सत्यवान के चरित्र की मनोवैज्ञानिक खोज उसने नहीं की, उसे बुद्धि से तौल कर कभी नहीं परखा।

इस उपन्यास में सत्यवान बीसवीं सदी के अंतिम दशक के सुविख्यात वैज्ञानिक के रूप में पाठकों के समक्ष उपस्थित किया गया है किंतु उसकी परिकल्पना कोरी काल्पनिक

न समझी जाये, क्योंकि ऐसा पुरुष हमारे आधुनिक संभ्रांत समाज में संभवतः किसी भी वर्ग में पाया जा सकता है। इस नायक की शिक्षा उच्चकोटि के विश्वविद्यालय में अवश्य हुई किंतु उसकी शिक्षा का ध्येय चरित्र निर्माण करना शायद नहीं था, क्योंकि सत्यवान का परम लक्ष्य सदैव ढेर सारी डिग्रियां बटोरना मात्र रहा है। मध्यवर्ग में जन्मा होने के कारण उच्च शिक्षा की डिग्रियां बटोर कर बड़ी से बड़ी नौकरी प्राप्त करने की लगन उसमें वैसी थी जैसी एक लोभी व्यापारी में धन कमाने की लालसा, जो उसे जीवनपर्यंत असुरक्षित रखती है। बाल्यकाल से विलक्षण बुद्धि होने के कारण केवल वह मेधावी छात्र बनता गया। उसके परिवार ने भी शिक्षा के लिए अपनी हैसियत से अधिक धन लगा कर उसे अच्छे से अच्छे मास्टरों से ट्यूशन दिलवायी। खान-पान, खेल-कूद आदि सब पर शुरू से अत्यधिक नियंत्रण रखा गया। सबसे छोटी अंतिम संतान होने के कारण प्यार से उसे 'नन्हे' कह कर सदैव दुलराया। मां-बाप ने बाल्यकाल से ही जीनियस (असाधारण मेधा) के रूप में बड़ी सावधानी से उसका पालन-पोषण किया, जैसे उनका वह एक अरबी घोड़ा हो, जिसे अच्छी तरह से खिलाना-पिलाना, घंटों दौड़ाना और मालिश करके तैयारी के साथ रेस में दौड़ा कर ट्रॉफी (पारितोषिक) हासिल कर, पैसे कमाना उनके जीवन का मिशन (ध्येय) हो! उनके मिशन में सत्यवान ने हर रेस में दौड़ कर सफलता की ख्याति पायी और एक दिन वह केवल होनहार विद्यार्थी ही नहीं साबित हुआ, उसे तो जीवन के हर क्षेत्र में प्रथम होने की जीत मिलती गयी। विश्वविद्यालय से निकलते ही उसे स्थानीय डिग्री कॉलेज में लेक्चररशिप (प्राध्यापक) मिल गयी। उस सहज उपलब्धि ने मानो उसे सफलता के झूले पर बिठा दिया हो, एक पैग लगाते ही वह दूसरा पैग लगा कर हवा से बातें करने लगता।

एक ख्यातिप्राप्त स्थानीय कॉलेज में नौकरी मिलते ही उसने कई जगह अपनी अर्जी भेजना शुरू कर दिया। फिर जहां भी अर्जी भेजी, वहीं से साक्षात्कार का बुलावा आया और उन सबमें उसे आशातीत सफलता मिलती गयी। स्थानीय कॉलेज की नौकरी छोड़ कर वह अपने प्रांत के विशिष्ट वैज्ञानिक संस्थान में लेक्चरर (प्राध्यापक) हो गया, जहां से उसे विदेश जाने का जल्दी ही सुनहरा मौक़ा मिला। वह स्कॉलरशिप (छात्रवृत्ति) काफ़ी महीनों तक उसे अपने मां-बाप के घर को छोड़ कर विदेश में कार्यरत रहने के लिए दिया गया था। सत्यवान मां से अत्यधिक जुड़ा हुआ था। मां को छोड़ कर विदेश में अकेले रहना उसके लिए असंभव था। वह अपनी प्यारी मां की गोद में लेट कर अपनी दिन भर की दिनचर्या सुनाने का आदी था और मां भी उसकी शेखी भरी बातों को सुन कर ख़ुशी से फूली नहीं समाती थी। युवा सत्यवान के जीवन में रोज़मर्रा ही कोई न कोई सफलता मिल जाती जिसे बढ़ा-चढ़ा कर वह अपनी मां को सुनाता और मां उसकी आंखों में झांक कर उसके सुनहरे भविष्य के सपने पिरोने लगती और अनेक आशीष दे कर उसकी झोली में ढेर सा आत्मविश्वास डाल देती। सत्यवान की मां ने सदैव उसे विशिष्ट बालक, जिसे मनोवैज्ञानिक मेधावी बालक, (गिफिटेड) कहते हैं, के रूप में देखा। अपनी मां की

आंख की पुतली होने के कारण सत्यवान जो भी चाहता, उसकी मां पूरे मनोयोग से उसे पूरा करना अपना परम कर्तव्य समझती। खाने-पीने में उसे घर के अन्य सदस्यों से अच्छा भोजन प्राप्त होता था। इसके अतिरिक्त वह रोज़ रात को एक गिलास भर करके दूध पीता जो नित्य उसकी मां बड़े मनुहार से उसके सोने के पहले पिलाने आती। मां के लाड़-प्यार में पले सत्यवान ने केवल अपने को ही प्यार किया और अपने बड़े भाई-बहनों तक को अपनी अकड़ के सामने बौना समझा। किशोरावस्था से ही वह अपना चेहरा शीशे में देख देख कर मुग्ध हो जाता और घंटों नहाने-धोने और सजने-संवरने में अपना अमूल्य समय लगा देता था। कभी कभी उसको ले कर मां-बाप में कहा-सुनी होती। पिता को लगता, मां के अधिक लाड़-प्यार ने सत्यवान को बिगाड़ कर रख दिया है लेकिन पढ़ाई में अच्छा होने के कारण पिता की डांट-फटकार का असर सत्यवान पर नहीं होता। फिर वह इसके अतिरिक्त कोई व्यसन भी नहीं करता था, अन्य हमउम्र के लड़कों की तरह उसने कभी भी पान, सिगरेट, बीड़ी का सेवन नहीं किया। मुहल्ले की किसी भी लड़की के चक्कर में नहीं पड़ा। उसकी साइकल की दौड़ केवल घर से कॉलेज, कॉलेज से घर तक सीमित रहती, और घर आ कर भी वह अपनी किताबों में उलझा रहता। जिसको ले कर उसके मां-बाप के मस्तिष्क में उसके लिए सुनहरे भविष्य की अनेक योजनाएं थीं, जिसे सत्यवान ने कभी भी कोरी कल्पनामात्र साबित नहीं होने दिया। सत्यवान की पढ़ाई को ले कर मां-बाप दोनों ही अत्यधिक आश्वस्त थे, अतः उन्होंने उसके चरित्र निर्माण पर ध्यान नहीं दिया। मां-बाप और घर के अन्य किसी सदस्य को अनुमान भी न था कि उनका बेटा किशोरावस्था से ही हस्तमैथुन करने लगा है। उन बेचारों को पता भी कैसे लगता? सत्यवान शुरू से अपने बुद्धि बल से ऐसी छबि बना कर रखता जैसे वह श्रवणकुमार की तरह अपने बूढ़े मां-बाप को कंधे पर लाद कर उन्हें तीर्थाटन करवायेगा। सत्यवान का अधिकतर समय परिवार की चहारदीवारी के भीतर ही व्यतीत होता था। अंतर्मुखी होने के कारण उसके भीतर यदि कोई अन्य सदस्य आ भी जाये, तब भी वह उसके आकर्षण केंद्रबिंदु में घुस नहीं पाता। मां के परिवार के सदस्य उसके मामा, मौसी आदि उसकी भूरि भूरि प्रशंसा करने से नहीं थकते थे। पिता के परिवार के सदस्यों का उसके घर में आना-जाना कम होता था क्योंकि उसके परिवार में मां का ही दबदबा था। पिता के परिवार के लोगों को अतिथि सत्कार उचित न मिल पाता, भाजन बेचारा सत्यवान बनता। सबसे छोटा बालक होने के कारण उसे ताऊ, चाचा, फूफा आदि से प्रेम, प्रोत्साहन मिलने के बजाय भर्त्सना ही मिलती, "अरे, यह तो बांस की तरह लंबू होता जा रहा है, क्या बात है रे," कह कर वे ऐसी निगाहों से सत्यवान को घूरने लगते, जैसे उसे कच्चा ही खा जायेंगे। बेचारा सत्यवान दुबक कर एक कोने में खड़ा हो जाता मानो वह अपने अपराध का दंड लेने के लिए तत्पर है कि वह हस्तमैथुन करता है, न चाह कर भी वह इस आदत से मजबूर है। उसकी मां अपने लाडले बेटे की पराये जनों से (माना वे पति के परिवार के निकटतम संबंधी ही क्यों न

हों) इस तरह की भर्त्सना सहन न कर पाती, उन्हें आड़े हाथों लेते हुए बीच में आ जाती, "हड्डियों पर मांस कहां से चढ़े, खाया-पिया मुई सारी पढ़ाई चूस लेती है! पढ़ने में अच्छा है, एक दिन जब बड़ा अफसर बन जायेगा, शरीर पर चर्बी अपने आप आ जायेगी, आप लोगों को तो तिल का ताड़ बनाने की···"

मां की बात को काटते हुए पिता कह उठते, "उनका लाड़ला बेटा है, ख़ूब सोच-समझ कर इसके बारे में कुछ कहना। नन्हे नन्हा ही रहेगा, मां का दूध पीता," कह कर पिता ने हंस कर बात टाल देना उचित समझा।

"हमें क्या लेना-देना! परिवार के हितैषी होने के कारण जो हमारी समझ में आया, वह बेहिचक कह दिया। यदि आप लोगों की समझ में सत्यवान की पढ़ाई-लिखाई की तरफ़ ध्यान देना ही पर्याप्त है तो ठीक है," यह कह कर स्वजन, परिजन बन जाते और सत्यवान कोने से हट कर ऊपर छत पर जा आकाश को देखने लगता।

उसे लगने लगता कि ये नाते-रिश्तेदार उसकी सफलता से जलते हैं और उसे नीचा दिखाने के लिए कोई न कोई बहाना बना कर उसे जलील कर रहे हैं। एक दिन वह बड़ा हो कर उन्हें अच्छा सबक सिखला कर रहेगा। मध्यम वर्ग के परिवेश में पला-बड़ा हुआ सत्यवान उस मेंढक की भांति था जो तालाब में रह कर भी अपने को सबसे सक्षम एवं सुरक्षित समझ बैठता है।

सत्यवान को अपने घर में सबसे अधिक प्रिय अपनी छत की मुंडेर लगती थी जहां बैठ कर वह रंगीन बादलों के रंगों को बदलते देख कर अपने दिवास्वप्न पिरोने लगता था। सूरज की किरणें बादलों के बीच लुक-छिप अनेक रंगों और आकृतियों में बनती और बिगड़ती रहतीं जिन्हें निहार कर सत्यवान अपनी किशोरावस्था से ही सुंदरता को, चाहे वह प्रकृति की ही क्यों न हो, अपनी आंखों में छिपा कर रखने के लिए लालायित हो उठता।

एक बार वह मुंडेर पर बैठा शाम को धीरे धीरे ढलता हुआ देख रहा था, अनायास किसी ने उसकी आंखों को पीछे से आ कर बंद कर दिया। स्पर्श अति कोमल लगा। उसके पूरे शरीर में बिजली दौड़ गयी। वह व्याकुल हो उठा किंतु उस स्पर्श को टटोल कर पहचान न सका क्योंकि उसका सिर अपने कंधों पर स्थिर न रह पाया, धीरे धीरे खिसक कर किसी नारी के वक्षस्थल पर चिपक गया था। उस गुदगुदी में सम्मोहन शक्ति थी। दोनों ओर से उठी चुंबकीय शक्ति ने दो शरीरों को बाहुपाश में जकड़ कर रख दिया। किशोर सत्यवान के लिए नारी शरीर का यह नया स्वाद अनोखा अनुभव भरा था। मां के स्तनों से वह परिचित था लेकिन आज अज्ञात नारी के स्पर्श मात्र से उसके पूरे शरीर में अपूर्व शक्ति का संचार हो उठा। अपने शरीर के हर अंग से वह उस स्वाद को चखने के लिए व्याकुल हो उठा। उसके होंठ उस मधुरपान के लिए फड़फड़ा उठे। उस अज्ञात नारी ने अपने मौन निमंत्रण से सत्यवान को पूर्ण स्वतंत्रता दे दी। दोनों किशोर प्रेमियों के लिए यह नया अनुभव था। सत्यवान के मन में इस सुखद शारीरिक

खिलवाड़ के अतिरिक्त कोई अन्य आकर्षण न था। वह अज्ञात नारी उसकी बड़ी भाभी की छोटी बहन थी जो अपनी गर्मियों की छुट्टियां व्यतीत करने सत्यवान के घर आयी हुई थी। सत्यवान को अपनी ओर आकर्षित करने की पहल में उसने छत पर चुपके से जा कर उसकी आंखें बंद कर दीं। उसे पता न था, उसकी छोटी सी यह भूल (जो वह अन्य सहेलियों के साथ अकसर करती आयी थी) उसे ऐसे मोहपाश में बांध कर रख देगी।

नारीसुलभ भावनात्मक खिलवाड़ के दायरे बढ़ने लगे। सत्यवान को पति रूप में अंगीकार करने के सुनहरे सपने संजोती 'जूही' बन-ठन कर नित्य शाम को छत पर आने लगी। सत्यवान उसे अपने बाहुपाश में बांध कर उसके अधरों का रसपान भौंरे की तरह तब तक करता रहता जब तक छत पर अंधियारा न छा जाता। बिजली जलते ही सत्यवान भयातुर हो नीचे अपनी मां के पास आ कर बच्चों की तरह छाती से लिपट कर या अन्य अपने भोलेपन व्यवहार द्वारा घर वालों को आश्वस्त कर देता। बड़ी भाभी यह अनुमान न लगा पायी कि उसके नन्हे देवर और उसकी छोटी बहन के बीच छत पर रोमांस (प्रेम प्रसंग) चल रहा है। कुशाग्र बुद्धि होने के कारण सत्यवान ने जूही को समझा-बुझा रखा था कि वह किस तरह चुपके से छत पर आये जिससे और कोई जान न पाये कि वे दोनों अकेले छत पर आ कर मिलते-जुलते हैं। वह स्वयं भी घर वालों के सामने जूही से बातचीत कदाचित् ही करता, अधिकतर तो समय उसका अपनी पढ़ाई में ही व्यतीत होता और उसके मन में जूही के प्रति केवल अपने अधरों की प्यास मात्र का आकर्षण था जिसे बुझाने वह शाम को अकसर भटक कर छत पर पहुंच जाया करता। जूही सहज ही पूर्ण समर्पण से उसे रसपान करवाने के लिए लालायित मिलती।

गर्मी की छुट्टियां ख़त्म होने से पहले जूही ने एक दिन सत्यवान से भविष्य में अपने संबंध को अटूट रिश्ता देने के लिए बातचीत करनी चाही। सत्यवान को लगने लगा कि जूही उसे अपने मोहपाश में फंसा कर उसके सुनहरे भविष्य को बिगाड़ कर रख देना चाहती है। सत्यवान एकाएक सजग हो अपने आपको जूही के बाहुपाश से छिटक कर आवारा बादलों की तरह क्षितिज पर जा बैठा, "यह समय पढ़ने-लिखने का है, ख़ूब मन लगा कर पढ़ो। कुछ बन जाओ तब ब्याह-शादी की बातें बड़े लोग करते हैं। हम दोनों ने एकांत में क्या किया है, इसका पता बड़ों को नहीं होना चाहिए। हमारी अभी उम्र खेलने-खाने की है," कह कर सत्यवान ने जूही की चोटी पकड़ कर उसे अपनी ओर घसीट लिया।

इससे पहले कि वह कुछ और कर पाये, जूही ने उसके गाल पर एक तमाचा मार दिया। सत्यवान के लिए जूही का यह व्यवहार परिवर्तन कल्पनातीत था। वह जीवन में कभी भी तिरस्कृत नहीं हुआ था। यहां तो उसकी भर्त्सना ही नहीं, पिटाई हुई थी, वह भी एक सुकोमल नारी द्वारा, वह इसका बदला अवश्य ले कर रहेगा। लेकिन जूही तमाचा लगा कर बिजली की तरह छत से नीचे भाग गयी। उसी रात जूही तत्काल अपने

पिता के घर जाने के लिए अपनी बहन और जीजा से बेहद ज़िद करने लगी। वे लोग एकाएक इस व्यवहार परिवर्तन से अवाक् थे क्योंकि जूही का चेहरा पीला पड़ गया था। उसकी आंखें सूजी थीं और उनमें लाल डोरे उभर आये थे। उसकी आवाज़ में इस तरह का कंपन था मानो वह गहरी व्यथा से व्यथित हो। उसकी इस दशा को देख कर उसकी बड़ी बहन सशंकित हो उठी, "किसी ने क्या तुझे डांटा है? किसने तेरे स्वाभिमान को ठेस पहुंचायी है? मुझे तो बता।"

जूही बहन से आंख मिला कर बात न कर सकी, उसकी आंखों में केवल आंसू न थे, उसका पूरा चेहरा आंसुओं से भीग कर कुम्हला गया था, जैसे जान न हो, फिर भी उसने दृढ़ आवाज़ में कहा, "यदि आप लोग मुझे स्टेशन छोड़ने न जा पा रहे हों तो कोई बात नहीं है, मैं स्वयं जा कर टिकट ख़रीद कर गाड़ी पर बैठ जाऊंगी, कल तक घर पहुंच जाऊंगी। आप टेलीफ़ोन द्वारा मेरे पहुंचने की ख़बर पापा को दे दें, ताकि कोई स्टेशन आ कर मुझे रिसीव कर ले।"

"क्या बात करती है! हम रात में तुम्हें स्टेशन तक नहीं पहुंचाएंगे और सुबह पापा तुम्हें आ कर रिसीव कर लें, यह बात मैं टेलीफ़ोन द्वारा कह दूं? चल, अच्छे बच्चों की तरह हठ नहीं करते, एक दिन और रुक, सुबह होने के बाद चली जाना। जहां इतने दिनों तक रही, वहां एक दिन और क्यों इतना भारी हो गया है?"

"नहीं, मुझे यहां से इसी समय जाना है," जूही यह कह कर अपना सामान बांधने लगी।

बड़ी बहन को लगा, शायद उसकी सास ने उसकी छोटी बहन का अपमान कर दिया है, जूही उसकी तरह अपमान को क्यों सहन करे? केवल वही चुपचाप सहन करने के लिए विवश है। जूही उसी रात अपने पिता के घर चली गयी और उसकी बड़ी बहन को भी ठीक लगा कि जूही अपमानित हो कर उसकी सुसराल में न रहे, अतः उसने पिता को टेलीफ़ोन कर दिया कि सुबह जूही मेल से अंबाला पहुंच रही है, वह उसे रिसीव कर लें।

जूही के जाने के बाद काफ़ी दिनों तक सत्यवान ने अपनी भाभी तक से बातचीत नहीं की। कभी भी अपने मुंह से वह जूही का नाम तक नहीं लेता और जब कभी भी घर वालों से जूही के नाम की चर्चा सुनता, वह अत्यधिक तटस्थ रहता। अतएव उसके और जूही के बीच जो भी घटित हुआ, उसकी भनक घर वालों को कभी भी नहीं लग पायी। लेकिन सत्यवान के मन ही मन में एक क्रोध की चिंगारी चटक उठती कि वह कैसे जूही से अपने अपमान का बदला ले सके। इस नारी को उसने अपने समकक्ष कमज़ोर, मंद बुद्धि और जल्दी ही में भुलावे में आ जाने वाली भोग्यावस्तु समझा था। अपने इस घोर अपमान का वह बदला नारी को झुका कर अपनी चरणदासी बना कर अवश्य लेगा। एक दिन वह बड़ा आदमी अवश्य ही बनेगा, तब जूही के समान कितनी लड़कियां उसके चारों ओर मंडरायेंगी। वह तरसा तरसा कर नारी जाति से अपने

अपमान का बदला ले कर रहेगा। उसे वर्तमान में अपना घर एक निर्जन टापू की तरह लगने लगा जिसमें केवल अपनी मां के साथ वह समय व्यतीत करने के लिए बाध्य था। किताब से प्रेम की भूख मिटायी नहीं जा सकती। यह कैसी शारीरिक भूख थी जिसके आगे वह नारी के समकक्ष भूखा, प्रताड़ित और तिरस्कृत हो गया है? उसके अंदर ही अंदर विचारों का ताना-बाना बन जाता जो उसे उसी तरह फंसा देता जैसे स्वयं बनाये जाल में मकड़ी फंस कर रह जाती है। जब भी वह अपने आप को अकेला पाता, घूम-फिर कर उसका ध्यान नारी की देह की ओर चला जाता और संवेगित अंतर्निहित भावना में स्त्री के प्रति घोर अविश्वास, एक तरह का तिरस्कार, लेकिन उसके साथ साथ नारी शरीर को दबोच लेने की अतृप्त इच्छा जाग्रत हो उठती। हार कर उसे लगने लगता कि ये विचार उसकी पढ़ाई को भी चौपट करके रख देंगे। जब भी किताबों के पास बैठता, उसके मस्तिष्क में जूही की लावण्यमयी छबि आ कर उसकी आंखों को मूंद देती। मां से सुना था कि पढ़ने-लिखने वालों को ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिए, लेकिन उसको तो स्वप्न में भी जूही की मादकता आत्मविभोर कर देती, इसीलिए कहा गया है कि नारी नरक की ओर ले जाती है, नारी को तो विधाता भी समझ नहीं सकता, वह कैसे समझ सकता है? सत्यवान ने विचारों में बढ़ते ताने-बाने से मुक्ति पाने के लिए अनेक प्रयत्न किये। वह सुबह चार बजे अलार्म लगा कर उठने लगा, नित्यकर्म से निवृत्त हो कर व्यायाम करने जाने लगा और दिन भर अत्यधिक साइकल चला कर अपने शरीर को थका कर चकनाचूर कर देता। फिर भी रात्रि में काफ़ी समय तक उसे नींद न आती। न चाह कर भी विचारों का ताना-बाना बुन जाता और वह उसमें फंसता ही जाता। मन उचाट होने पर वह हस्तमैथुन करता किंतु उसमें भी पहले जैसा मज़ा नहीं आता। उसे लगने लगता कि किशोरावस्था में किया गया यह इश्क़ का चक्कर उसके लिए एक अभिशाप बन गया है जो उसकी पढ़ाई पर बेहद बुरा असर डाल देगा। अपने विचारों से पूरी तरह थक कर वह नींद की गोली ले कर सोने की कोशिश करता किंतु एक भयानक स्वप्न के बाद दूसरा भयानक स्वप्न आ जाता, जिसकी बढ़ती हुई उत्तेजना उसकी नींद को तोड़ कर रख देती। इन स्वप्नों में सत्यवान अपने को किसी बड़ी इमारत से नीचे की ओर गिरता हुआ या गहरे पानी में डूबता हुआ पाता या थोड़े हेर-फेर से घटनास्थल बदल बदल कर। किंतु वे स्वप्न अत्यधिक दिल दहलाने वाली परिस्थितियों के घेराव के प्रतीक होते, जिनसे उसकी नींद टूट जाती और वह बेहद घबरा कर छटपटाता हुआ उठ बैठता। नींद खुलने पर वह अपने आपको पसीने से लथपथ पाता, और दिल बेहद तेज़ी से धड़कता हुआ लगता। अपनी फूली हुई सांस को वह किसी तरह भी शांत न कर पाता, घबराहट में उठ कर पानी पीता। पलंग से उठ कर, खुली छत की ओर जाने के लिए लालायित हो उठता किंतु ऐसा रात्रि के तीसरे पहर में करना संभव न था। डर था, कहीं घर वाले उसे पागल न समझ बैठें। दूसरे लोग उसके बारे में क्या सोचते हैं, उसके लिए सत्यवान सदैव से अत्यधिक सचेत था। इसलिए उसने दृढ़ निश्चय

किया कि भविष्य में वह नींद की गोली का सहारा न ले कर, केवल अपनी पढ़ाई का सहारा लेगा। वह इस निश्चय में सफल रहा। शायद सत्यवान को सदैव सफल होने का वरदान ईश्वर से प्राप्त था।

सत्यवान ने पूरी रात बैठ कर किताबों को पढ़ उनके नोट्स तैयार करने शुरू कर दिये। जो भी वह पढ़ता, उसके सार को वह लिखने लगता और इस तरह उसने अपने पूरे कोर्स के अच्छे नोट्स तैयार कर लिये। परीक्षा की पूरी तैयारी उसने अक्तूबर में शुरू करके मई मास ख़त्म होने से पहले ही कर ली। केवल परीक्षा के दिनों में उसे नोट्स को पढ़ कर जाना पड़ता और भाग्यवश जो भी उसने अच्छी तरह पढ़ा होता वही परीक्षा में आता, अतएव खोया हुआ आत्मविश्वास पुनः स्थापित होने लगा। परीक्षाफल आने से पहले ही वह अपने को प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण होने के लिए आश्वस्त था। सत्यवान की यह स्वयं पर विजय मानो उसके सुनहरे भविष्य की ऊंची पताका थी जिसे किशोरावस्था में हाथ में ले कर उसने अपनी यौवनावस्था में पदार्पण किया। इस बार की पढ़ाई में जब एक बार अच्छे नंबर आ गये तब से सत्यवान के हाथ में परीक्षा देना और उसमें प्रथम श्रेणी में आना कठिन कार्य न रहा। उसे अपनी सुयोग्य 'छबि' की प्रतिष्ठा का गौरव सहज प्राप्त था। उच्च पढ़ाई कर डिग्रियां प्राप्त करके उसे तुरंत ही नौकरी मिल गयी थी और उसमें भी आशातीत शीघ्र पदोन्नति ने उसे अत्यंत गर्वीला बना दिया। मित्र जब भी परिहास में कहते, 'आप तो बड़े आदमी बन गये हैं, आपसे तो डर कर रहना चाहिए।' तो सत्यवान अपनी छाती को फुलाते हुए जवाब देता, "मैं छोटा आदमी कब था? मैं तो शुरू से अपने आपको बड़ा आदमी मानता आ रहा हूं, मैं बड़ा आदमी हूं जनाब, मेरे सामने…"

"सूर, तुलसी आदि कुछ नहीं," मित्र उसके वाक्य को पूरा करके हंसने लगते थे लेकिन पीठ पीछे उसकी शेखी को चुनौती देने की चालें बनाने में लग जाते।

आत्मतृप्ति होने पर भी सत्यवान के लिए मित्रवर्ग का इस तरह का ईर्ष्या-द्वेष करना असहनीय होता। वह समझ न पाता कि क्यों ये लोग उसकी सफलता से जलते हैं, क्यों नहीं उसे उसके घर वालों की तरह प्यार करते हैं? पढ़ाई के अलावा सत्यवान की रुचि किसी प्रकार के खेलकूद में न थी, अतएव उसमें क्रीड़ा प्रतियोगिता कभी पनपने न पायी। वह जब भी कोई बैठक के (इनडोर) खेल खेलता, जैसे ताश या शतरंज, उसमें भी जीतना ही उसका लक्ष्य होता और सफलता उसे सहज ही मिल जाती। जीत का सिलसिला एक बार लग जाये तो वह सहज मिलती जाती है। कहते हैं, सक्सेस ब्रिंग्स सक्सेस। पता नहीं, आपका इस विषय में क्या दृष्टिकोण है? सत्यवान ने तो अपने सहकर्मियों को पछाड़ कर आगे बढ़ते रहने की होड़ लगा रखी थी।

जब नौकरी मिलते ही उसे विदेश जाने का सुनहरा मौक़ा मिला, वह उसे खो नहीं देना चाहता था यद्यपि अपनी मां को छोड़ कर विदेश जाने में उसे अंदर ही अंदर अकेलेपन का डर खाये जा रहा था। घर में सभी आत्मीयजन उसके विदेश जाने के

समाचार से बेहद खुश थे। उनके परिवार में सत्यवान प्रथम सदस्य था जो विदेश सरकारी ख़र्चे पर भेजा जा रहा था। किंतु इस समाचार के बाद से उसकी मां अकसर चाव से उसे अपनी गोद में बिठा कर दुलराने लगी थी और उसके भविष्य के प्रति आशंकित हो कर पूछ बैठती, "नन्हे, तुम अकेले विदेश में कैसे रहोगे? कौन तुम्हारे खाने-पीने की चिंता करेगा? तुम तो अपनी रिसर्च (शोध) के काम में इतने व्यस्त रहोगे कि तुम्हें तो अपना भी ख़याल नहीं रहेगा। मैं तुम्हें अकेला नहीं भेज सकती, तुम्हारी शादी करके भेजूंगी, मेरी बहू विदेश में तुम्हारी देखभाल कर सकेगी।"

"मां, किंतु मैं शादी करके विदेश गया तो मेरा पूरा ध्यान रिसर्च में कैसे लग सकेगा? यह फ़ेलोशिप (छात्रवृत्ति) मुझे उच्चस्तरीय अनुसंधान के लिए दी जा रही है, सैर-सपाटे के लिए नहीं। वहां जा कर घर-गृहस्थी जमा कर मेरी रिसर्च चौपट हो जायेगी," कह कर सत्यवान मां की शादी की बात टाल देना चाहता। लेकिन अंदर ही अंदर उसे लगता कि वह विदेश में अकेले रह कर अपना पूरा ध्यान रिसर्च में नहीं लगा पायेगा क्योंकि नौकरी लगते ही सत्यवान का ध्यान नारी देह की ओर अत्यधिक केंद्रित होने लगा था। अकसर दफ्तर में वह अपने से छोटी उम्र की लड़कियों के साथ बैठ कर हंसी-मज़ाक़ करता और उन्हें अपनी ओर घनिष्ठता के दायरे में आकर्षित करने की, विशेष रूप से अपने साथ अकेले मिलने की, कोशिश करता रहता। उसे नारी के होंठों से विशेष लगाव था। भंवरे की तरह उनका रसपान करने के लिए वह बेहद उत्कंठित रहता। उसने अधेड़ उम्र के पुरुषों से सुन रखा था कि फूलों को हम घर में भी सूंघ सकते हैं, तो भी बग़ीचे में जाना पसंद करते हैं। चोरी का प्यार प्राप्त करने के लिए तीन चीज़ें ज़रूरी हैं : हिम्मत, जो आदमी कभी न हारे, बेशक अपनी चाह को पाने के लिए कितना भी समय लग जाये; दूसरे नाक, जिस पर मिट्टी न लगे, चाहे उसे कितना ही क्यों न रगड़ा जाये, और तीसरे, पुरुष के अंदर रूई में लिपटी हुई सुई सा कड़ापन होना बेहद ज़रूरी है। सत्यवान ने ऐसी अंतरंग पुरुष चर्चा में रुचि लेते हुए पूछने की कोशिश की, "ऐसे बग़ीचे कहां हैं जहां जा कर वह सहजता से फूल सूंघ सके?"

किंतु उसकी खिल्ली उड़ाते हुए यही उत्तर मिला कि "असली आशिक़मिज़ाज इस तरह कूचा-ए-यार का पता नहीं पूछते फिरते। उन्हें उसकी दूर से ख़ुशबू आ जाती है। वे तो सहज ही उड़ती चिड़ियों को पकड़ लेते हैं।"

सत्यवान को लगने लगता कि ये पुरुष कोरी शेखी बघार रहे हैं। आज की पढ़ी-लिखी नारी तितली की तरह इधर-उधर फुदकती तो रहती है, बनाव-शृंगार में ऐसे लुभाने कपड़े पहनती है कि आंखें चौंधिया जायें किंतु हाथ में किसी के नहीं आतीं। इनको अपने वश में करना जंगली हथिनियों पर क़ाबू पाना है।

अपने प्रयास में सतत रत रहते हुए एक दिन सत्यवान ने अपनी लैब की एक नवोदित पी-एच.डी. छात्रा से उसकी थीसिस (शोध प्रबंध) की रूपरेखा बनाने के लिए उसे अपने निजी कक्ष में आने का निमंत्रण दिया।

वह छात्रा सत्यवान की विद्वत्ता की प्रशंसा लैब के अन्य लोगों द्वारा सुन चुकी थी और इस बात से बेहद प्रभावित हुई थी कि सर (श्रीमान्) शीघ्र ही विदेश जाने वाले हैं, अतएव अपनी थीसिस की रूपरेखा बनवाने के लिए सत्यवान का आग्रहपूर्वक निमंत्रण पा, उसके कमरे में अकेले साक्षात्कार के लिए (वह भी शाम के वक़्त जब सत्यवान अपने सारे कामों से निवृत्त हो जायें और सारे कर्मचारी अपने अपने घर प्रस्थान कर जायें) तुरंत राज़ी हो गयी।

सत्यवान ने बेहद चतुराई से उस छात्रा का पहले विश्वास प्राप्त करने की कोशिश की। वह उसकी थीसिस के बारे में अपनी विशेष जानकारी देने लगा। लाइब्रेरी की रीडिंग लिस्ट (पढ़ने की सूची) बना कर उसे सौंप देता। जब उसे लगा कि वह छात्रा उसकी विद्वत्ता से प्रभावित है तब वह हंसी-मज़ाक़ और छेड़खानी पर आ गया। एक दिन उसने उसकी कलाई पकड़ ली। छात्रा ने तुरंत हाथ छुड़ाना चाहा तो हंसते हुए बोला, "मैं तुम्हारी विदेश जाने की रेखा देखना चाह रहा था।"

छात्रा ने भी सब कुछ समझ कर भी नादान रहने में अक्लमंदी समझते हुए कहा, "सर, आप क्या हस्तरेखा का भी ज्ञान रखते हैं? मैं तो समझती थी कि आप वैज्ञानिक हैं, ऐसी बातों में विश्वास नहीं करते होंगे?"

"क्या वैज्ञानिक सामाजिक बातों से अछूता रह सकता है? मनुष्य को अपने भविष्य के बारे में जानने की बेहद जिज्ञासा रहती है। जहां से भी उसका सूत्र मिल जाये, वह उस खोज में लग जाता है। क्या तुम्हें इसकी तनिक भी चिंता नहीं कि भविष्य में तुम्हारा क्या होने वाला है, तुम्हारी थीसिस कब खत्म होगी, तुम कब विदेश जा सकोगी या उसका कोई चांस या लाइन नहीं है या तुम्हारी शादी कब और किसके साथ होगी?"

"बस, ऐसी सब बातें, जिनका आज के जीवन से कोई सीधा संबंध या सिर-पैर नहीं है, उनको भविष्यवेत्ता के पास जा कर पता करना, मैं बिलकुल पसंद नहीं करती हूं। जो भी भविष्य में होगा, वह मेरे हित में होगा। मुझे तो केवल ईश्वर पर भरोसा है। वह सब कुछ हमारे भले के लिए करते हैं। हम मनुष्य उनको समझ नहीं पाते। केवल कर्म करने का अधिकार हमारा है, फल तो ईश्वर के हाथ में है।"

"अरे, इतनी छोटी उम्र में ही तुम इतनी ज्ञान की बातें कर सकती हो, इसीलिए तो मैं तुम पर फिदा हो बैठा हूं। अच्छा, छोड़ो यह बतलाओ कि तुमने लाइब्रेरी जा कर इस बात की खोज की कि जब कोई नारी शर्म से लाल हो जाती है तो उसके शरीर के भीतर कौन कौन से हारमोन स्क्रीट (अंतःस्रावी ग्रंथि द्वारा रासायनिक क्रिया) होने लगते हैं, जैसे अभी कुछ देर पहले जब मैंने तुम्हारी कलाई पकड़ी थी। तुम छुई-मुई की बेल सी शरमा कर मेरे से अलग हो गयीं। मेरे हाथ में ऐसी कुछ और प्रतिक्रिया नहीं हुई, मानो तुम्हारा हाथ छू लेने से वह तुम्हारा हाथ हाथ न रहा, तुम्हें कुछ और हो गया था, जो तुम समझ कर भी समझना नहीं चाहतीं।"

"सर, मेरी समझ में आज की चर्चा यहीं समाप्त कर दें, मेरे होस्टल की वार्डन

अनुशासन के बारे में काफ़ी सख़्त है। देर से पहुंचने पर…"

सत्यवान ने उसे शीघ्र ही जाने की अनुमति देते हुए कहा, "इस तरह तो तुम्हारी थीसिस कैसे होगी? तुम्हें पता है कि लैब (प्रयोगशाला) में प्रयोग करते समय कितनी बार तुम्हें यहीं सोना पड़ेगा, तब तुम क्या करोगी?"

"तब की तब देखी जायेगी। कुछ न कुछ प्रबंध करके वार्डन की परमीशन मिल जाया करेगी, वह भी रिसर्च के बारे में अवश्य जानती होगी," कह कर अपना पीछा छुड़ाते हुए छात्रा अपना बैग उठा कर बाहर की ओर लपकी।

सत्यवान ने भी अपना चाबी का गुच्छा उठा कर चपरासी को बुला लैब बंद करने की आज्ञा दी और खिसिया कर अपने होंठ चबाने लगा।

घर वापस लौटते समय उसके मस्तिष्क में एक ही विचार कौंध रहा था, यह छात्रा काफ़ी घाट घाट का पानी पीये हुए है। देखने में तो बड़ी भोली लगती है किंतु अपना मतलब सीधा करके यह मेरी ओर घास भी न डालेगी, इसको तो सबक़ सिखलाने की ज़रूरत है जो उसे जल्दी ही सिखाना होगा, जिससे इसकी सारी अकड़ निकल जाये।

पाठकगण, इस विषय में सत्यवान के बारे में आपकी राय बन गयी होगी। शायद उसके बारे में आपकी और मेरी निजी राय एकमत हो। इसमें संशय नहीं कि सत्यवान जो ठान लेता था, वह अवश्य करता था और उसमें उसे सफलता भी मिलती थी, लेकिन नारी के संपर्क में बेचारे सत्यवान को ज़्यादातर नीचा ही देखना पड़ा है। शायद उसके प्रति दया हृदय में न उपज आयी हो! सत्यवान ने कल्पना भी नहीं की थी कि वह छात्रा उससे कतराने लगेगी। वह केवल लैब में बैठ कर रोज़ उसका इंतज़ार करता रहा।

उस दिन के बाद से वह छात्रा उसके कक्ष की ओर आती-जाती नहीं दिखी तो खीज कर उसने द्वितीय वर्ष के पी-एच.डी. छात्र से पूछा, "मिस वर्मा दिखलायी नहीं देतीं? क्या उन्होंने पी-एच.डी. की और ज्वाइन (दाखिला) कर ली?"

"नहीं सर, वे तो रोज़ लैब आती हैं। आपने तो उनको इतनी अच्छी रूपरेखा बना कर दी है कि आजकल वह लाइब्रेरी में बैठ कर गत पांच वर्षों में इस शोधकार्य पर अन्य कितने दृष्टिकोणों से रिसर्च हो चुकी है, उसकी रेफ़रेंस लिस्ट बना रही हैं। बना कर आपके पास अवश्य आयेंगी। आप कहें तो मैं उन्हें आपका संदेशा दे दूंगा," कह कर वह छात्र इस तरह से सत्यवान को घूर कर देखने लगा कि सत्यवान सशंकित हो उठा, जो उसकी सहज प्रतिक्रिया थी। उसे सबसे अधिक गर्व अपनी प्रतिष्ठा का था, कहीं लैब में इस बात की चर्चा न उठ पड़े कि वह मिस वर्मा को लिफ्ट देने लगा है। लड़के लोग इस तरह की चर्चा में काफ़ी नमक-मिर्च लगा कर कहते हैं कि अमुक वैज्ञानिक छात्रा को मदद दी जा रही है, उसकी पूरी थीसिस मानो सर ही लिख रहे हैं, छात्राओं का काम तो चुटकी बजाते ही हो जाता है। छात्र बेचारे सुपरवाइज़र के सामने एड़ी घिसते रहते हैं तब ही उनको कुछ मदद मिल पाती है।

"नहीं, आपको मिस वर्मा को कोई संदेश देने की ज़रूरत नहीं। मेरे पास तो

आजकल कई और आवश्यक कार्य हैं। विदेश जाने की तैयारियों में मेरे पास खाने-पीने का भी समय नहीं रह पाता, इस समय अन्य किसी झमेले में पड़ने की किसको फ़ुरसत है।"

"सर, आप कहें तो मैं आपकी कुछ काम करवाने में मदद दूं?" छात्र ने आग्रह भरे भोलेपन से पूछा।

"थैंक्स। नहीं, धन्यवाद, आप अपने काम में मन लगायें," कह कर सत्यवान ने अपना पीछा छुड़ाया।

भाग्यवश जब वह लाइब्रेरी गया, वहां उसकी भेंट मिस वर्मा से सहज ही हो गयी। सीनियर-जूनियर की पूरी औपचारिकता रखते हुए पहले मिस वर्मा ने अभिवादन किया और सत्यवान ने मुस्करा कर उसे स्वीकार किया। दोनों काफ़ी देर तक अपना काम लाइब्रेरी में दत्तचित्त हो कर करते रहे, लेकिन सत्यवान ने बड़ी सावधानी से अपना काम ख़त्म करके मिस वर्मा को लाइब्रेरी की सीढ़ियों से उतरते देख उसे रोक कर पूछा, "मिस···शायद मैं आपका नाम भूला न हूं तो आप मिस वर्मा हैं, लेकिन आपका पहला नाम शायद मेघना है न?"

"जी हां, आपको कहां कुछ भी भूलता है, हर बात आपकी अंगुलियों पर रहती है, सर, आप तो चलती-फिरती···"

बीच में रोक कर सत्यवान बोला, "यह तो अच्छे वैज्ञानिक को होना ही चाहिए। आप क्यों उस दिन के बाद से मुझसे कतरा रही हैं? मैंने आते-जाते लैब में उसके बाद से आपकी छाया भी नहीं देखी," कह कर सत्यवान ने अपनी पैनी दृष्टि से मेघना को सिर से पांव तक हिला दिया।

इस सीधे प्रहार की, वह भी इतने सीनियर वैज्ञानिक से, मेघना को आशा न थी। वह हतप्रभ हो उठी, "नहीं सर, आपको कुछ ग़लतफ़हमी हो गयी है, मेरा ऐसा···"

"बस, चुप रहो, यदि ऐसा करने का तुम्हारा कोई इरादा न था, तो चलो बैठ कर एक कप चाय पीते हैं लेकिन यहां नहीं, दूर किसी अच्छे रेस्ट्रां में बैठ कर," सत्यवान ने मित्रभाव से आग्रह किया।

"सर, आज नहीं, फिर कभी आपके इस निमंत्रण को अवश्य लूंगी, आज कुछ जल्दी में हूं।"

टाल देने के लिए मेघना ने भरसक कोशिश की किंतु सत्यवान से पीछा छुड़ा लेना संभव न हो सका। वह मेघना को अपनी गाड़ी में बिठा कर शहर से काफ़ी दूर एक सुनसान अच्छे रेस्ट्रां में ले आया। चाय पीते समय वह मेघना को आंखों से प्रेमपूर्वक निहाराता रहा। मेघना को इससे पहले उसने इतने नज़दीक से नहीं देखा था। मेघना का चेहरा गोल और सुकोमल नाक-नक़्श वाला था। घनी भंवों से छती हुई मोटी मोटी दो काली आंखें उसके चेहरे पर व्याप्त थीं। उसके कोयले से स्याह बाल, छोटे से माथे पर, तनिक नीचे से शुरू होते थे। उसके सिर के बाल घने थे, जो बहुत कस कर कंघी-चोटी

न करने के कारण बिखरे बिखरे लग रहे थे। मेघना का चेहरा सुंदर अवश्य न रहा हो लेकिन चेहरे में ऐसा मोहक आकर्षण था कि आंखें उस पर अटकी की अटकी रह जातीं। मेघना चाय पीते समय और अपने आपको सत्यवान द्वारा बराबर इतना प्रेम से निहारते देख कर शर्म से लाल हो उठी। भावावेश के कारण उसके सांवले रंग में बेहद चिकनाहट आ गयी, उसके कपोलों पर छाया लाल रंग और भी आभावान हो उठा। इसी बीच सत्यवान ने उसकी कलाई को कस कर पकड़ लिया जिसको छिटक कर दूर कर देना मेघना के लिए संभव न हो सका। सब कुछ इतना सहज और एकाएक था, जैसे दो लपटें आ कर एक दूसरे से घुलमिल गयी हों! सत्यवान ने कंपित आवाज़ में उस चुप्पी को तोड़ा, "मेघना, मैं बेहद अकेलापन महसूस करने लगा हूं। विदेश जाने की तैयारी में मन नहीं लगता। तुम सबको, यानी अपने घरबार को छोड़ कर परदेश में जा कर कैसे रहूंगा, यह ख़याल मेरे मन को बेहद परेशान किये हुए है।"

मेघना ने चाहा कि वह अपना हाथ छुड़ा कर सहज हो कर ही बात करे लेकिन सत्यवान की पकड़ में रूई में लिपटी हुई सुई का सा कड़ापन था। सत्यवान ने देखा कि मेघना के चेहरे पर शर्म की लाली बढ़ती चली जा रही है और कुछ पसीने की बूंदें भी झलक आयी हैं जो घबराहट की द्योतक थीं। वह चमकते हुए दांतों के बीच निचला होंठ दबाये मुस्कराने की कोशिश कर रही थी। सत्यवान ने ठिठोली करते हुए कहा, "मैं तुम्हें खा तो नहीं जाऊंगा, तुम्हारे साथ यहां तन्हाई में एक-दो बातें करके जी हलका कर लूंगा। मुझे थोड़ा सा सहारा दे दो, मैं तुम्हें होस्टल छोड़ दूंगा। तुम चाहो तो फ़ौरन ही तुम्हें होस्टल छोड़ आऊं, बोलो, क्या तुम्हारी आज्ञा है?

आज्ञा शब्द सुन कर मेघना सिहर उठी। सर का 'आज्ञा' कहना उसे बेहद अटपटा लगा। सहज होने के लिए उसने अपनी कलाई अलग कर ली और सोफ़े के पिछले कोने से सट, तन कर मौन बैठ गयी।

"लगता है, यहां ला कर मैंने भूल की। तुम्हें यहां का वातावरण अच्छा नहीं लगा, चलो, चलते हैं," कह कर सत्यवान ने बेयरा को बिल लाने का इशारा किया। बेयरा भी आश्चर्यचकित था कि केवल दो प्याली चाय पीने के लिए शहर से बाहर के इस रेस्त्रां में दो जोड़े कदाचित् ही आये होंगे लेकिन सत्यवान ने उसे अच्छी टिप दी, अतएव वह बड़ा सा सलाम करके 'भविष्य में फिर पधारिए' कह कर चला गया।

सत्यवान की कार खुली सड़कों पर तेज़ी से भाग रही थी। लेकिन उससे भी तेज़ी से मेघना का दिल घबराहट में धड़धड़ चल रहा था। सत्यवान के मस्तिष्क में रह रह कर एक ही इच्छा उठ रही थी कि वह मेघना को हृदय से लगा कर उसके अधरों का रसास्वादन कर ले। चलती गाड़ी में यह संभव कैसे होता? किंतु सत्यवान की प्रबल इच्छाशक्ति ने गाड़ी को एक किनारे रोक कर रख दिया। एकाएक मेघना को अपने बाहुपाश में ले कर सत्यवान ने उसके अधरों, कपोलों और उभरे हुए उरोजों पर अनेक चुंबन अंकित करते हुए कहा, "मैं तुम्हारे बिना जीवित नहीं रह सकता, विदेश जाने से

पहले मैं तुमसे शादी करना चाहता हूं।"

मेघना को सत्यवान का पशुवत व्यवहार अत्यधिक मितली दिलाने वाला लग रहा था। उसने चुप रह कर इस समय अपना अपमान सहन कर लेना स्वीकार कर तो लिया लेकिन सत्यवान के प्रस्ताव को यह कह कर सहजता से ठुकरा दिया, "आप मेरी ओर आकर्षित हुए हैं, किंतु प्रेम एक तरफ़ से नहीं किया जाता। एकतरफ़ा प्रेम एक सज़ा है, उसमें मज़ा नहीं आता।"

सत्यवान ने मेघना को कई तरह से बाध्य किया कि वह उसके प्रस्ताव को न ठुकराये, लेकिन मेघना क्यों सत्यवान के प्रस्ताव को सुन कर अत्यधिक कठोर और निष्ठुर होती गयी, इसका ज्ञान सत्यवान को कदापि न हो पाया। वह अपने एकतरफ़ा प्यार में झुलस कर रह गया और किशोरावस्था से नारी के प्रति उपजी उसकी घृणा और भी अधिक गति से विस्फोटक बिंदु पर पहुंचने लगी। घंटों वह अकेले बैठ कर मेघना से भेंट करने के दिवास्वप्न बनाता और उसे अपमानित करके अपना बदला लेने में मानसिक शांति पाता। मेघना को अपमानित करने के लिए उसके मस्तिष्क में बलात्कार करने की तीव्र उत्कंठा होती जिसे दबाने के असफल प्रयास में वह स्वयं को धिक्कारने लग जाता। वह समझ न पाता, उसके जैसे संयमी, सफल वैज्ञानिक का मस्तिष्क कैसे पाप के इस धरातल में धंसता जाता है, सारे संस्कार, पढ़ाई-लिखाई कहां चली जाती है? मान-प्रतिष्ठा आदि भी कोसों दूर हो जाती है।

पाठकगण, क्या आप सत्यवान को चरित्रहीन, आवारा कहना पसंद करेंगे? शायद उस पर कभी कभी एक तरह के पागलपन का भूत सवार हो जाता है। माना यह मनोविज्ञान का विषय होगा, लेकिन आज के शिक्षित समाज के लिए एक चुनौती अवश्य है जिसका सामना हर स्वाभिमानी कामकाजी महिला को करना ही पड़ता है ऐसे पुरुषप्रधान समाज में, जो अपने अमानुषिक दंभ में नारी को सेक्स द्वारा छल कर प्रतिशोध में नीचा झुका देना चाह उठता है।

पाठकगण सत्यवान के व्यक्तित्व का सभ्य मुखौटा उतरा देख इस समय अपनी अपनी तरह से अनुमान लगाने के लिए स्वतंत्र हैं, लेकिन सत्यवान की मानसिक ग्लानि से यदि वे परिचित होते तो उसे इस तरह से एक कामुक अपराधी न कहते क्योंकि अवचेतन में कामवासना मानव को सदैव से उद्वेलित करती आयी है। 'कामी नारी प्यारी जिम, लोभी प्रिय जिम दाम'—तुलसी दास ने नारी के प्रति उपजी कामवासना को राम के चरणों में समर्पित करके मन को सतत शांत करने का प्रयत्न किया, सदैव प्रार्थना में कहा : *'कामादि दोषरहितं कुरु मानसं च'* (*सुंदरकांड, श्लोक 2, रामचरितमानस*)। सत्यवान के लिए मेघना का तिरस्कार असहनीय था। वह वास्तव में मेघना से शादी करने के लिए अति उत्सुक था, क्योंकि वह हर तरह से उसे अपना उपयुक्त जीवनसाथी मान बैठा था। उम्र में अवश्य वह उससे पांच-सात वर्ष बड़ा था किंतु मेघना के सुशील, शालीन व्यक्तित्व में उसे वह परिपक्वता दिखी जिसकी उसमें बेहद कमी थी। वह उसके

व्यक्तित्व की पूरक थी। काश, यदि वह उसे पा जाता तब कदाचित् यह दीवानापन उसके ऊपर सवार न होता! सत्यवान ने मेघना को पाने के लिए एड़ी-चोटी के प्रयत्न किये। वह रोज़ लाइब्रेरी में जा कर मेघना के एकदम सीधी दिशा में बैठ कर पढ़ने का अभिनय करता। मेघना का ध्यान आकर्षित करने के लिए उसे टकटकी बांध कर देखने लगता। अन्य छात्रों से आंख बचा कर वह काग़ज़ की स्लिप पर 'हां, क्यों नहीं? सोच विचार कर देखो,' लिख कर मेघना के पास पहुंचाता।

साहित्य में प्रेमी-प्रेमिका न जाने कितनी तरह से अपने संदेश को एक दूसरे तक पहुंचाते आये हैं, उनके सहायक पशु-पक्षी तक हुए हैं, दास-दासी, मित्रगण आदि की तो लंबी लाइन है किंतु बेचारे सत्यवान के पास क़लम, पेंसिल के अतिरिक्त कुछ न था। अकेले में वह मस्तिष्क में सतत उठते हुए अपने तूफ़ान से अत्यधिक परेशान था। इसी में उसने खाना-पीना भी छोड़ दिया। पढ़ाई से उसका मन उचाट हो गया। विदेश जाने की तैयारी बंद करके वह अपने कमरे में बैठ कर आंसू बहाता, अपने को प्रताड़ित करता कि वह एक नामर्द है, इसीलिए मेघना ने उसके प्रस्ताव को ठुकरा दिया, नहीं तो उसमें क्या कमी थी कि वह लड़की उसके विवाह के प्रस्ताव को ठुकरा देती? मेघना जैसी प्रथम सत्र की छात्रा की क्या मज़ाल थी कि वह उसकी आंखों के सामने इठलाती हुई लैब के अन्य छात्रों के साथ हंस हंस कर बातें करे? उसे नीचा दिखलाने के लिए ही मानो मेघना ने इस समय बेशर्मी का चोला पहन लिया है। आजकल वह ख़ूब सजधज कर लैब आने लगी है। उसने कई बार मेघना को देर तक लाइब्रेरी की सीढ़ियों पर बैठ कर विनोद के साथ हंस हंस कर बातें करते भी देखा, मानो वह सत्यवान का वहां बैठे अपने विनोद और अन्य छात्रों के साथ मज़ाक़ बना रही हो। सत्यवान यह सब देख कर आश्चर्यचकित हो जाता, क्या नारी का हृदय इतना कठोर होता है कि अपने एक प्रेमी को दीवाना बना कर उस विजयोल्लास में, जो भी पुरुष उसके पास आता है, उसे लट्टू की तरह नचा कर रख देना चाहती है? ऐसी पत्थरदिल नारी के गर्वीले रूप को चूर चूर कर देना चाहिए, वह अवश्य बदला ले कर रहेगा। काश, वह अपने इन विचारों के अंतर्मंथन से उबर पाता, चैन से सो पाता! लैब में वह पहले की तरह अपने शोधकार्य को कर पाता। उसे विदेश जाने के लिए कई पेपर (वैज्ञानिक लेख) लिखने थे। लेकिन अपनी मान-प्रतिष्ठा को मेघना के प्रेम पर दांव लगा देने में उसे क्या मिलेगा? क्या केवल जगहंसाई? जीवन में इतनी बड़ी हार सत्यवान ने पहले कभी नहीं देखी थी। उसका हृदय भर आया, आंखों से टप टप आंसू गिरने लगे। मन में कसैला स्वाद था। सतत उठती बदला लेने की इच्छा को दबाने के असफल प्रयास में सत्यवान बुरी तरह से टूट चुका था। परिवार के प्रियजनों को उसके व्यवहार में बेहद बदलाव दिखलायी देने लगा। पिता को लगा, शायद दिन भर दौड़-धूप (विदेश की तैयारी) में सत्यवान अच्छी तरह सो भी नहीं पाता। इसके ऊपर जो भी करने की इच्छा एक बार जाग्रत हो उठती, उसको जब तक कर नहीं लेता, इसे चैन नहीं मिल पाता, मानो इसके ऊपर एक जुनून सा सवार हो

जाता है।

पिता ने अपने इस अनुमान को सिद्ध करने के लिए सत्यवान से पूछा, "तुम्हारी कितनी तैयारी हो गयी है, कितनी अभी बाक़ी है, अब तक कोई तारीख़ तुमने निश्चित कर ली हो तो हमें भी बतलाओ, हम लोग भी उसी तरह से अपनी तैयारी शुरू करें।"

"आप लोगों को क्या तैयारी करनी है? जिस दिन मुझे जाना होगा, उसके दो दिन पहले बतला दूंगा, फ़िलहाल तो मुझे विदेश नहीं जाना है।"

"क्यों, क्या बात हुई?" पिता सत्यवान के इस उपेक्षा भरे उत्तर से शंकित हो उठे। एक लंबी चुप्पी के बाद पिता-पुत्र ने अपने को एक दूसरे से तटस्थ कर लिया। पिता को पता था कि सत्यवान को वह कभी समझ नहीं पाये हैं, दोनों के बीच की दूरी सत्यवान की बढ़ती उम्र के साथ बढ़ती ही गयी। जैसे नदी के दो किनारे मैदान में जाने पर और चौड़े हो कर अलग-थलग बहते रहते हैं किंतु उनमें आज उठा तूफ़ान अवश्य दोनों को उद्वेलित किये हुए था। पिता ने अपनी घबराहट सत्यवान के समक्ष स्पष्ट नहीं की, किंतु पत्नी के समीप आते ही वह उसे रोक न सके, "सुनती हो, तुम्हारा लाडला सत्यवान विदेश नहीं जा रहा है। क्यों नहीं जा रहा है, उसके मन की तुम ही जानो, मुझे वह कुछ बतलाने से रहा, तुम्हीं जा कर पूछो और उसे किसी तरह मना कर तैयार करो। ऐसे मौक़े बार बार नहीं मिलते। वह अपने आपको न जाने कितना बड़ा आदमी समझता है, जैसे उसमें कोई सुरखाब के पर लगे हों!"

"बस, आपको तो सत्यवान में सारे अवगुण ही नज़र आते हैं। उसकी इस समय अपनी क्या मजबूरी है, इसका अंदाज़ आपको नहीं है। देख रही हूं, वह कई दिनों से बेहद परेशान है, खाना-पीना भी नहीं खाता है, रात भर करवटें बदलता रहता है। मुझे तो ऐसे में उसके विदेश न जाने की बात सुन कर शांति मिली है। वहां तो उसके अपने कोई भी न होंगे, कौन उसकी देखभाल करेगा? मेरी समझ में तो विदेश भेजने से पहले हमें उसकी शादी कर देनी चाहिए।"

"तुम मां-बेटे में क्या पक रही है, मुझे क्या मालूम? वह तो अपने मुंह से कुछ नहीं कहता। मेरी समझ में शादी का भार सत्यवान पर इस समय डालना ठीक न होगा। हम सब उसके अपने हैं फिर भी वह हम से कटा कटा रहता है, ऐसे में परायी लड़की को उसके गले बांध देने से हम तो अवश्य अपनी ज़िम्मेदारी पूरी कर अलग हो जायेंगे लेकिन उस बेचारी नादान लड़की पर क्या गुज़रेगी, क्या तुमने कभी सोचा है?"

"मेरा सत्यवान हमेशा मेरी बात को रखता आया है, मैं तो उसकी उन्नति देख गर्व से फूली नहीं समाती। मुझे पूरा विश्वास है, उसकी बहू को ला कर हमारी ज़िम्मेदारियां ही ख़त्म नहीं होंगी, हमें उसके परिवार से वह सुख मिलेगा जो आज तक बड़के की बहू हमें नहीं दे पायी।"

"बड़के की बहू में क्या कमी है? तुम्हारी-मेरी पूरी सेवा करती है। उसी के कारण हम पांच साल से सम्मिलित परिवार में सुख से रह रहे हैं। मुझे तो लगता है, नन्हे की

शादी हमें बड़के की बहू के परिवार की लड़की के साथ कर देनी चाहिए, देखे-सुने परिवार में शादी-ब्याह···"

बात काटते हुए पत्नी बोल उठी, "लो, सुन लो इनकी बातें! मेरा इतना पढ़ा-लिखा लड़का, कमाता-धमाता, जिसे विदेश में जाने के लिए सरकारी पूरी मदद मिल रही है, उसकी शादी मैं बड़के की सुसराल में कर दूं, आप भी न जानें···"

"तुम जहां चाहो वहां की लड़की से संबंध तय कर लो, तुम्हारी बात को तो भगवान भी नहीं टाल सकता है, फिर मेरी क्या मज़ाल!" वे खीज कर वहां से उठ गये, और अख़बार को पढ़ने में अपना मन लगा लिया।

सत्यवान के परिवार में इस संवाद के बाद से हलचल सी पैदा हो गयी, क्योंकि बड़े ज़ोरशोर से उचित रिश्ते के खोजने की तैयारियां शुरू हो गयी थीं। सत्यवान को एकाएक जीवन में इस विषय परिवर्तन से शांति मिली, क्योंकि चित्त से मेघना की स्मृति धूमिल होना स्वाभाविक था। मां-बाप तथा अन्य रिश्तेदारों के अथक प्रयास के कारण उसके लिए अच्छे अच्छे परिवारों से रिश्ते आने लगे। नवयुवतियों के फ़ोटो देख उन्हें रद्द करने में उसे वैसा ही मज़ा आने लगा जैसा गर्वीलापन उसे छात्र-छात्राओं की कॉपी जांचने में आता रहा है। मां-बाप शुरू शुरू में इस कार्य में उसको अपना पूरा पूरा सहयोग देते क्योंकि कई रिश्ते उनकी आशा से बढ़-चढ़ कर आये थे। उन्हें विश्वास होने लगा, यदि सत्यवान की शादी किसी बड़े घर में हो जाती है तो दहेज में अनायास ही वह सब कुछ मिल जायेगा जो वह अपनी ज़िंदगी की पूरी कमाई के बाद भी आज तक जुटा न पाये थे। किंतु रिश्ते की बात पक्की होते होते किसी न किसी कारणवश वह रुक जाती। कहीं लड़की वाले लड़के के परिवार का रहन-सहन देखने के बाद पीछे हो जाते! तो कहीं सत्यवान को लड़की पसंद न होती, और कभी लड़की और उसके मां-बाप सत्यवान को देखने के बाद चुप हो जाते। बूढ़े मां-बाप उचित रिश्ते की खोज में सत्यवान के साथ एक तरह के इस शोधकार्य में अधिक दिनों तक कब तक रह पाते! बढ़ती निराशा पर क़ाबू करके अपनी इच्छा को शीघ्र कार्यान्वित करने के प्रयास में मां ने कहा, "बेटा, मैंने तुम्हारे लिए एक लड़की पसंद कर ली है, तुम्हारी भी देखी हुई है, लेकिन तुमने उसके परिवार को बेहद घमंडी कह कर उनके यहां से आये रिश्ते को ठुकरा दिया था। मेरी समझ में हमें लड़की और दान-दहेज से मतलब है। तू तो अपने आपको किसी से कम बड़ा आदमी नहीं मानता, ऐसे होनहार दामाद को पा कर उनका घमंड अपने आप चकनाचूर हो जायेगा।"

मां की यह दलील सत्यवान को ठीक लगी। वह स्वयं भी मन ही मन ऐसी नारी की खोज में था जिसका स्वाभिमान खंडित कर वह गर्वीलापन अनुभव कर सके। माना आजकल अपने को वह एक बंद गुफा के अंधियारे में बराबर रपटता हुआ सा अनुभव करने लगा था लेकिन शादी-ब्याह की धूमधाम और भीड़ में वह अपने को पूरी तरह व्यस्त कर देना चाह उठा, अतएव मां को उसने शीघ्र इस रिश्ते को पक्का करने की

अपनी स्वीकृति दे दी।

मां-बाप के अतिरिक्त उसका पूरा परिवार इस रिश्ते के पक्के हो जाने से स्वयं को प्रतिष्ठित अनुभव करने लगा, एकाएक समाज में उनकी धाक जमने लगी। काफ़ी धूमधाम से सत्यवान का विवाह संपन्न हुआ और वह अपनी सुयोग्य पत्नी उमा को पा कर धन्य हो उठा। नारी के प्रति उसके अंतर्मन में बैठी बदला लेने की चिंगारी मानो बुझ कर रह गयी। पत्नी के रूप में आते ही उमा ने सत्यवान की किसी भी तरह की कमज़ोरी को अनदेखा कर, उसे सहजता से स्वीकार लिया। सत्यवान पहली रात्रि से ही अत्यधिक वहशी रूप से उमा पर अपनी शारीरिक भूख को तृप्त करने की हवस के कारण संभोग की रतिक्रिया को ऐसी स्थिति में पहुंचा देता जहां वह अपना संतुलन खो बैठता। वह पत्नी को उस कार्य में अपनी सहचरी न बना पाता, उसे तृप्ति न दे पाता। अचानक स्खलित हो जाता और दूसरी ओर करवट बदल सोने का अभिनय करने लगता। मन ही मन में उठी एक ग्लानि भावना उसके मन-मस्तिष्क पर छा जाती, इससे तो अच्छा हस्तमैथुन था जहां साथी के साथ नपुंसक होने की शर्मिंदगी उठानी न पड़ती थी। उमा के कौमार्य भंग करने की शक्ति सत्यवान में दिन पर दिन कम होती गयी। वैवाहिक जीवन का बोझ उठा सकने का सामर्थ्य मानो उसमें नामर्द हो जाने के कारण समाप्त हो रहा था। सर्प की मणि की तरह उमा को अपने इर्द-गिर्द रखने के प्रयास में सत्यवान सुबह, शाम, रात इतना अधिक समय देता कि वह नवविवाहिता अन्य किसी से मिल ही नहीं पाती। पति के अनोखे प्रेम प्रदर्शन से असंतुष्ट हो वह किसी अपने स्वजन से भी नहीं मिल पाती। यह सब एक रहस्य बन कर नववधू उमा के मानसिक उद्वेलन का कारण बनता गया। प्रथम रात्रि में सत्यवान ने पत्नी से संपूर्ण रूप से उसकी बन कर रहने की संयम की बात कही थी। क्या उसी को निभाने के लिए वह उसे उसके भैया के घर जाना बंद कर रहा है? अपने घर वालों से भी मिलने-जुलने की क्यों अनुमति नहीं देता है? भोली-भाली उमा को पता न लग पाया कि सत्यवान ने उसके ऊपर जो कड़ी चौकसी लगा दी है, उसका कारण उसकी अपनी विवशता है जो सामाजिक नहीं कदाचित् मानसिक थी। विवाह के कुछ दिनों बाद ही सत्यवान को अपनी रिसर्च के काम में मगन होना पड़ा, लेकिन उमा के लिए वह जीवन की सब सुख-सुविधाओं को जुटा कर रखने का पूरा प्रयत्न करता रहता। वह उमा को सम्मिलित परिवार के गृहस्थ जीवन में पूरी तरह से रमा कर रखना नहीं चाहता था, क्योंकि उसे भय था कि बड़ी भाभी की तरह बड़े घर से आयी उसकी पत्नी गृहस्थी को चतुरता से संभाल न सकेगी, इसका उसने जल्दी ही अनुमान लगा लिया। सम्मिलित परिवार में रह कर, पत्नी पर अपना एकाधिकार रखना संभव न था, अतएव विवाह संपन्न होते ही वह विदेश यात्रा को निकल पड़ा। पत्नी को वह अपने से एक पल भी विलग न होने देता। हवाई यात्रा द्वारा तीन दिन में ही उमा को लंदन, पेरिस की यात्रा करवाता हुआ अपने गंतव्य स्थान पहुंच गया। इस लंबी यात्रा को समाप्त कर जब वह कॉलेज के ग्रीष्मकालीन सत्र के बाद अपने

रिसर्च स्थल पहुंचा तो उसका मन एकाएक स्वदेश के लिए लालायित हो उठा। उसे मां की याद सताने लगी, लगने लगा, काश, वह मां की गोद में बैठ कर सुबक सुबक कर रो पाता! विदेश की बड़ी प्रयोगशाला को देख कर वह निजी रिसर्च की चुनौती स्वीकार करने के लिए अपने आपको असमर्थ पाने लगा।

कनाडा देश का यह छोटा सा सुंदर शहर इस समय बसंत ऋतु में अपनी भरी हुई प्रकृति लिये उसके सम्मुख स्वागत में खड़ा था। खिले हुए फूल, नीला आकाश, चारों ओर से आती हुई बड़े बड़े वृक्षों की आवाज़, सुदूर नीली झील से उठी लहरें उसको बार बार अपने पास प्रेमपूर्वक बुला रही थीं। लेकिन प्रकृति का यह अनुपम रूप परदेश में उसे पराया सा लग रहा था। यहां की प्रकृति उसे अपनी नहीं लग रही थी, सब कुछ बदला बदला सा प्रतीत हो रहा था। सहसा इस एकाकीपन से भाग कर वह घर आ कर अपनी पत्नी उमा के आंचल के नीचे छिप जाने के लिए आतुर हो उठा। लेकिन, इस समय तो उमा कार ले कर पास के स्टोर से घर-गृहस्थी का सामान ख़रीदने गयी हुई थी। यह भान होते ही उसकी कमी उसे बेहद खलने लगी। वह एकाएक सशंकित हो उठा, उसे उमा को इस नये स्थान में एकदम अकेले नहीं भेजना चाहिए था। परदेश में अगर उसे कुछ हो जायेगा तब वह···आख़िर वह साथ में क्यों नहीं गया? यह सोच कर आत्मग्लानि से सत्यवान तिलमिला उठा।

उसी समय कार का हॉर्न सुनायी पड़ा। वह दौड़ कर भागा। सीढ़ियों से उतरते समय उसका सीधा पैर एक बड़े पत्थर से टकरा गया। चोट साधारण सी थी किंतु सत्यवान की वर्तमान मनःस्थिति में उसे पीड़ा काफ़ी गहरी महसूस हो रही थी। वेदना से उसके सीधे अंग जड़वत से हो गये। वह आगे बढ़ कर उमा के हाथ से सामान लेने में भी असमर्थ था। उमा ने मुस्करा कर आगे बढ़ सत्यवान का हाथ थाम कर कुर्सी पर बिठा दिया, "क्या चोट ज़्यादा आ गयी? आपको इस तरह बच्चों की तरह उतावला हो भाग कर मुझे रिसीव नहीं करना चाहिए था।"

"मैं तो बच्चों से भी छोटा भोला शिशु हूं जो मां के बिना एक पल भी जीवित नहीं रह सकता। पता नहीं क्यों, मुझे घर की याद बेहद सता रही है, रह रह कर मेरा मन उचाट हो जाता है। पंख होते तो मैं आज ही स्वदेश लौट जाता।"

"अरे, मैंने तो एक महीने के राशन-पानी का इंतज़ाम कर लिया है। यहां के एक छोटे से शहर में एक ही जगह इतनी सारी घर-गृहस्थी की सामग्री बिक रही थी कि मैं जो कुछ बटोर कर ला सकती थी, सब ख़रीद कर ले आयी हूं। मैं तो यहां आ कर बेहद खुश हूं। दोनों मिल कर एक नयी ज़िंदगी की शुरुआत कर सकेंगे। खुशी है, आप अपनी रिसर्च का ख़ज़ाना खोल कर नहीं बैठे, नहीं तो मेरे साथ बैठ कर एक प्याला चाय पीने की भी फ़ुरसत आपको नहीं मिल पाती।"

"अच्छा, ऐसी बात है, तो बस मैं आपकी शक्ल को ही केवल निहारता रहूंगा। मैं अब आपकी पूरी गिरफ़्त में हूं, सदैव से आपकी अंगुलियों पर नाचता आया हूं," कह

कर सत्यवान ने अपनी पत्नी को बाहुपाश में बांध लिया।

घर-गृहस्थी का सामान मेज़ के ऊपर पटक कर उमा पति के इशारों में बंधी अपने शयनकक्ष में आ गयी। इस पल सत्यवान को उमा के वात्सल्य भरे सहारे की अति आवश्यकता थी। उमा ने पूरी क्षमता से सत्यवान की उस भूख को पहचाना, मानो दोनों के हृदय में एक ही अभिलाषा थी! प्रेम की इन हिलोरों में दोनों ने अपने आपको पूरी तरह से समर्पित कर दिया। दो शरीर, दो प्राण गत कितने दिनों से पृथक् रहे थे, इन दोनों में एक हो जाने की प्रबल इच्छा अवश्य रही होगी, लेकिन सत्यवान का अहम आड़े हाथों आ जाता। परंतु आज इस विदेश में उमा के शरीर में पूरी तरह से खो जाने में वह अपने को सुरक्षित महसूस करने लगा। शनिवार और रविवार की छुट्टियों के वे दिन एक दूसरे के बाहुपाशों में बंध कर किस तरह कब ख़त्म हो गये, इसका आभास तक पति-पत्नी को न लग पाता यदि श्रीयुत सिंह स्वयं आ कर अपने घर पर भोजन का निमंत्रण उन्हें न देते। इस स्वदेशीय आगंतुक के निमंत्रण ने कामातुर पति-पत्नी को बाहरी जगत में वापस लौटा दिया। निःसंदेह विदेश में स्वादिष्ट भारतीय भोजन का रसास्वादन करने के उपरांत उमा और सत्यवान भारतीय गृहस्थ जीवन की गरिमामयी परंपरा निभाने के प्रति सचेत हो उठे। यद्यपि दोनों में एक दूसरे के प्रति असाधारण रूप से प्रेम भरा समर्पण था, लेकिन संवेगों का उतावलापन उतार पर आ गया था, जो शारीरिक क्रियाकलापों में पहले विकृतियां ला देता था। सत्यवान को उमा के समकक्ष अपने बौनेपन का आभास होना बंद हो गया कि वह नामर्द है। शायद कारण यह भी रहा होगा कि इस बीच उमा ने उसे एक ख़ुशख़बरी दे दी कि वह प्रेमभरी ऐसी भेंट देगी जिसको पा कर वह इस विदेश में भी अकेलापन अनुभव न कर सकेगा।

यह सुनते ही सत्यवान के वैज्ञानिक मस्तिष्क में एक विचार कौंध गया कि उसकी पत्नी मां बनने वाली है, अतएव वह उमा के खाने-पीने का विशेष ध्यान रखने लगा। किंतु डॉक्टरी जांच करवाये बिना वह पत्नी से किसी प्रकार की निजी ख़ुशी की प्रतिक्रिया को प्रकट करने में असमर्थ था। उमा को आश्चर्य होता कि सब कुछ जान कर भी ये अनजाने रहने का नाटक अब क्यों कर रहे हैं? नारी जातिजन्य लज्जा के मारे वह पति से पूछ न सकी कि वह इस सत्य को क्यों खुल कर स्वीकार नहीं कर पाते? पति-पत्नी के बीच की यह दूरी असहनीय बन गयी, विशेषकर ऐसे समय में जब उमा के लिए विदेश में प्रथम गर्भावस्था झेलना कठिन हो रहा था। उसे सुबह सुबह ही कै होने लगती, फिर कुछ भी रुचिकर न लगता। किसी तरह अकेले घर का कामकाज निपटा कर जब वह सत्यवान के समीप बैठती, उसकी कुशाग्र बुद्धि सत्यवान की मनःस्थिति को भांप लेती। सत्यवान के हृदय में यौवन से ही एक अज्ञात नारी का प्रेयसी रूप में स्थान सुरक्षित था, उस रिक्त स्थान की पूर्ति उमा मां बन कर कदापि न कर सकेगी। शारीरिक भूख के स्तर पर अनेक स्त्रियों के शरीर को प्राप्त कर लेने की प्रबल इच्छा पुरुष जाति की कमज़ोरी रही है। उन इच्छाओं की तृप्ति से कदाचित् परे सत्यवान को प्रेम की भूख

थी जो उसके हृदयस्थल में सुप्त पड़ी है, लेकिन जब कभी जाग्रत हो उठती तो वह वैवाहिक संबंध से विलग उस क्षितिज को पाने के लिए वास्तविकता से पलायन कर लेता। ऐसे पति को तो एक नटखट बच्चे की तरह डोरियों से बांध कर ही गृहस्थी में रखना होता है।

पति-पत्नी के बीच की दूरी को पाटने के प्रयास में उमा ने पहल की, "आप आजकल मेरे खाने-पीने की चिंता न करें, दोपहर तक मैं काफ़ी स्वस्थ अनुभव करने लगती हूं, फिर यहां फलों का जूस, ताज़े फल, सब्ज़ी, दूध, दही सब ही काफ़ी अच्छे अच्छे मिलते हैं, खाने से ज़्यादा मुझे आपकी···"

सत्यवान ने बीच में ही टोक दिया, "मुझे पता है कि तुम अकेले में भी संतुलित भोजन का प्रबंध कर लोगी, किंतु यहां पर घर के कामकाज का भार तुम्हारे कंधों पर आ गया है। मुझे पता है, तुम्हारी सब तरह के कामकाज की आदत नहीं है, मुझे भी यह सब काम नहीं आता, फिर यह काम तो औरतों का है," कह कर सत्यवान उमा की प्रतिक्रिया जानने के लिए उत्सुक हो उठा। उसने अपने घर में बड़ी भाभी, बहनों और निजी कुटुंब और पड़ोस की महिलाओं को मातृत्व भार के साथ घर-गृहस्थी के कार्य को वहन करते देखा था। उसे नारी के इस रूप के प्रति कोई करुणा न थी केवल औपचारिकता मात्र से पत्नी से वह सहानुभूति प्रदर्शित कर बैठा था।

"आपको, लगता है, कोई ख़ुशी नहीं हुई है कि मैं मां···"

"अभी बहुत जल्दी है। पता नहीं तुमने कैसे अनुमान कर लिया है। शायद तुममें विवेक-बुद्धि है, वह मुझमें नहीं, फिर तुमने पूछा भी नहीं कि हम दोनों बच्चे का भार इस समय लेने के लिए तैयार हैं या नहीं?"

"आपका क्या मतलब है? सहज ही उपलब्धि हो जाने के कारण क्या गर्भाधान हो जाने की ख़ुशख़बरी न रही? अगर यह न हो गया होता तो आपकी भूख-प्यास सब उड़ जाती।"

"उमा, समझने की कोशिश करो, भावनाओं से ऊंचा कर्तव्य होता है। हम यहां पर उच्चस्तरीय शोधकार्य करने आये हैं, ऐसे में तुम्हारा एकाएक गर्भवती होना, कोई सुनेगा तो क्या कहेगा? मैं तो शर्म से···"

"आपको शर्म आती है, जैसे मैंने कोई अपराध कर दिया हो! नारी के इस रूप को सहज पा कर मैं तो गर्व से फूली नहीं समा रही हूं, आप चाहें तो मैं अभी स्वदेश लौट जाऊं, मेरे घर वालों को तो बेहद ख़ुशी होगी।"

"ऐसी जल्दबाज़ी करने की ज़रूरत नहीं है। मुझे भी समय चाहिए कि मैं अपने को पिता बनने के लिए तैयार कर सकूं। सच मानो तो ये दिन हमारे जीवन में हंसने-खेलने के हैं, मैंने तुम्हें पूर्ण रूप से···"

"नारी के मातृत्व का जो पुरुष अभिनंदन न कर सका, वह नारी के हृदय को कभी भी जीत न सकेगा।" दृढ़ता के साथ उत्तर दे कर उमा इस बहस को यही बंद कर देना

चाहती थी किंतु सत्यवान ने अपनी भूल को सुधार लेने के लिए इस बहस को जारी रखते हुए कहा, "मैं तो तुम्हारे मातृत्व रूप का पुजारी हूं। मैं तो खुद एक भोला शिशु सा तुम्हारी गोद में छिपने, इस संसार के मायाजाल से भाग कर आ जाता हूं। अपने को तुम्हारी गोद में बेहद सुरक्षित पाता हूं। उमा, मैं इस गोद में किसी और को देख अनाथ हो जाऊंगा।"

"अभी से आपको ईर्ष्या हो उठी है! मान गये! मैंने आज जाना कि इतना बड़ा वरिष्ठ वैज्ञानिक इतना अधिक असुरक्षित भी हो सकता है।"

"मैं सदैव ही असुरक्षित भावना से पीड़ित रहा हूं इसीलिए कहता हूं मेरे और तुम्हारे बीच में कोई नया कभी न आये, नहीं तो ख़ून-ख़राबा हो जायेगा।"

"वाह, आप अपनी खुद की संतान को भी हम दोनों में नहीं आने देना चाहते! आप जब अपनी लैब में घंटों चले जाते हैं तब मैं अकेली कैसे रहती हूं?" उमा का तर्क अकाट्य था।

"इसलिए आप इतनी जल्दी मां बनने की तैयारी में हैं! ठीक है, यह बहस यहीं ख़त्म हुई, फिर न कहना, मैं आवारा बच्चे की तरह इधर-उधर भटक रहा हूं।"

यह सुन उमा के आंसू आ गये, लेकिन सत्यवान उन्हें अनदेखा कर अपनी लैब की ओर निकल पड़ा। इस बहस का कुछ अच्छा और कुछ बुरा प्रभाव पड़ना था जो दोनों के व्यवहार से परिलक्षित होने लगा। सत्यवान इस बात के लिए सचेत हो गया कि गृहस्थ जीवन का भार उसे भी उठाना पड़ेगा, सब कुछ ऐसे समय में उमा पर छोड़ देना ग़लत होगा। वह घर की सफ़ाई, बाहर से सामान आदि लाने के काम में हाथ बंटाने लगा और इस बात का विशेष ख़याल रखने लगा कि उमा की उचित खुराक एवं स्वास्थ्य की देखभाल होती रहे। विदेश में आ कर उसने पहली बार अनुभव किया कि भारतीय नारी अपने परिवार एवं आने वाले अतिथियों की सेवा में कितना अधिक परिश्रम करती है। यहां तो अतिथि भी कम होते हैं और हर एक काम मशीनों द्वारा किया जाता है। यहां सफ़ाई भी हफ्ते में एक-दो बार ही करने की ज़रूरत पड़ती है, फिर भी काफ़ी समय इन मशीनों द्वारा काम करने में एक गृहिणी को लग जाता है। गृहस्थी में हाथ बंटा कर सत्यवान भारतीय परंपरा के प्रति नतमस्तक हो उठा। शादी के तुरंत ही बाद बड़ी भाभी घर का सारा काम करने में अभ्यस्त हो गयीं। उसके ऊपर सास के कितने उलहाने सुनतीं किंतु प्रतिवाद तक नहीं करतीं। उसने अपनी मां को सदैव यही कहते सुना कि हमारे ज़माने में सात-आठ बच्चे होते थे, घर में कुटुंबियों का, आने-जाने वालों का तांता लगा रहता था। जब भी रात-बिरात मेहमान आया, चूल्हा जला कर उसके लिए गरम गरम साग-पूरी बनायी गयी। लेकिन आज का ज़माना है कि काम गैस पर किया जाता है, न धुआं, न लकड़ी सुलगानी पड़ती है, फिर भी नौजवान इन बहू-बेटियों के सिर और कमर में दर्द रहता है, वार-त्योहार तक में खाना बनाने-खिलाने में कोई उमंग नहीं दिखती। उसकी पत्नी को मां की ऐसी जली-कटी सुनने को नहीं मिली है, नहीं तो

उमा···इसी संकोचवश अमीर घर से आयी अपनी पत्नी को वह खुद भी कभी डांट नहीं पाया, क्योंकि उसके चित्त में प्रथम रात्रि से ही एक भय बैठ गया था। आज की इस बहस के बाद से वह पत्नी के साथ संभोग करने में अत्यधिक सावधानी बरतने लगा। उसे भय था, कहीं वह संवेग में बह कर उमा को कोई चोट न पहुंचा दे।

उमा भी अपने गर्भाधान के प्रति अत्यधिक सजग हो गयी थी। उसने पढ़ रखा था कि पहले तीन महीने में काफ़ी सावधानी बरतनी चाहिए। वैसे भी पति की स्वीकृति मिल जाने के बाद वह अंदर से काफ़ी हिली हुई थी। इनका क्या ठिकाना, कहीं मुझे गर्भपात करवाने की सलाह न दे बैठें! इन्हें तो अपना हर कार्य अपनी इच्छानुसार करने की आदत है। ईश्वरेच्छा को ये मानने को तैयार नहीं, भाग्यवादी होने को केवल कायरता कह कर उसका मज़ाक़ बना सकते हैं। विशेषकर रात्रि में अपने शयनकक्ष में उमा को पति से दूर रहने की तीव्रतम इच्छा होती, लेकिन पति कामवासना से हतप्रभ हो कर उसे और अपने आपको एक बंद गुफ़ा के अंदर धंसता हुआ महसूस करने लगता। पत्नी उस उपेक्षा से बौखला उठती किंतु शब्दों से पति की भर्त्सना करने में असमर्थ थी। उसकी शंका और गहरी हो उठती, मानो शेरनी को अपने नवजात शिशु को शेर से बचा कर कहीं और छिपा कर रखना है, ताकि वह उसे कहीं खा न जाये। मातृत्व का भार आते ही उमा के मन से कामुक भावनाएं उड़ सी गयीं। उसे रतिक्रिया में पहले जैसा चाव न रहा, जिसकी अनुभूति ने सत्यवान के अंतर्मन में एक विकराल शंका उत्पन्न कर दी। उसे लगने लगा कि उमा उसे प्यार नहीं करती। वह उसे वैसे ही तिरस्कृत कर रही है, जैसे मेघना ने उसे किया था। नारी को अपना तन, मन, धन सब कुछ अर्पित करने के बाद भी वह अकेलापन अनुभव करने लगा। सोचने के बाद उसने यह निश्चय किया कि कोई बात नहीं, वह इस संसार में बेहद अकेला हो कर जियेगा, केवल उसकी सफलता नारी को उसके क़दमों में झुका देगी। अपने संकल्प में सत्यवान सदैव से दृढ़ रहने की अपार शक्ति रखता था। अतएव विदेश आ कर वह अपनी रिसर्च के काम में अत्यधिक रुचि लेने लगा। इसके फलस्वरूप उसने थोड़े ही समय में कई एक अपने शोधकार्य के लेख लिखे, जिनके उच्चकोटि की विदेशी पत्रिकाओं में छप जाने से उसे अच्छी ख्याति मिली। उमा पति की ख्याति को सुन कर अत्यधिक गर्वित महसूस करती। उसे विश्वास होने लगा कि उसकी भावी संतान ऐसे मेहनती पिता को पा कर एक दिन पिता से भी ऊपर ख्याति पायेगी, किंतु कहीं घने पीपल या नीम के वृक्ष के नीचे छोटा अन्य पौधा पनप पाया है?

विदेश प्रवास में सत्यवान के मस्तिष्क में एक नयी भारतीय अस्मिता ने जन्म लिया वह एकाएक अपने पहनावे, भाषा के प्रयोग, उससे ऊपर अपने विचारों में नितांत भारतीय हो जाने का प्रयत्न करने लगा। अकसर वह अपने भाषणों में गर्व से उस भारत के स्वर्णयुग की चर्चा कर बैठता जो वैदिक काल के नाम से जाना जाता है। वह अपने शोधकार्य में भी अपनी जड़ों को पहचानने के प्रयास में वैदिक काल में लिखी गयी एवं

वेदों में प्रतिपादित सामग्री जुटा कर, पाश्चात्य के विद्वानों को चकित कर देता। उसकी धारणा दृढ़ होती गयी कि वैदिक काल में हमारे ऋषि-मुनियों ने सतत तपस्या से बड़े ज्ञान भंडार उपलब्ध करके हमें प्रदान किये हैं। निःसंदेह उन्होंने मानवीय आवश्यकताओं को—जैसे भोजन, विहार, शैया आदि का—त्याग कर दिया था। वे नारी को इस मार्ग में बाधक मान कर चले थे, अतएव उसे भी इस तरह के अनुशासन का पालन करना होगा। अपने इस प्रयास में वह पूर्णतया सफल रहा। उसने उमा को सहर्ष भारत में डिलीवरी के लिए जाने की अनुमति दे दी। अपने रिसर्च के काम में वह पूरे मनोयोग से जुट गया। अपने दो साल के विदेशी कार्यकाल में उसकी शोध उपलब्धियां आशातीत फलदायी सिद्ध हुईं। वह उन्हें ले कर जब भारत वापस लौटा तब तक नन्हा कुशाल ठुमक ठुमक कर चलने लगा था। अपने पुत्र को गोद में उठा कर वह फूला नहीं समाया। एक क्षण के लिए उसे लगा कि उमा ने भी इस बीच उससे भी बड़ा रचनात्मक कार्य किया है। एकाएक पत्नी से ईर्ष्या हो उठी, जैसी ईर्ष्या उसे अपने सहयोगी से भी कदाचित् नहीं हुई थी। एकाएक इस विचार से आत्मग्लानि होने लगी। भारतीय परंपरा में 'एको अहं बहुस्यामि' सिद्धांत द्वारा प्रकृति-पुरुष के संबंध की चर्चा की गयी है, मैं पत्नी से क्यों इतना अधिक ईर्ष्यालु हो उठा हूं? इस विचार को तुरंत चित्त से निकाल देने के प्रयास में वह अपनी मां की ओर दौड़ पड़ा। उनके चरणों में अपना मस्तक झुका कर प्रेमभरे आंसुओं से उन्हें पखार लेने के बाद वह विनम्र स्वर में बोला, "मां, तुम्हारी याद ने इतना सताया कि मैं विदेश के धन, यश, पद सबको ठुकरा कर तुम्हारे पास आ गया हूं। मुझे तुम्हारे आंचल के सिवा कुछ नहीं चाहिए।"

यह सुन मां इतनी अधिक गद्‌गद हो गयी कि उसके कंठ से स्वर न निकल पाये, केवल उसने अपने चरणों से सत्यवान को उठा कर हृदय से लगा लिया। यह दृश्य पूरे परिवार के लिए मातृ-पुत्र मिलन की चर्चा का विषय बन गया किंतु उमा के लिए नयी शंका का भी, क्योंकि उसका पति सबसे अधिक मां को ही प्यार करता है, उसी को सबसे ऊंचा स्थान देता है। पत्नी, बेटा आदि का प्यार केवल मोह है, मां के सामने सब कुछ व्यर्थ है, सारा संसार भी उसके पति के समक्ष मानो एक मायाजाल है। पति-पत्नी इतने अंतराल के बाद मिले किंतु अपनी अपनी ईर्ष्या से उद्वेलित थे, संवेग में उठे झंझावात ने दोनों को अपनी ओर आकर्षित करने से, एक लय हो जाने से वंचित कर दिया, फिर भी उनका शारीरिक मिलन अवश्य हुआ, किंतु एक आदतवश, जो गृहस्थ जीवन में पति-पत्नी के रूप में पदार्पण की प्रथम रात्रि के प्रथानुसार एक आदत बन गयी थी।

विदेश से लौटने के उपरांत सत्यवान का व्यवहार सहज, सौम्य और शिष्ट हो गया था। लेकिन पत्नी से प्रेम करना उसके लिए सरल होते हुए भी, परस्पर प्रेम पा लेना सरल न था। यही सत्यवान और उमा के वैवाहिक जीवन का कांटा बन दोनों को अंदर ही अंदर कुरेदे दे रहा था। अपने मन की दशा पर दोनों ही दुखी थे। उमा चाह कर भी पूर्ण

रूप से पति को स्वीकार नहीं कर पा रही थी। उसे पति के व्यक्तित्व में खोखलापन दिखायी देने लगा था। वास्तव में, सत्यवान के चरित्र में अनेक विरोधाभास थे। उसकी कथनी और करनी में कोई सामंजस्य न था जिसका कारण उसकी मानसिक अपरिपक्वता और व्यक्तित्व था जो कुंठाग्रस्त रहता था। पत्नी यह सब समझ सकने में असमर्थ थी किंतु सहानुभूति करने में अक्षम्य नहीं थी। कदाचित् यही कारण रहा होगा कि उमा अपने धैर्य की परीक्षा में सदैव उत्तीर्ण रही और ये दोनों एक अटूट वैवाहिक सूत्र में बंधे रहे। वैसे भी भारतीय समाज में नारी को कटिबद्ध हो कर सप्तपदी की रक्षा का भार वहन करना पड़ता है, ऐसी शिक्षा तो उसे बचपन से ही पिता के घर में दी जाती है। पति आवारा बालक की तरह गृहस्थी से भाग भी जाये, तो पत्नी उसे लौटा लाने में अधिकतर सफल रहती है, चाहे अपने वैवाहिक जीवन की त्रासदी को भोगने में वह अंदर ही अंदर टूट क्यों न जाये।

स्वदेश में सत्यवान को अपने लैब मैं लौट आने के उपरांत अनेक सम्मान सहज मिलने लगे। वह वहां से केवल ज्ञान का भंडार ही ले कर नहीं लौटा था, साथ में कई नये उपकरण, अपनी शोध करने के लिए ग्रांट एवं नवोदित शोध छात्राओं के लिए विदेश जाने के लिए अनेक योजनाएं, जिन्हें कार्यान्वित करने के लिए स्कॉलरशिप आदि भी। उसकी लैब में बढ़ती ख्याति देख कर प्रधानाचार्य भी उससे संभल कर बोलने लगे थे, यद्यपि सत्यवान सबकी खुले दिल से मदद करने की कोशिश करता, सबको एक समान सम्मान देता, जैसे वह पद का गर्व (status conscious) न कर रहा हो, जिसके पीछे उसका अपना आत्मविश्वास था, विशेषकर अपने वैज्ञानिक विषय की आधुनिक ज्ञान की जानकारी के लिए जिसमें वह अद्वितीय था। देश में ही नहीं, विदेशी पत्रिकाओं में भी उसके शोधकार्य की चर्चा होने लगी थी। इतनी छोटी उम्र में ख्याति बिरले भारतीय वैज्ञानिक को मिल पाती है। बाहरी जगत में वह फूला न समाता। अपनी इस खुशी को लैब के सभी वर्ग के कर्मचारियों में, सफ़ाई कर्मचारी से ले कर विशिष्ट स्तर के कार्यकर्ता तक में, एक समान रूप से बांटता। इस विदेशी शिक्षा के प्रभाव को देख कर सब ही आश्चर्यचकित थे लेकिन सावधान भी थे। उन्हें शंका थी कि पीतल पर सोने का पानी कितने दिन तक रह पायेगा। वे पीठ पीछे मसखरी भी करते थे, "यह हाल रहा तो शीघ्र ही इन्हें कनाडा के लिए वापस का टिकट कटवाना पड़ेगा। आजकल तो लगता है, हवा में उड़ रहे हैं। धरती पर वापस आने पर पता लगेगा, यह भारत भूमि है जहां एक दूसरे को टंगड़ी लगाने में, पकड़ कर चित करने में सबके सब लगे रहते हैं। कोई भी यहां के वातावरण में अपना ठोस कार्य करके दिखाये तो ज़रा!"

लैब में उड़ती उड़ती इस तरह की ख़बर को सत्यवान के नवयुवक छात्र-छात्राएं सत्यवान के पास जब भी लाये, वह उन्हें हंस कर टाल देना उचित समझता और अपने छात्रों को यही शिक्षा देता कि "तुम सब इस तरह की चर्चाओं से अलग रहो। यहां पर एक दूसरे के काम से जलने के अलावा लोगों को अपना काम करने में कम दिलचस्पी

है। यही कारण है, हम विदेश में अकेले जा कर ज़्यादा ख्याति पाते हैं, ख़ूब कड़ी मेहनत करते हैं, वहां हम दूसरों के साथ प्रतिस्पर्धा में अपना अमूल्य समय नहीं गंवाते।"

यह नयी सीख नयी पीढ़ी के लिए उत्साहवर्धक थी। उनका जोश धरती-आकाश को एक कर देने के लिए लालायित रहता। एक अच्छे शिक्षक के मार्गदर्शन से उन्हें लगने लगता कि इस तरह वे भी 'सर' की तरह एक बड़ा वैज्ञानिक बन सकेंगे।

सत्यवान के अंतर्मन की ज्वालामुखी ने करवट बदली या उसके भाग्य ने पटकनी दी, नारी हृदय को जीतने की लालसा ने सत्यवान के सम्मुख इस कथानक की नायिका सावित्री को उसके समक्ष एक दिन प्रस्तुत कर दिया। यद्यपि इन दोनों का मिलन एकाएक हुआ था, लेकिन उनका आकर्षण मानो जन्म-जन्मांतर के बंधन का सा नियत था। सत्यवान-सावित्री की कथा में सावित्री स्वयं पति की खोज में अपना राज्य छोड़ कर वन की ओर निकल पड़ी थी। कहते हैं कि जंगल में उसकी भेंट अनायास ही सत्यवान से हुई और उसे आभासित हुआ कि यही उसका इच्छित जीवनसाथी है। दोनों जन्म-जन्मांतर से पति-पत्नी रहे हैं, अतएव सहज मिल जाने पर विवाह संबंध में बंध जाना उनकी नियति है। एक वर्ष बाद पति की मृत्यु की चेतावनी मिल जाने पर सावित्री अपने निश्चय पर अडिग रही। कौन सा अटूट विश्वास ले कर सावित्री ने भाग्यविधाता की इस चुनौती को स्वीकार किया, वही जाने, किंतु हमारी नायिका ने सत्यवान के प्रेम प्रदर्शन को ऐसी किसी तरह की मान्यताओं में नहीं गूंथा, न ही कभी विश्वास किया कि सत्यवान का आकर्षण एक दैविक चमत्कार है या जन्म-जन्मांतर से बंधे पति-पत्नी का बंधन, जो इस जन्म में एकाएक मिलन हो जाने पर सहज प्रेम में परिणत हो उठा है। सावित्री के चित्त पर तो सत्यवान के प्रेम प्रदर्शन से लगा, मानो एक गहरा घाव था जिसे उसने एक महत्त्वाकांक्षी पुरुष की वासना का भोजन मात्र समझा।

सावित्री की यह भूल नहीं थी पाठकगण, क्योंकि हमारी नायिका आधुनिक नारी, पाश्चात्य उच्चस्तरीय शिक्षा प्राप्त थी; उसमें संस्कार वैदिक काल की नारी की तरह केवल शुचिता और पवित्रता के थे, उसमें जो ब्रह्मचर्य का तेज था, वह अन्य किसी पुरुष को उसके समकक्ष खड़ा नहीं होने देता था। ऐसी तेजस्वी नारी को सत्यवान की कामवासना का शिकार कैसे होना पड़ा? यह एक लंबी और अत्यंत दर्दनाक कथा है। पाठकगण सावित्री के प्रति द्रवित हो कर यह अनुमान लगा बैठेंगे कि सत्यवान के चरित्र में ऐसी दुर्बलता बचपन से थी, शायद इसी कारणवश वह भटक गया। हो सकता है, उसका वैवाहिक जीवन इतना अधिक कुंठाग्रस्त हो गया कि भाग कर उसने सावित्री के प्रेमपाश में सुख पाने की कोशिश में...ख़ैर, हर व्यक्ति को अपनी धारणा बनाने का अधिकार है। हममें से अधिकांश मनोविज्ञान पढ़ने में अधिक सक्षम होते हैं, इस ज्ञान-विज्ञान की चर्चा को छोड़, हमें कथावस्तु का वर्णन और निरूपण उसी स्वाभाविक रूप में होने देना है, जैसा कि इस कथा के पात्र सत्यवान और सावित्री के जीवन में घटित हुआ।

माना कि विज्ञान जगत् की अपनी उपलब्धि ने सत्यवान को अभिमान से लबालब प्याले की तरह इतना भर दिया था कि वह उछल कर एक तरल पदार्थ की तरह बह कर सावित्री पर गिर पड़ा, किंतु सावित्री ने झुलस कर उसे अपनी नियति क्यों माना? क्यों अपने आपको एक शावक कपोत सा जलती हुई अग्निशिखा में झुलस कर गिरने दिया? यह घटनाचक्र जो गत कई वर्षों तक चला, एक क्षण में बहुत पहले समाप्त हो सकता था, यदि सावित्री ने इसे समाप्त कर देने की पहल की होती जिसकी चर्चा पाठकगण इस कथानक के प्रथम पृष्ठ को पढ़ कर ही जान गये हैं, शायद आप सत्यवान को एक ठुकराये हुए तिरस्कृत प्रेमी के रूप में पहचान लेने के कारण, बेचारी सावित्री को निर्मम, कठोर समझ बैठे हैं। सच तो यह है कि सावित्री सत्यवान से उम्र में काफ़ी छोटी थी और पद में भी। इसके अतिरिक्त यह सावित्री सत्यवान की खोज में नहीं निकली थी, उसे सत्यवान ने स्वयं आगे बढ़ कर अपनी विद्वत्ता से सम्मोहित कर दिया था। ज्ञान की खोज में तत्पर शिक्षक-छात्रा के बीच में अकसर प्रेम प्रसंग बन जाता है, विशेषकर जब दोनों का आकर्षण एक दूसरे के लिए पूरक सिद्ध हो जाये। सत्यवान विदेश से लौटने के पश्चात् अपना अधिक समय लैब में व्यतीत करने लगा था। अपने शोधकार्य में वह कभी कभी पूरी रात न सोता, उसे जल्दी जल्दी अपने प्रयोगों को पूरा करने की लगन सतत बनी रहती। भोर होने पर घर जा कर नित्यकर्म से निवृत्त होते ही किसी तरह की थकान महसूस न होती, वह अपने अधूरे काम को पूरा करने के लिए लैब की ओर दौड़ पड़ता। उन दिनों उमा भी अपने को छोटे कुशाल की देखभाल में पूर्ण रूप से समर्पित रखती, उसने पति के इस व्यवहार के प्रति अपना मनमुटाव प्रकट नहीं किया। घर में मां-बाप उन दिनों तीर्थस्थान पर चले गये थे, अतएव सत्यवान के ऊपर अंकुश लगाने वाला कोई नहीं रहा था। सावित्री वैज्ञानिक लैब में देखभाल दत्तचित्त हो कर करती। जो भी लाइब्रेरी का काम सत्यवान उसे सौंपता, वह उसे तुरंत समाप्त करना अपना परम कर्तव्य समझती। उसके इस उत्तरदायित्व (कमिटमेंट) को देख कर सत्यवान कोरा थैंक्स कह देने में कतराने लगा था। वह धीरे धीरे अपने लिखने-पढ़ने का काम सावित्री को सौंपने लगा। उसके निजी पत्रों को पढ़ने, उत्तर देने आदि का काम सावित्री पर आने लगा। अकसर दोपहर में सत्यवान घर न आ कर एक कप कॉफ़ी का ले कर सावित्री को अपने टिफ़िन खाते समय उसे कंपनी देने के लिए कक्ष में बैठने लगा। इस तरह सावित्री धीरे धीरे अपनी उम्र के साथियों से कटने लगीं, और अपना अधिक समय सत्यवान के कार्य-कलापों को निपटाने में व्यतीत करने लगी। स्वभाव से सावित्री बेहद शर्मीली एवं अंतर्मुखी (इंटरोवर्ट) होने के कारण सत्यवान के नित नये बढ़ते हुए आग्रहों को बे-झिझक हो कर अस्वीकार न कर पाती।

एक दिन शर्म से सावित्री का मुंह लाल हो उठा जब टिफ़िन से सत्यवान ने उसका खाना उठा कर चबाते हुए कहा, "अरे, इतना स्वादिष्ट खाना अकेले बैठ कर खाती आयी हो! मुझे आज तक तुमने इतने अच्छे स्वाद से वंचित रखा है, आज से मेरे लिए

तुम खाना लाया करोगी। मेरे मां-बाप तीर्थ करने गये हुए हैं, मेरी पत्नी को चूल्हे के काम से कोई लगाव नहीं है, वह तो अपने पुत्र कुशाल के साथ लगी रहती है। नौकर लोग ही घर-गृहस्थी चला रहे हैं। अच्छे खाने-पीने के लिए मैं तरस रहा हूं। आज तुम्हारे टिफिन का स्वाद, लगा कि मैं...''

''प्लीज सर, आप कुछ न कहें। मैंने कल्पना तक नहीं की थी कि आप खाने-पीने के बारे में भी रुचि लेते होंगे,'' कांपते हुए सावित्री ने कहा।

''क्यों, वैज्ञानिक को भूख नहीं लगती? खुद तो इतना स्वादिष्ट भोजन मेरे सामने रोज़ाना अकेले बैठ कर करती हो और मुझसे आशा रखती हो कि मैं संन्यासी की तरह कंदमूल खा कर रहूं या फिर ख़ाली कॉफ़ी पी कर गुज़ारा करूं,'' यह कह कर सत्यवान हंसने लगा। उस हंसी में बच्चों जैसा उल्लास था। सावित्री को अपने साथ खाना शेयर करने का नया आमंत्रण दे कर सत्यवान एक सहज घनिष्ठता में नितप्रतिदिन बढ़ता ही गया। भोजन तृप्ति वैसे भी किसी पुरुष हृदय को जीत लेने की अगाध शक्ति रखती है। उदर के शांत होते ही पुरुष हृदय में कामवासना का जाग्रत हो जाना मानो एक सहज क्रिया है। शुरू शुरू में खाना खिलवा कर सावित्री सत्यवान के कक्ष से तुरंत बाहर आ जाती, उसे दोपहर की धूप में पेड़ों की झुरमुट में बैठ कर आराम करना अति प्रिय था। धीरे धीरे उसे लगने लगा कि सत्यवान खाने से ज़्यादा उसकी कंपनी के लिए लालायित रहता है। किसी न किसी बहाने वह उसे अपने साथ काम करने के लिए बाध्य कर लिया करता। कभी प्रयोगशाला की गतिविधियों को नियोजित करने के लिए, तो कभी वैज्ञानिक शोधकार्य के पेपर की चर्चा में उसका मंतव्य जानने के लिए। अपनी उत्सुकता में वह यह भी भूल जाता कि सावित्री की बस ठीक पांच बजे छूट जाती है। संकोचवश वह भी न कह पाती कि उसे पांच बजे से पहले ही बस स्टॉप पर पहुंच जाना है, स्पेशल छूट जाने पर सावित्री को लोकल बस का इंतज़ार करना पड़ता है जो काफ़ी भरी हुई आती है। और उसके आने के टाइम का कुछ अता-पता नहीं होता, व्यर्थ में समय और इनर्जी (शक्ति) दोनों ही ख़त्म होने लगे। वास्तव में, सत्यवान अपने विषय के शोधकार्यों में इतना अधिक व्यस्त रहने लगा था कि उसे अपने खाने-पीने, घर आदि की कोई चिंता न रहती। कभी कभी वह पूरी रात अपनी प्रयोगशाला में बिता देता, तब भी उसका शोधकार्य पूरा न हो पाता। समय के अभाव से पीड़ित हो वह सावित्री की मदद पाने के चक्कर में यह भी भूल जाता कि उसकी नित बढ़ती मांगों के कारण सावित्री को कितनी असुविधा हो जाती है। अपनी महत्त्वाकांक्षाओं को पूर्ण करने में सत्यवान ने कदाचित् ही उसे किस मार्ग से प्राप्त किया जाये, इस कोण (angle) पर दृष्टिपात किया होगा। इसके लिए ध्येय प्राप्ति के लिए कोई भी मार्ग अपनाना बुद्धिमत्ता थी। सत्यवान के स्वभाव को समझना एक जटिल पहेली है, उसके लिए अप्राप्त वस्तु में जितना आकर्षण होता, उतना प्राप्त वस्तु में नहीं। अप्राप्ति की मनःस्थिति में वह सर्वस्व अर्पित करने के लिए उद्यत रहता, प्राप्त होने पर वही साधारण सी बन जाती, सारा आकर्षण

पता नहीं कहां विलुप्त हो जाता। सावित्री के प्रति उसके व्यवहार में अभी तक एक बाल-सुलभ चंचलता थी, और बुद्धि की तीव्रता के कारण उसका नटखटपन जो सावित्री को अवश्य उसकी ओर आकर्षित करता होगा, शायद यही कारण रहा होगा कि सावित्री का आत्मनियंत्रण शिथिल पड़ रहा था। वह अपने घर से चलते समय यही निर्णय ले कर निकलती कि सत्यवान के समीप लैब में वह केवल खाने के समय जायेगी, खाना खा कर अपनी प्रयोगशाला में आ कर काम करेगी, शादीशुदा व्यक्ति के साथ घंटों साथ रहना उसके लिए उचित नहीं है, किंतु सत्यवान के सामने उसकी एक भी न चलती। सत्यवान की हर नयी युक्ति अकाट्य होती। किंतु उन्हीं दिनों सावित्री ने एक भयंकर स्वप्न देखा, वह एक ऊंचे पहाड़ से नीचे गिर रही है, सामने भीषण गर्त है, उसकी आंखें खुली हुई हैं, चाहती है कि रुक जाये किंतु रुक नहीं पाती। उसका एक पैर फिसल गया और दूसरा पैर संभालने का भरसक प्रयत्न कर रही है, उसी हड़बड़ाहट में नींद खुल गयी और उसने अपने पूरे शरीर को पसीने से तर पाया। बिस्तर पर बैठ कर उसने प्रभु से तुरंत क्षमा मांगी कि प्रेम-प्यास से बेसुध हो कर वह सत्यवान के प्रति खिंचती गयी है, क्योंकि उसे अपने वर्तमान का जीवन अवरुद्ध सा मालूम पड़ने लगा था। सत्यवान कंपनी में सहजता और चंचलता दोनों सुखों के अनुभव करने के पश्चात् उसे लगने लगा था कि इस छाया में बैठ कर वह तनिक देर विश्राम कर ले, बिना विश्राम किये वह विज्ञान के अध्ययन में आगे न बढ़ सकेगी। किंतु विश्राम करने के बाद लगने लगा कि यह विश्राम उसकी प्रगति के लिए बाधक सिद्ध होगा। उसके चरित्र पर कलंक लगने के भय के अतिरिक्त उसे इस स्वप्न से शंका हो उठी कि उसके जीवन में कोई वीभत्स घटित होने वाला है जिससे अत्यधिक ग्लानि एवं मानहानि होगी, ऐसी उलझनें उपस्थिति हो उठेंगी कि वह नीचे गिर कर जीवनपर्यंत शांति न पायेगी। इस स्वप्न के बाद सावित्री प्रतिदिन सचेष्ट रहने लगी। निरंतर अपने आपको यही समझाने का प्रयत्न करती रहती कि सत्यवान का आकर्षण एक मृगतृष्णा है, उसे अपने चित्त को वहां से हटा कर रखना है। उसे अपने गृह की मर्यादा का ध्यान आया, मां के उपदेशों की याद सताने लगी किंतु पैर सतत विपरीत दिशा में जाने लगते, मानो वह सत्यवान की ओर जाने के लिए विवश थी! जैसे पहाड़ी नदी सागर की ओर जाने के लिए अपने उद्गम स्थान से निकल पड़ी हो!

दो

विचारों की दृढ़ता के कारण सावित्री में संयम से सत्यवान से दूर रहने पर उत्साह आ जाता तो कभी कभी भयंकर उदासीनता चित्त पर छा जाती। सत्यवान सावित्री के इस बदलाव से तटस्थ न रह सका। उसने सावित्री को समझाने की कोशिश की, "अपने आपसे क्यों लड़ रही हो? देखता हूं, तुम आजकल मुझसे दूर रहने की भरसक कोशिश में हो। जब फिसल चुकी हो तो संभलने की इतनी कोशिश क्यों कर रही हो? वर्तमान में रहने की कोशिश करो। उसी में संभव है हमारी वैज्ञानिक खोज···"

सावित्री ने बीच में टोक दिया, "मुझे तो पतन के भीषण बादल मंडराते दिखलायी दे रहे हैं।"

"क्या बात करती हो! तुम्हारे जीवन में आ जाने से मैं नवीन उत्साह और नया बल प्राप्त करके वर्षों के मार्ग को दिनों में पूरा कर लूंगा।" सत्यवान ने सावित्री की पीठ थपथपाने के लिए हाथ बढ़ाये किंतु सावित्री छिटक कर दूर हट गयी। सत्यवान ने धीरे से कहा, "अरे, रोज़ इतना स्वादिष्ट भोजन से तृप्त करोगी तो अधर की प्यास अवश्य बढ़ेगी। मुझे मालूम है, तुम्हें यह सब सुनना पसंद नहीं है किंतु यदि मनुष्य जहां खड़ा है वहीं रुक जाये तो वह जड़ बन कर रह जायेगा। प्यासे हिरन को मरीचिका के जल का भान न हो तो वह क्यों दौड़े? तुम मेरे लिए छलना हो, मैं प्यासे हिरन की तरह अपने अधरों की प्यास बुझाने तुम्हारी ओर भाग रहा हूं। जिसने प्यास से व्याकुल दौड़ते रहना ही अपना लक्ष्य बना लिया है, उसके लिए मेरा विवेक, मेरी बुद्धि सबको ताक़ पर रख देना चाहती है। मुझे नहीं पता, क्या नैतिक है, क्या अनैतिक··इस दुविधा में फंस कर हमारी सृजनात्मक शक्ति का ह्रास अवश्य हो जायेगा।"

"किंतु भावनाओं से बड़ा कर्तव्य होता है।" सावित्री ने उठते हुए तूफ़ान को रोक देने के लिए पहल की।

"मेरे लिए कर्तव्य केवल विज्ञान की खोज है, वही मेरा धर्म है। उससे हटना धर्म से गिर जाना है। सावित्री, कृपया तुम मुझे सहारा दे कर उस ध्येय को प्राप्त करा दो जिसको पाने के लिए मैं···"

"आप तो अधर की प्यास की बात कर रहे हैं जो विज्ञान की चर्चा से कोसों

दूर…"

"वह सब इसलिए हुआ है कि तुम मुझे अकेला छोड़ कर दूर भाग जाना चाह रही थीं। कई दिनों से देख रहा हूं कि तुम आंख मिला कर बात तक नहीं करतीं। जो समीप आने पर विराग और निराशा में परिणत हो जाये, वह मिथ्या है, भ्रम है, यथार्थ नहीं। मैंने तुम्हें स्वीकार कर लिया है प्रथम मिलन के दिन से ही। मेरी समझ में कर्तव्य से ऊंचा विश्वास है। तुम मेरी प्रेरणा बन कर आयी हो तो अब मेरे प्राणों में जोश और उत्साह भर दो। तुम्हें पाने के लिए मैं पागल हो उठा हूं। जितने नाच नचाओगी, नाचूंगा।"

"चुप रहिए, विवाहित हो कर ऐसी बातें करना आपको शोभा नहीं देता," कह कर सावित्री का हृदय आत्मग्लानि से भर उठा।

"मैं यह सब तुमसे कभी न कहता यदि तुम मुझे अकेला छोड़ कर…"

इस वाक्य को बीच में ही काट कर सावित्री ने कहा, "क्या आपका व्यवहार असंयमित हो भ्रष्टता के कगार पर नहीं पहुंच चुका है? मुझे आपसे यह आशा न थी। आप तो मुझसे बड़े हैं, सब तरह से आदर के पात्र हैं, जब आप पर भरोसा टूटने लगा, तो मैंने अपने आपको बचाने के लिए आपसे दूर जाने में अपना और आपका कल्याण समझा। आप अनुमान नहीं लगा सकते कि इस संयम की तलवार पर चलने में मुझे कितनी पीड़ा होती है।"

"प्रेम किया नहीं जाता, हो जाता है। बहती हुई हवा सभी के लिए होती है, जिसमें सभी सांस ले सकते हैं; यदि कोई उसे रोक कर बैठ जाये और दूसरे को सांस न लेने दे तो उसे क्या कहा जाये? यह भी कोई न्याय है? वृक्षों की छाया सभी के लिए होती है, जो चाहे जितनी देर बैठ कर आराम कर सकता है, एक थका पथिक विश्राम कर चला जाता है, दूसरा उसी जगह बैठ विश्राम कर लेता है, छाया को गठरी में बांध कर अपने साथ कोई पथिक नहीं ले जाता, न ही उसे ताले में बंद कर जाता है। वन में घास उगती है, फल लगते हैं, पशु चरते हैं, पक्षी दाना चुगते हैं, सब अपना अपना पेट भर कर चले जाते हैं, उड़ जाते हैं। कोई गट्ठर बांध कर अपने साथ नहीं ले जाता, अधिकार जमा कर कोई नहीं बैठता।"

"किंतु मनुष्य ने परिवार की सीमा निधारित की है, वहां प्रेम करने और देने का अधिकार पति-पत्नी के दायरे में बंधा हुआ है।"

"अरे, मनुष्य ही एक ऐसा प्राणी है जो सार्वजनिक उपयोग की वस्तुओं पर अधिकार जमाना चाहता है। अपनी इस वंचक वृत्ति के पोषण और गोपन के लिए उसने व्यापार, राजनीति, अर्थशास्त्र, सामाजिक शास्त्र आदि जैसे लंबे-चौड़े शास्त्र रच रखे हैं।"

"प्यास से मरते हुए आदमी से एक गिलास पानी के बदले हम उसकी सारी संपत्ति मांगें तो बेचारा लाचार हो कर सब संपत्ति देने के लिए बाध्य होगा। कुछ वैसा ही आपका मेरे प्रति झुकाव है। माना आप अपना सब कुछ मुझे देने के लिए तैयार हो जायेंगे, किंतु मैं गर्व के साथ सिर उठा कर कैसे कह सकूंगी कि मैंने आपकी सहायता

की और आपको सहारा दिया? दूसरे की निर्बलता या विवशता से लाभ उठाने की भावना माना आम मनुष्य की कमज़ोरी है, फिर भी इन सबसे उठ सकने के कारण हमारे समाज में कुछ को पाप और कुछ को पुण्य कहा जाता है। माना आपके दृष्टिकोण में सभी मनुष्य एक समान हैं, किंतु दूसरे का अधिकार बिना छीने या दूसरे की लाचारी से लाभ उठाये बिना क्या हम नहीं जी सकते?" सावित्री ऐसा कह कर वहां से तीर की तरह निकल पड़ी, मुड़ कर सत्यवान की प्रतिक्रिया देखना शायद उसे कमज़ोर बना देता।

इस गंभीर वार्तालाप को सुन कर पाठकगण यह अनुमान न लगा बैठें कि सावित्री सत्यवान से कितने दूर तक हटती चली गयी। सत्यवान के अंतर्मन में नारी हृदय की कठोरता से उपजी पीड़ा फिर से सताने लगी। वह बदला लेने की भावना से तिलमिलाने लगा। लाख कोशिश करता लेकिन सावित्री को पकड़ पाना असंभव हो गया था। सावित्री ने तत्काल छुट्‌टी ले कर घर जाने की अर्जी मंजूर करवा ली थी, वह उससे कोसों दूर चली गयी थी। सत्यवान ने निराश हो भारतीय परंपरा का अध्ययन और चिंतन शुरू कर दिया जिसके अनुसार जीवन के महान लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए गृहस्थाश्रम सेतु है। विवाह का ध्येय केवल भौतिक आनंद नहीं है। विवाह के बाद स्त्री और पुरुष ब्रह्मचारी व्रत ले कर रह सकते हैं। मन को विषय-वासनाओं से हटा कर आत्मचिंतन में लगाना चाहिए। किंतु सत्यवान के लिए यह कार्य संभव न था। उसे तो अपनी पत्नी और प्रेमिका दोनों से भर्त्सना मिली थी। चित्त में विचारों का बवंडर सा उठा करता था। नारी को अपने क़दमों में झुका कर रख देने का उन्माद उसे अत्यधिक निरंकुश बना देता जो उसके मन को वश में नहीं रखने देता। केवल अपना वैज्ञानिक ध्येय प्राप्ति का उत्साह उसके मन में दृढ़ता लाता, वही उसकी सफलता की कुंजी रहा है। वह अपनी अधीरता के क्षणों को, सावित्री को, पुनः अपनी ओर फिर से कैसे आकर्षित करेगा, उनके ताने-बाने बनाने में लगाता और अपना शेष समय प्रयोगशाला के कार्य-कलापों को तेज़ी से निपटाने में व्यतीत करता।

मीलों दूर घर आ कर सावित्री शांत न हो पायी। उसके हृदय में कामवासना जाग्रत हो उठी, जिसको सोच सोच कर वह अत्यंत विचलित हो उठती। अनायास मानो यज्ञवेदी में कोई शावक कपोत आ कर गिर गया हो! इस पाप से उसे कैसे छुटकारा मिलेगा? हे भगवान! कैसे वह इस जघन्य अपराध से मुक्त हो सकेगी? क्या कोई उपाय है जिससे छुटकारा हो सके? वह अधिक समय तक छुट्‌टी ले कर घर में पड़ी नहीं रह सकती थी। किसी तरह से तो उसे इतनी अच्छी छात्रवृत्ति मिली है, यदि काम पूरा न कर पायी तो मानहानि के अलावा, बेरोज़गारी का भी उसे सामना करना पड़ेगा। इतनी उच्च शिक्षा पा कर घर बैठ जाना संभव नहीं, फिर ऐसी मनःस्थिति में विवाह कर लेना भी समझदारी न होगा। सावित्री सत्यवान से दूर हट कर अपने जीवन का सारा उल्लास खो चुकी थी। उसे दर्पण में अपना मुख भी देखना अच्छा न लगता, न खाने-पीने, पढ़ने आदि में कोई चाव आता, घंटों शून्य में निहारते रहना ही उसकी दिनचर्या का अभिन्न अंग बन गया।

घर में उसके अलावा उसकी बूढ़ी विधवा मां थी, जिसके भरण-पोषण का भार सावित्री के कंधों पर था, इसीलिए नौकरी से त्यागपत्र दे कर घर बैठ जाने का विचार उसे घनघोर निराशा में डाल देता। सत्यवान को अपने चित्त से दूर रखने में ही उसे अपना भविष्य सुरक्षित लगता, किंतु सत्यवान को सामने देख कर, एक ही स्थान में साथ साथ कार्यरत रहते हुए कैसे संभव है? जो कुछ घटित हो गया है, उसका परिणाम भोगना ही पड़ेगा, छोड़ा हुआ बाण वापस नहीं आ सकता। सत्यवान बिना कुछ विचारे-सोचे इस कुमार्ग पर चलने के लिए प्रवृत्त है। सावित्री लाख चाह कर भी अपने आत्मसंयम से उस पर अपना प्रभाव न डाल सकेगी, क्योंकि उसकी सारी समझदारी सत्यवान के समकक्ष उड़ जाती है। कदाचित् वह साधना द्वारा इस संकट से उभर सकेगी। इस मानसिक त्रासदी में साधना कैसे संभव हो पायेगी? सत्यवान के प्रेम प्रलाप सुन लेने के बाद आत्मनिग्रह नहीं हो सकता। उसकी तो एक ही रट रहती है : 'हर प्राणी को अपना मित्र बनाओ, तुम सुख चाहते हो तो वर्तमान में रहना सीखो।' चार्वाक की शिक्षा का वह अनुगामी है, मनुष्य का लक्ष्य यह होना चाहिए कि वह वर्तमान जीवन में अधिक से अधिक जितना सुख प्राप्त कर सकता है, प्राप्त करे और अपने दुःखों को जितना कम कर सकता है, उतना कम करे। सफल जीवन वही है जिसमें अधिक से अधिक सुखभोग होता है। अच्छा काम वही है जिससे दुख की अपेक्षा अधिक सुख मिलता है। बुरा काम वही है जिससे सुख की अपेक्षा अधिक दुख मिलता है। सुख की खोज में 'ऋणं कृत्वा घृतं पिबेत्' (उधार ले कर घी पीयो) की उसकी फ़िलासफ़ी है, ऐसे पुरुष को कैसे समझाएगी कि भौतिक संपत्ति से भौतिक वस्तुएं ही ख़रीदी जा सकती हैं, सुख नहीं? सावित्री के जीवन में 'घी' जैसी भौतिक वस्तु का कोई स्थान नहीं। सत्यवान की उच्च शिक्षा, पद, यश, पैसा आदि उसे नहीं चाहिए, न ही अपनी सफलता के लिए उसे सत्यवान जैसे बड़े वैज्ञानिक की सीढ़ी चाहिए। सत्यवान अपना पूरा व्यक्तित्व लगा कर भी उसके हृदय को नहीं बदल सकता, उसे तो आध्यात्मिक संपत्ति का स्वामी अपना जीवनसाथी चाहिए। इन्हीं विचारों में खोयी सावित्री एक दिन अनायास अपनी छत पर आ कर शाम की ढलती धूप को देखने लगी। बादलों की लुकछुप देख कर उसका हृदय पिघल पड़ा। वह अकेले में बैठ कर फूट फूट कर रोने लगी। मां के लंबे वैधव्य काल में पली-पोसी होने के कारण सावित्री ने कभी न जाना कि वह भी सुंदर है। अपने को छुपा कर इतना अधिक रखा कि कहीं किसी की दृष्टि न पड़ जाये। शुरू से ही वह ऐसी वेशभूषा पहनती आयी है जिससे किसी की आंख उस पर न पड़े। किशोरावस्था में भी उसने शृंगार नहीं किया, मां से बिंदी, चूड़ी, मेहंदी आदि की मांग न की, केवल पढ़ने-पढ़ाने में अपना चित्त लगाया और अपने ख़ाली समय में मां के गृहकार्यों में हाथ बंटाया था। उनकी पूजा-पाठ में रुचि ली। उसे याद आया कि उसकी मां ने उसमें यौवन के पदार्पण पर भी कोई प्रतिक्रिया नहीं की। अवश्य ही वह शरीर से कोमल थी पर बुद्धि में तीव्र, अतएव बहुत सी बातों का ज्ञान उसे अनायास ही हो जाता था। उसके जीवन

में एकाएक विवाहित सत्यवान का उसके प्रति आकर्षित हो जाना क्या किसी शाप के कारण हुआ है? इस विचार से वह चकित रह गयी। वह तो अपने आपको बड़ा सदाचारी, नैतिक व्यक्ति समझती आयी है, उसके साथी, सहेली आदि सब यह कहते हिचकते नहीं हैं कि सावित्री में कोई भी दुर्गुण नहीं है, उसके सात्त्विक व्यक्तित्व के सामने तो दुराचारी भी खड़ा न रह पायेगा, फिर क्यों वह जीवनपर्यंत शापित हो रही है? अपने भविष्य को आत्मचिंतन द्वारा पढ़ लेने पर सावित्री खेदपूर्ण आश्चर्य में पड़ गयी। क्या कोई दुखद स्मृति का प्रभाव सावित्री के चरित्र निर्माण की आधारशिला अवचेतन रूप से बाल्यकाल से रहा था? कहना मुश्किल है, क्योंकि उसका मनोविश्लेषण सावित्री को स्वयं करना होगा। किंतु पाठकगण, उसके व्यवहार से इतना तो स्पष्ट हो गया है कि सावित्री एक आत्मसंयमी, चिंतनशील, साधना का पथअनुगामिनी बाल्यकाल से बन गयी थी। ऐसी युवती सत्यवान के जीवन में आ कर अपनी छाप न छोड़ सके, यह कैसे संभव होता? सत्यवान के मन को विषय-वासनाओं से हटा कर आत्मचिंतन में लगाना सावित्री जैसी चरित्रवान युवती के लिए भी सरल कार्य न था, वह तो असिधार पर चलना है। किंतु दूसरा कोई विकल्प सावित्री के वर्तमान जीवन में न था। उसे सत्यवान के संमुख जा कर अपने विवेकपूर्ण व्यवहार से उसका हृदय परिवर्तन करने का अपना कठिन संकल्प एक तरह से कठोर साधना करने जैसा चुनौती लगा, अतएव कृतसंकल्प सावित्री ने अपनी छुट्टी रद्द कर देने का तुरंत निश्चय ले लिया। उसकी मां न समझते हुए भी बहुत कुछ समझ रही थीं, उन्होंने सावित्री को इतना अधिक व्याकुल कभी नहीं देखा था। एक मात्र संतान की उदासीनता विधवा मां की समस्त आशा पर तुषारापात कर रही थी। बेटी का फिर से नौकरी पर जाने का निश्चय सुन कर वह तुरंत राजी हो गयीं। अवश्य ही अपने काम में संलग्न हो कर वह शीघ्र स्वस्थ अनुभव करने लगेगी, उनकी यही प्रभु से विनीत प्रार्थना थी किंतु शब्दों में सावित्री से कुछ कह सकने में निस्सहाय थीं, क्योंकि वह तो सावित्री से धीरज की बातें सुनने की अभ्यस्त रही हैं, उन्हें बेटी को कभी कुछ कहने-सुनने की ज़रूरत भी नहीं पड़ी थी।

सावित्री ने जैसा सोचा, वैसा ही किया। लैब में काम संभाल लेने में उसे परेशानी नहीं उठानी पड़ी। उच्चाधिकारी छुट्टी ख़त्म होने से पहले ज्वाइनिंग (कार्यभार पर वापसी) से ख़ुश हुए, किसी साथी ने पूछने की चेष्टा भी नहीं की कि वह क्यों एकाएक छुट्टी पर चली गयी और जल्दी लौट आयी है। सावित्री का कम बोलना इस समय काम आया। सबने ऐसा ही व्यवहार किया मानो कुछ हुआ ही न हो किंतु सावित्री अंदर ही अंदर घुली जा रही थी। भाग्य से सत्यवान किसी सरकारी कार्य से बाहर गया हुआ था, अतएव उससे लौटने के बाद अभी तक उसकी मुठभेड़ नहीं हुई थी। बकरे की मां कब तक ख़ैर मनाती, सावित्री को इस प्रतीक्षा में कोई भी युक्ति सटीक नज़र नहीं लगती। काश, वह पहले जैसी सीधी-सादी छात्रा बन जाती! उसकी सादी सूती साड़ी, सूना उन्नत ललाट (बिंदी न लगी होने के कारण) जिस पर आच्छित घने बालों के बीच सूनी मांग

के नीचे चौड़े फ्रेम वाले रंग के चश्मे में छिपी उसकी सुंदर आंखों पर किसी की दृष्टि नहीं टिक पायी थी। वह सत्यवान जैसे सुंदर, सुडौल, प्रतिष्ठित वैज्ञानिक के समकक्ष, जिसका अपना बड़ा स्टेटस (पद) है, कुछ कहने का साहस कैसे बटोर पा सकेगी? यह विचार उसे कचोट रहा था। जब से सत्यवान की सहयोगी होने का उसे गौरव प्राप्त हुआ था, उसने अपने में एक नया आत्मविश्वास पाया था। लैब के प्रत्येक व्यक्ति की नज़रों में वह सम्मानित होने लगी थी। बोलचाल तो पहले जैसी 'हलो हलो' तक ही सीमित थी किंतु उनकी नज़रों में उसे होनहार उच्च मेधावी वैज्ञानिक बनने का सम्मान मिलने लगा था। सत्यवान से कट कर यह सब क्षण मात्र में टूट पड़ेगा। वह तो मणिका की कस कर गूंथी हुई माला की एकमात्र मणि है, टूट जाने पर उसका कोई व्यक्तित्व नहीं, कोई आधार नहीं। सावित्री ने अपने आपको इतना अकेला, टूटा हुआ अनुभव कभी नहीं किया था। सत्यवान की अनुपस्थिति में वह अपने आपको संभाल न पा रही थी, तब उसे कन्विंस (विश्वास) कराना कैसे संभव होगा? क्या उसके समकक्ष जा कर अपने अधिकार की लड़ाई लड़ पायेगी? पुरुष के बिना नारी अधूरी है किंतु इतनी शिक्षित नारी के लिए ऐसे पुरुष का प्रेम, जो उसका शोषण करने के लिए लालायित हो, ऐसे कामुक पुरुष का प्रेम, जो उसे पतन की ओर ले जाने के लिए तत्पर है, मात्र एक भ्रमजाल है, किंतु उस जाल में फंस कर सावित्री किसी हिरनी जैसी निरीह-असहाय हो, केवल तड़पने लगती। उसकी पीड़ा का भान अन्य किसी को न हो पाता। होता भी कैसे? इस पीड़ा को वह किससे कहे? कौन उसे न्याय दिलवा सकता है? कहने के बाद चारों ओर से उसके ही चरित्र की धज्जियां उड़ने का भय था। इस पसोपेश में वह अकसर गुमसुम हो कर अपने होस्टल की छत पर टहलने लगती, ढलते आंसू बहा कर चित्त शांत करने के अतिरिक्त उसे अन्य कोई उपाय न सूझता। सुबह जल्दी उठ कर वह नित्य कर्म से निवृत्त हो कर लैब की ओर भागती। आशा यही करती कि वहां सत्यवान से उसकी भेंट न हो, किंतु न जाने किस आकर्षणवश वह सत्यवान के पदचाप सुनने के लिए व्याकुल हो उठती। लगता कि उसकी बांहों में अपना सिर रख कर वह ख़ूब रोये, इतना रोये कि उस पत्थर हृदय प्रेमी पुरुष का सारा व्यक्तित्व हिल जाये, इस तरह की सुकोमल कन्या के साथ अनाचार करने की कल्पना मात्र से वह सिहर उठे।

मनुष्य के विचारों में दूरगामी पहुंच होती है। वह विद्युत की धारा से भी तीव्र गति से दौड़ने लगती है। सावित्री की विरहव्यथा महाकाव्य लिखने योग्य न भी हो किंतु सावित्री ने अपनी पीड़ा को आत्मनिहित हो कर जिस गरिमा से तिल तिल जल कर भोगा है, वह शायद अन्य किसी विरहिणी ने आज तक न भोगा होगा। एक ओर उसे कर्मक्षेत्र में व्यावहारिक हो कर अपने प्रेमी को तिरस्कृत करना था, दूसरी ओर हृदय से उसे अपना देवता मान कर पूजना था क्योंकि सावित्री जैसी भारतीय संस्कृति के विश्वासों में पली कन्या के लिए जीवनसाथी का आगमन दैवी उपलब्धि था। पूजा के फूल एक बार ही चढ़ाये जाते हैं। यह तो जन्म-जन्मांतर के बंधन हैं, जो न बनाये जाते हैं, न ही ठुकराये

जाते हैं। यह नया विचार आते ही सावित्री का मन पुलकित हो उठता, जैसे सूखी लता पर नन्ही नन्ही बूंदें टपकने लगी हों! वह सत्यवान की प्रतीक्षा में दिवास्वप्न देखने लगती। अतीत की मधुर स्मृति आंखों के सामने कौंध जाती–कभी उसके साथ खाना शेयर करती हुई, तो कभी लैब में शोधकार्य में अपना योगदान देते हुए, तो कभी उस प्रथम प्रेम निवेदन की जब सत्यवान ने एक झटके में उसकी समस्त सुप्त कामभावनाओं को झकझोर कर जगा दिया था, मानो उसके व्यक्तित्व को आंधी की तरह जड़ों से विहीन कर उठा कर पटक दिया हो! उसका अपना कुछ शेष न रहा, यह विचार आते ही वह भय-व्याकुल हो उठती। लगता, उसके आसपास के लोग उसे घूर रहे हैं, उसे चरित्रहीन कह कर अपमानित कर रहे हैं। अपने अपमान की इस घटाटोप वर्षा में वह कहां जा कर सिर छिपाये, कौन उसे शरण देगा, कौन समझ पायेगा कि उसका कोई दोष न था? उसने स्वप्न में भी नहीं चाहा था कि सत्यवान उसकी ओर आकर्षित हो जाये। काश, धरती फट जाती और वह सीता जी की तरह उसमें समा जाती! इस पटाक्षेप के बाद इस नाटक की इति होनी चाहिए।

माना जो सावित्री ने चाहा, वह चाहना सरल रहा होगा, स्वभाविक भी, किंतु आत्महत्या करना उतना आसान नहीं है उसके लिए तो बड़े दृढ़निश्चय की, हिम्मत की और अपने आप पर क्रोध की ज़रूरत पड़ती है। फिर सावित्री के सामने उसकी अबला मां का सदैव फैला हुआ आंचल था, जिसमें आंसू भरी हुई अतीत की यातनाओं की स्मृतियां थीं। उस विरहिणी ने अपना पूरा जीवन अपनी एकमात्र संतान को सुशिक्षित करने की तपस्या में व्यतीत किया था। प्रभु से वरदान में केवल कन्यारत्न के उज्ज्वल भविष्य की विनीत प्रार्थना की थी, अपने लिए कभी कुछ नहीं मांगा। प्रभु उस कन्या के प्राण कैसे हर लेते? सावित्री ने लाख जतन किये कि वह आत्महत्या कर ले किंतु उस ओर बढ़े क़दम को कोई न कोई आ कर रोक देता, जिसकी विस्तार से गाथा पाठकों के समक्ष रखना व्यर्थ है। रोज़ ही अख़बारों में आत्महत्या की विस्तारपूर्वक चर्चा रहती है। मृतात्मा के प्रति हमारे समाज में श्रद्धांजलि देने की प्रथा बहुत पुरानी है। जीवित रह कर जो तिल तिल जलता है, अपनी कोमल भावनाओं को लोककल्याण-हित के लिए भस्म कर देता है, उसको सम्मानित करने की, सराहने की यदि समाज में कोई परंपरा होती तो कदाचित् इतने लोग आत्महत्या के लिए तत्पर न होते। आत्महत्या वर्तमान जीवन संघर्ष की इति करने में अवश्य सिद्ध होती होगी किंतु आत्मा के भटकाव की वीथियों को जटिलतम कर देती है। सावित्री की आत्मा इस जन्म और न जाने कितने अतीत के जन्मों से निरंतर खोज में संलग्न है। मोक्ष के ध्येय-प्राप्ति की ओर अग्रसर आत्मा का इस जन्म के भटकाव का ऐसा दारुण अंत दूरगामी प्रभाव डालता है, अस्तु।

तीन

सत्यवान के मन में लाख नियंत्रण के बाद भी खीज बढ़ती जा रही थी। वह जानता था कि लैब पहुंचने पर उसे सावित्री लैब में काम करती हुई नहीं मिलेगी। सरकारी कामकाज में उसे आशातीत ख्याति मिली थी किंतु उस सबसे वह अछूता अनुभव करने लगा क्योंकि प्रेमिका से वह तिरस्कृत हो गया था। सावित्री के साथ अंतिम मिलन की याद आते ही उसके रक्त का वेग बढ़ जाता। स्वयं को शांत रखने के प्रयत्न में अकसर वह अपना ध्यान वैज्ञानिक पत्रिका के नये अंक को पढ़ने में लगाता। विज्ञान की उन्नति को पढ़ कर वह स्वस्थचित्त अनुभव करता, लेकिन एकाएक उसे लगने लगता कि वह चारों ओर कुरूप मशीनों से घिरा हुआ है, उसका सौंदर्यबोध बिलकुल नष्ट हो गया है, जीवन का उल्लास उड़ गया है। क्रोध में छटपटा कर वह यह भी भूल गया था कि उसके किस व्यवहार से सावित्री उससे मीलों दूर चली गयी है। उसे अपनी मान-प्रतिष्ठा को पुनःस्थापित करने के लिए अपना आधिपत्य एक राजनीतिक नेता की तरह स्थापित करना होगा। लैब जा कर वह चतुर्थ वर्ग के अधिकारी से ले कर उच्च स्तर के स्नातकों को डांटेगा, बिना डांटे कोई अपना काम ठीक से नहीं करता। उसकी ढिलाई के कारण ही हर व्यक्ति अपने को बड़ा आदमी समझ बैठा है, यहां अनुशासनहीनता की पराकाष्ठा है। विदेश में हर व्यक्ति अपना काम बिना किसी के सुपरवाइज़ (निरीक्षण) किये, काफ़ी ज़िम्मेदारी के साथ करता है किंतु भारत में डंडे के ज़ोर से काम होता है, कोई समय पर नहीं पहुंच पाता, कोई न कोई बहाना बना कर काम से जी चुराना और अपना पूरा भार अपने उच्च अधिकारी पर डाल देना, इसी में अक़्लमंदी समझी जाती है। इन्हीं विचारों में खोया सत्यवान सुन नहीं पाया कि उसकी पत्नी मेज़ पर बैठी बड़ी देर से उसे नाश्ते के लिए बुला रही है। नित्यकर्म से जल्दी जल्दी निवृत्त हो कर जब पहुंचा तब तक नाश्ता ठंडा हो गया था। पत्नी छोटे बच्चे को गोद में ले कर दूध पिला रही थी, सामने दो ख़ाली प्लेट और चम्मच सजे रखे थे। नाश्ते में अंडा, टोस्ट, फल का जूस आदि उपलब्ध था। शांत मन से नाश्ता करना सत्यवान के लिए फिर भी संभव न हो सका, न जाने किस बात का ग़ुस्सा था जो बरबस निकल पड़ा, "नाश्ता तो गेस्ट हाउस में भी मिल जाता है। इतने दिनों बाद घर आने पर ऐसा ही नाश्ता मिले तो कोई घर क्यों लौटे?"

"आप देर से आये हैं, किचन में सब तैयार रखा है, आपकी पसंद की सब्ज़ी की कटलेट तवे पर है, फिर जो पसंद हो, बता दें, वह माई बना देगी," पत्नी ने संयत स्वर में कहा।

"माई सब कुछ बना देगी, आप क्यों नहीं? मुझे कुछ नहीं खाना। अगर एक प्याला गर्म कॉफ़ी मिल जाये तो बड़ी मेहरबानी होगी," कह कर सत्यवान मेज़ पर रखा अख़बार पढ़ने लगा।

पत्नी ने भी उसके सूखे व्यवहार को अनदेखा कर दिया। वह चुपचाप बच्चे को दूध पिला कर पलंग पर सुलाने चली गयी।

खीज कर सत्यवान कॉफ़ी पी कर लैब की ओर चल दिया।

लैब में सभी कार्यरत मिले। केवल मुस्करा कर अभिवादन द्वारा ही लोगों ने उसका स्वागत किया, कोई काम छोड़ कर उसके कक्ष में नहीं आया। इस उदासीनता से सत्यवान अधिक बेचैन हो उठा। मेज़ पर पत्रों का ढेर पड़ा था। उसकी अनुपस्थिति में अनेक पत्र आ कर जमा हो गये थे। एकाध को बेमन से खोलने के पश्चात् उसे लगा कि वह सावित्री की लैब में जा कर देखे कि उसने ज्वाइन किया या नहीं? इस विचार के आते ही वह तीर की तरह अपने कक्ष के द्वार को खुला छोड़ कर निकल पड़ा। सहकर्मचारियों को आश्चर्य हुआ कि सर इतनी तेज़ी के साथ कहां जा रहे हैं! वह तो अपने कक्ष का द्वार कभी भी खुला नहीं छोड़ते, आज क्या हो गया है?

लैब में सावित्री को कार्यरत देख कर सत्यवान की जान में जान आयी। वह अपने को संयत कर सावित्री की ओर मुड़ा। उसके पदचाप में अत्यधिक सावधानी थी, मानो कोई शेर हिरनी का पीछा कर रहा हो। माइक्रोस्कोप (यंत्र) में कार्यरत होने के कारण सावित्री जान भी नहीं पायी कि सत्यवान उसके पीछे खड़ा है। बहुत पास आ कर वह धीमे से बोला, "माफ़ करें, मुझे आपसे ज़रूरी काम है, कृपया मेरे कक्ष में आ जाइए।"

सावित्री ने कल्पना भी न की थी कि सत्यवान इतना सब होने के बाद इस तरह उसके लैब में आ कर उसे अपने कक्ष में आने के लिए निमंत्रित करने की धृष्टता करेगा। वह तो उससे कोसों दूर भाग गयी थी, किंतु उसके लैब में कोई नया नाटक न खड़ा हो जाये, अतएव उसने बड़े स्वाभाविक ढंग से उत्तर देना उचित समझा, "चलिए, मैं थोड़ी देर में आती हूं। कुछ रिपोर्ट शीघ्र जानी हैं, इन्हें देख लूं और डिस्पैच कर दूं।"

"मैं बाहर धूप में खड़ा तुम्हारा इंतज़ार कर रहा हूं, आज ही लौटा हूं। धूप सेंकने का कब मौक़ा मिल पाता है, किंतु तुम्हारे इंतज़ार में काफ़ी इंतज़ार कर चुका हूं।"

"ठीक, आप चलिए," कह कर सावित्री कार्यरत रही।

सत्यवान को पता था कि सावित्री अपने हर कार्य को पूरी ज़िम्मेदारी के साथ निभाती है, अतएव वह चाह कर भी उसे वहां से अभी हटा नहीं सकता। मन ही मन उसे सावित्री के हठीले स्वभाव से खीज होने लगी, क्यों हर नारी अपनी ज़िद पर अड़ी रहती है? उसके अनुसार नारी को पुरुष के सामने सदैव झुक कर चलना चाहिए। 'शूद्र,

पशु और नारी, सब ही ताड़न के अधिकारी'—तुलसीदास ने ठीक ही कहा है। सत्यवान की विचारतंद्रा में नारी के प्रति प्रतिशोध झलक रहा था। वह अपने अंदर उठे तूफ़ान को सावित्री के ऊपर टूट कर बरसा देना नहीं चाहता था किंतु संयम के बांध को बांधने में असमर्थ था। सावित्री जैसी आत्मसंयमी, अनुशासित महिला ही उसको अनुशासन में ला सकती थी। सावित्री को दूर से आती देख, सत्यवान चपल गति से आगे बढ़ अत्यधिक उतावला हो कर बोला, "कितने दिनों से तुम्हारी छाया भी आती-जाती नहीं दिखी। मैं तो पुलिस में शिकायत करने वाला था कि तुम एकाएक लापता हो गयी हो।"

"आपको तो कोई ज़रूरी काम था, चलिए कक्ष में चल कर उसे समाप्त करें, मुझे कई काम जल्दी निपटाने हैं, मैं जल्दी में हूं।"

"वह तो मुझे पता है, मैं ही निकम्मा हूं जो आपकी लैब में भाग कर ख़ाली हाथ लौट आया हूं, मुझे कोई काम-वाम नहीं है, बस, इतना पूछना है कि तुम्हारा क्या···" सत्यवान का सारा जोश ठंडा पड़ गया था। उसने कल्पना भी नहीं की थी कि सावित्री जैसी साधारण लड़की उसकी मित्रता की इतनी बड़ी अवहेलना कर देगी, अतएव वाक्य को पूरा करने में असमर्थ हो गया।

"यह सब यहां खड़े रह कर पूछने की क्या ज़रूरत है? इस समय आपके काम का समय है, मेरे भी, इधर-उधर लोग बाहर जा रहे हैं, आपको यह सब शोभा नहीं देता।"

"यह सब तुम्हारे कारण हो रहा है। मुझे कितना पागल बना दिया है, इससे अधिक अपमान नहीं कर सकतीं। किसी ने मेरी इतनी अवहेलना नहीं की है जितनी तुमने, अपने आपको क्या समझती हो?"

"मैं अभी चुप रहना चाहूंगी," एकांत में मिलने का वायदा करके सावित्री ने सत्यवान को किसी तरह बिदा किया। ऊपर से सावित्री जितनी शांतचित्त लग रही थी, उतनी ही अधिक अंदर से टूटी हुई। उसने अनुमान भी नहीं किया था कि सत्यवान उसका पीछा करता हुआ उसके लैब में आ धमकेगा और उसके कार्य में विघ्न डालेगा। उसे अपने उच्च पद की गरिमा का तो ख़याल रखना चाहिए। सावित्री को लगने लगा, यहां रह कर वह सत्यवान से दूर रहने में असमर्थ है, एकांत में मिलने पर तो वह उस पर अपना स्वामित्व जमाने की अवश्य पूरी कोशिश करेगा, उस समय में उसे क्या करना चाहिए? उसकी समझ में कुछ भी नहीं आ रहा था, मानो उसकी तीव्र बुद्धि पर ताला पड़ गया हो। एक ओर खाई तो दूसरी ओर पहाड़! जीवन पथ कितना जटिल, दुर्गम बन गया है!

सत्यवान के लिए एकांत मिलन की प्रतीक्षा के क्षण असहनीय थे, किंतु सावित्री से इस छोटी भेंट के बाद वह मोहित, हर्षित, आनंदित एक दिवास्वप्न देखने लगा। उसे अब कोई औपचारिकता और भूमिका बनाने की आवश्यकता नहीं थी। वह साफ़ साफ़ कहने के लिए तैयार था कि वह सावित्री से प्यार करता है और सदैव करता रहेगा, सावित्री भी उसे प्यार करने से रोक नहीं सकती। वह उसकी कोई भी शर्त मान सकता है। उसके

लिए वह अपनी पत्नी से संबंध विच्छेद भी कर सकता है। पत्नी में केवल सौंदर्य होना ही पर्याप्त नहीं है, सहधर्मिणी होने के लिए उसे कामकाज में हाथ बंटाना भी आना चाहिए। उसकी जीवनसंगिनी केवल सावित्री ही हो सकती है क्योंकि वह विदुषी है– उसके व्यक्तित्व की पूरक। दोनों मिल कर विज्ञान की सेवा में रत रह सकते हैं। सत्यवान ने इस दिवास्वप्न की चर्चा किसी अन्य से नहीं की थी किंतु काम-विमोहित प्रेमी की आंखें भिन्न होती हैं, जिसको अन्य से वह छिपा नहीं सकता है। सावित्री की टोह में वह भूखे शेर सा छोटे से छोटे परीक्षण को लैब में आ कर देखता-परखता और इसी चिंता में लगा रहता कि कब उसकी प्रेमिका की आती-जाती झलक उसे देखने को मिल जाये और उस सुअवसर का लाभ उठा कर उसे अपने मधुर दिवास्वप्न से अवगत करा दे। अनेकता और भिन्नता के प्रति आकर्षण सत्यवान की सदैव से कमज़ोरी रही है किंतु अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिए एकाग्रता एवं असीम धैर्य के साथ कर्मठता के प्रति कटिबद्धता उसकी विशेषता थी। ऐसे पुरुष अपने मन, विचार-व्यवहार को अपने स्वार्थ की दिशा में मोड़ सकने में सिद्धहस्त होते हैं। सावित्री के एकांत में आने की संभावना सत्यवान की व्यावहारिक बुद्धि के अनुसार शत-प्रतिशत न थी। उसे पता था कि सावित्री के मस्तिष्क में तूफ़ान उठा हुआ है, ऐसे में वह उससे एकांत में मिलने से डरेगी। ऐसी स्थिति में सावित्री को भ्रम में रखने में ही अच्छाई है। वह स्वयं पीछे हट जाये और सावित्री को अपनी उदासीनता से चकित करके रख दे। जब वह कई बार उसके लैब में आ कर भेंट न होने से व्याकुल हो उठे, तब ही वह आगे बढ़े।

गत कई दिनों तक सावित्री लंच के समय मिलने आती और लौट जाती। उसको इस तरह तड़पा कर सत्यवान के मन पर गर्व का सागर सा लहराता रहता। एक दिन बरामदे में दोनों की अनायास भेंट हो गयी। सत्यवान ने पहल करते हुए कहा, "सुनते हैं, आप कई बार लंच के समय मुझसे मिलने आयीं लेकिन हमारी भेंट न हो सकी, उसके लिए मेरे मन में पश्चात्ताप है। शुक्र है कि आज तुम कहीं दिखलायी दे गयीं, किंतु मेरे पास आज भी समय नही है।" सावित्री कुछ कह सके, इसके पहले वह चला गया।

सावित्री इस नाटकीय व्यवहार से आश्चर्य में डूब गयी। वासना के भीषण तूफ़ान में जो पुरुष पागलों की तरह भाग कर उसके लैब में अंधा हुआ आया था, वही आज निरासक्त प्रशांत सागर सा अविचलित है! एकाएक यह परिवर्तन देख सावित्री का मन खिन्न हो गया, किंतु उसे पता था कि सत्यवान से प्रेम और घृणा करना दोनों ही उसके लिए अभिशाप हैं। सत्यवान के व्यवहार में परिवर्तन किन कारणों से आया है, यह समझना भोली सावित्री के लिए संभव न रहा हो, जिसका कारण उसकी अपरिपक्व आयु, पहली बार किसी पुरुष के प्रेमालाप से उठी चित्त में झुंझलाहट, उससे अधिक अंतर्मन में घनीभूत पीड़ा एवं ग्लानि, जैसे उसने किसी फन उठाये सर्प के निचले भाग को छू लिया हो (भय, चिड़चिड़ाहटपन, वितृष्णा न जाने कितने प्रकार की संवेदनाओं से उसका चित्त आक्रांत था)! ऐसे में उसकी तीव्रबुद्धि सोच-समझ कर निर्णय लेने में

अशक्त थी। इतना अवश्य संभव हुआ कि सावित्री ने अपना चित्त सत्यवान की विचारधारा और दिवास्वप्न देखने की ओर से हटा लिया। वह अपने इस परिवर्तन से पहले की तरह अपनी दिनचर्या को मशीन की भांति करने में सफलता पाने लगी। इस बीच उसने कड़ी मेहनत से शोधकार्य किया किंतु रचनात्मक रूपरेखा देना संभव न हो पाता, कोई न कोई बाधा आ कर घेर लेती। जब भी वह कुछ लिखने का प्रयत्न करती, शब्द कंठ में अवरुद्ध हो जाते। कितना बार लिखना शुरू करके पन्ने को फाड़ डालती, कुछ भी उसके मन को न छू पाता। इसी बीच होली का त्योहार आया। चारों ओर उत्साह छाया हुआ था। कुछ साथी त्योहार मनाने घर छुट्टी ले कर जा रहे थे। सावित्री का मन हुआ कि वह इस बीच मां से जा कर मिल आये, पिछली बार उन्हें चिंता में छोड़ आयी है। उन्होंने कुछ पूछा नहीं किंतु मां को उसकी पीड़ा का भान था। विदा के समय जिस तरह उसका हाथ पकड़ कर अपना विशेष ध्यान रखने की उन्होंने दयनीय याचना की थी, उस ममत्व की खोज ही सावित्री के जटिल जीवन पथ की पाथेय थी, अतएव घर जाने का प्रोग्राम बना कर वह अंदर ही अंदर पुलकित हो उठी। औपचारिकता निभाने के लिए उसने सत्यवान एवं लैब के अन्य सहकर्मचारियों के लिए होली की शुभकामनाओं का कार्ड पोस्ट कर दिया।

होली का त्योहार घर पर विशेष उमंग भरे रंगों से ओतप्रोत न था, मां ने अवश्य उसके अचानक आ जाने के कारण अपनी खुशी अच्छा भोजन एवं होली के पकवान बना कर प्रदर्शित की थी।

इस बार लैब में वापस पहुंच कर अपने शोधकार्य को तुरंत लिखने का लक्ष्य निर्धारित करने के बाद से सावित्री में नयी उमंग थी। लैब पहुंचते ही वह अपने कार्य में जुट गयी। निर्णय के बाद से सत्यवान और सावित्री के बीच मानो एक संधि पत्र लिख गया हो, दोनों अपने अपने कार्यक्षेत्र में रत रहने लगे। सावित्री की आंख अवश्य रात्रि के दूसरे प्रहर में खुल जाती। वह अतीत की स्मृतियों से उलझ कर रह जाती, क्या प्रेम का जीवन इतना छोटा होता है? उसके प्रेम की मृत्यु इतनी जल्दी हो गयी, सोच कर वह रो उठती। काश, सत्यवान का सामीप्य होता! उसके वक्ष पर अपने आंसू बहा कर वह हलकी हो पाती!

इधर सत्यवान भी एकांत में विचलित हो जाता। उसकी पत्नी देखने में अति सुंदर है, उसके बच्चे की मां है किंतु उसके स्वभाव में गर्वीलापन है, शायद धनाढ्य होने का दर्प। उसके साथ तो हास-परिहास करना, मधुर वार्तालाप करना संभव नहीं, जो सावित्री के साथ उसे सहज मिल जाता था, इसके अतिरिक्त अपने शोधकार्य में एक सच्चे सहयोगी का पूरा योगदान। प्रेम निवेदन कर देने के बाद से ही सावित्री में परिवर्तन आ गया है। पत्नी और प्रेमिका की तुलना से सत्यवान, विशेषतः अपने प्रयासों से, जिनके कारण वह स्वयं निर्लिप्त अनुशासित होने का नाटक करने के लिए बाध्य हो गया था, ऊब उठता था। सावित्री से चिरवियोग की पीड़ा उसे असहनीय लगती। उन्हीं कारणों

ने सत्यवान को झकझोर कर रख दिया। दूसरे ही दिन सावित्री को उसकी किसी सहेली के द्वारा अपने लैब में बुलवा कर उसने अपनी चुप्पी तोड़ दी।

"आपका होली की शुभकामनाओं भरा कार्ड आया था, धन्यवाद। यहां सब लोगों ने होली डट कर मनायी, आपकी कैसी रही?"

"ये तो अपने घर गयी थी," सहेली ने चपलता से उत्तर दिया और वहां से बहाना बना कर चली गयी।

"शायद हम लोग आपको रंगों से तरबतर कर देते, इसी डर से आप भाग गयीं। वाकई यहां बीच के कुंड में लड़कों ने ढेर सा रंग डाल कर रखा था, लड़कियों को पकड़ पकड़ कर उसी में डुबो रहे थे, और ख़ूब सा अबीर उनके कोमल गालों पर लगा रहे थे," कह कर सत्यवान सावित्री की प्रतिक्रिया जानने के लिए उत्सुक था।

सावित्री को ऐसे भद्दे तरीक़े से होली खेलना बिलकुल पसंद न था। वह किसी भी स्थिति में संयम को तोड़ना पसंद नहीं करती थी, चुप रह जाना ही उसने उचित समझा।

सत्यवान को लगने लगा कि वह सावित्री के हृदय को फिर से जीत न सकेगा। उसके लिए यह चुप्पी असहनीय थी। किसी तरह इसमें व्यवधान डालने की छटपटाहट में वह सावित्री से एकांत में न मिल सकने की असमर्थता के प्रति क्षमाप्रार्थी हो और अति भावावेश से द्रवित हो कहने लगा, "मानिन राधा देखी, मानी कृष्ण न देखा। अब तक लगता है, मुझ से रूठी हुई हैं, मुझे तो मनाना नहीं आता। मैं तो केवल वैज्ञानिक हूं। मुझे आपको कैसे विश्वास दिलाना होगा, पता नहीं। लेकिन यह सच है कि इस बीच में मैंने आपकी कंपनी को बहुत अधिक मिस (खोया) किया है। आपके स्वादिष्ट भोजन जैसा भोजन मुझे कहीं नहीं मिला। वैसा भोजन होली के त्योहार तक पर भी कहीं नहीं मिला। तुम्हें पता ही है कि मेरी पत्नी चौके के काम को खुद नहीं करती, सब कुछ नौकरों के सहारे चलता है। सच मानो, भोजन से ज्यादा मेरे जीवन का रस, वह सब तुम अपने साथ ले कर कहां भाग गयी थीं? तुम मेरे जीवन में 'मधु' हो।"

"आप तो मधुकर हैं, आज इस कली पर, कल उस कली पर। केवल भौंरे की तरह दूसरों के रस को चुराना और उन्हें मुरझाने के लिए अकेला छोड़ देने के अतिरिक्त···" कह कर सावित्री वहां से जाने के लिए किवाड़ खोलने लगी।

आगे बढ़ कर सत्यवान ने उसका रास्ता रोक दिया, "इतनी जल्दी न जाने दूंगा। आज कितने दिनों बाद आयी हो, कितना तरसा कर मुझे रखा है! कहती हो, मैंने रस का स्वादन करके तुम्हें अकेला मुरझा जाने के लिए छोड़ दिया है, यदि ऐसा सच था तो मैं तुमसे हृदय से माफ़ी मांगने के लिए तैयार हूं। उम्र, पद दोनों में तुम छोटी हो तो क्या, बातें तो ऐसे कर लेती हो, जैसे बहुत बड़ी ज्ञानी, ध्यानी हो! मैं तो नादान हूं, कोरा प्रेमरोगी और प्रेम का भोगी। जैसा भी हूं, मुझे भी पता है कि तुम मुझे पसंद करती हो किंतु अपने आपसे लड़ रही हो, अपने पूरे आकर्षण को नैतिकता की कसौटी पर लटका कर देखती-परखती हो। उस तराज़ू में, मैं नीचे रह जाता हूं, तुम ऊंचे उठ जाती हो।

विस्तृत था। स्थान की दूरी को वह वायुयान की यात्रा करके सहज ही दूर कर सकता था, अतएव काफ़ी सोच-विचार कर उसने सावित्री को सुदूर दक्षिण की एक नयी प्रयोगशाला में उच्चस्तरीय वैज्ञानिक के पद पर नियुक्त करवा दिया।

अनायास पदोन्नति का प्रस्ताव मिलने से सावित्री प्रसन्न होने के बजाय उदासीन हो उठी। उसे अपनी मां और अब सत्यवान की छत्रछाया में शांति मिलती थी, अनजाने प्रदेश में इतना बड़ा दायित्व संभाल सकना उसे दुर्लभ कार्य लगा। मन ही मन उसके जीवन में जो बसंत आया था, वह शीघ्र पतझड़ में परिवर्तित हो जायेगा। ऐसे भविष्य की आशंका से उसका मन अंदर ही अंदर रो उठा। ऐसे में उसे क्या करना चाहिए? इस पर विचार-विमर्श के लिए उसे सत्यवान ही अपना परम हितैषी और मार्गदर्शक लगा।

सत्यवान ने सावित्री को अपने समक्ष इतनी शोचनीय अवस्था में उस पर निर्भर होते पहले कभी नहीं पाया था। इस गंभीर मंत्रणा के लिए उसने सावित्री को बाध्य किया कि वह उसे ले कर ऐसे एकांत स्थान में जायेगा जहां दोनों देर तक बैठ कर चर्चा कर सकें। इस कार्य के लिए उसे वही होटल उपयुक्त लगा जहां वह मेघना को ले गया था। उस स्थान के प्रति उसके मन में गहरा घाव था और मेघना के प्रति घोर वितृष्णा के चलते अन्य नारी से प्रतिकार लेने की अभिलाषा। सावित्री अतीत के इन सब संदर्भों से अनजान थी। सत्यवान के व्यवहार में उसे शालीनता और प्रेमी की याचकता का ही सदैव अनुभव हुआ था। सत्यवान ने सावित्री की मनःस्थिति परख रखी थी। उसे पता था कि सावित्री मेघना से भिन्न है। वह भारतीय संस्कार में पली हुई कन्या है जहां विवाह से पहले शारीरिक संपर्क से बच कर रहने का पाठ बचपन से पढ़ाया जाता है। सावित्री तो सत्यवान के हाथ को छू लेने मात्र से ऐसे भयभीत हो उठती मानो हाथ नहीं, एक विषैले सांप का फन हो! इस प्रवंचना के अनुपात में हास-परिहास, मधुर वार्तालाप, वैज्ञानिक चर्चा में सहयोग और प्रेम के शेष विस्तृत रूप में सत्यवान का सावित्री के प्रति प्रेम दिनोंदिन बढ़ता रहा था। उसे विवाहित होने के कारण अपनी शारीरिक भूख मिटाने के लिए सावित्री के पास जाने की आवश्यकता न थी, इसके लिए घर में उसकी पतिव्रता पत्नी उमा का सहयोग सहज प्राप्त था। वासना की लपटों ने उसके हृदय को कदाचित् ही सावित्री के समकक्ष उद्वेलित किया था। केवल सावित्री उसकी निजी संपत्ति है, इसे अब कोई नहीं ले पायेगा, यही उन्माद उसे सावित्री को इस एकांत होटल की ओर खींच कर ले गया था। वहां पहुंच कर सावित्री अवश्य नर्वस हो गयी, जो सत्यवान को स्वाभाविक लगा। वह बेचारी शहर से इतनी दूर एकांत होटल की भव्यता देख कैसे सहज हो पाती? उसका यह अनूठा अनुभव उसे अंदर तक हिला देने के लिए पर्याप्त था, विशेषकर जब उसकी मानसिक अवस्था भविष्य के जीवन के प्रति शंकाओं से ओतप्रोत थी।

सत्यवान ने उसे सहज करने की भरसक कोशिश की। उसने ऐसी टेबल का चयन किया जहां एकांत भी था किंतु वहां धीमा प्रकाश चारों ओर से आ रहा था। उसे पता था, इस होटल में कोई बेयरा बिन बुलाये उनके एकांतवास में व्यवधान नहीं डालेगा,

इसलिए वह सावित्री को ले कर फैमिली केबिन में घुसा। उसने जाते ही बेयरे को दो ठं कोका कोला की बोतलें और खाने की नमकीन सामग्री का ऑर्डर दे दिया, जो बेय तुरंत ही ले कर हाज़िर हो गया। अन्य चीज़ों का ऑर्डर ज़रूरत पड़ने पर बाद में दि जायेगा, यह कह कर सत्यवान ने बेयरे को बिदा कर दिया। बेयरा सलाम करके तुरं चला गया क्योंकि उसे भी पता था कि ऑर्डर जितना भी कम हो किंतु टिप अच्छ मिलेगी क्योंकि यहां जोड़े देर तक बैठने आते हैं।

सत्यवान ने सावधान हो कर सावित्री की बातचीत सुनी और उसे पूरा भरोस दिलाया कि दक्षिण में अकेले रहने में उसे कोई असुविधा न होगी। वहां नारी उत्तर भार से अधिक स्वतंत्र है, अपना कार्यक्षेत्र चयन स्वयं करती है। पढ़ी-लिखी और अनप दोनों ही आजकल घर का कामकाज करने के बाद, धन उपार्जन के लिए बाहर जो भ काम मिले, उसे करने में पीछे नहीं हटतीं। परदा प्रथा वहां बिलकुल नहीं है। कामकार्ज महिलाएं दफ़्तर, बस, आदि में असुरक्षित अनुभव नहीं करतीं। 'ईव-टीजिंग (लड़किय की छेड़खानी) जैसी घटनाएं' कहते हुए सत्यवान मुस्कराने लगा। कुछ देर चुप रह क बोला, "फिर मैं भी सरकारी कामकाज के लिए वहां आया करूंगा। अभी से भविष्य क चिंता करना मूर्खता है। जो भी समस्या आयेगी, मैं तो हूं समाधान खोजने के लिए।'

इस परामर्श और उचित मार्गदर्शन ने सावित्री का मन जीत लिया। उसको लगन लगा कि सत्यवान जैसा पथप्रदर्शक मिल जाने के बाद उसे चिंतामुक्त हो कर केवल वर्तमान में जीना चाहिए।

सत्यवान सावित्री का हृदय परिवर्तन देख कर, परम हितैषी की तरह उत्तेजित हो अपनी योजना को कार्यान्वित करने के लिए संवेगित हो उठा। सावित्री का हाथ अपने हाथ में दृढ़ता से पकड़ कर कहने लगा, "आज से हम दोनों पवित्र प्रेम-विवाह के बंधन में बंध गये हैं। प्रिये सावित्री, क्या तुम मेरी प्रतीक्षा तब तक करती रहोगी जब तक कि मैं अपनी पत्नी से तलाक़ न ले लूं? मैं आशा करता हूं, आज से तुम मन-प्राण से मेरी बन कर रहोगी, तुम्हारे शरीर पर केवल मेरा अधिकार होगा। सिंदूर से मांग भर देने मात्र से मेरा अधिकार स्थापित हो जायेगा तो मुझे चुटकी भर सिंदूर दे दो अभी, मैं तुम्हारी मांग में डाल देता हूं किंतु वह सिंदूर मैं तुम्हारे साथ विवाह के बाद डालना चाहूंगा, यद्यपि मेरा ऐसी सामाजिक रीति-रिवाज़ों में···" कहते हुए सत्यवान रुक गया। सावित्री की कुर्सी अपने निकट खींच कर स्नेह भरे शब्दों में कहने लगा, "मेरा अंग अंग आज से तुम्हारा है, मेरी पत्नी का नहीं रहा। तुम्हें देने के लिए इस समय मेरे पास कुछ नहीं है लेकिन मरने के बाद मेरी राख भी तुम्हारी···केवल तुम्हारी होगी। विश्वास रखो, मेरा तन, मन, धन सब तुम पर अर्पित है। तुम्हारे अधरों का मधुर स्वाद जी भर कर पीने की मुझे अनुमति दो," कहते हुए सत्यवान ने सावित्री की प्रतिक्रिया की प्रतीक्षा नहीं की, उसे अपने आलिंगनपाश में बांध कर अपने अगणित चुंबनों से बेसुध कर दिया।

प्रणय संवेग की आंधी में दोनों प्राणी बंधे समय की गति रुक जाने का अहसास

करने लगे। सावित्री सत्यवान की गरम श्वासों से उबर नहीं पा रही थी, किसी पुरुष का इतनी नजदीकी का सान्निध्य उसकी चेतना को हिलाये दे रहा था। सत्यवान रतिक्रीड़ा में चतुर खिलाड़ी था, अतएव संयत हो कर उसने सावित्री को सचेत करने के लिए कहा, "देखो, जल्दी से अपने बाल, बिंदी, साड़ी आदि ठीक कर लो, बाथरूम पास में ही है, उसके बाद मेरे पास जल्दी आना, प्लीज़।"

यह सुन कर सावित्री की प्रतिक्रिया कुछ वैसी ही हुई जैसे सम्मोहन की स्थिति में कोई प्राणी दी गयी आज्ञा का पालन कर देता है।

सावित्री बाथरूम में अपने शरीर और कपड़ों को सुव्यस्थित करने के बाद लौट कर पास में पड़ी कुर्सी पर निढाल हो गयी। उसकी दशा को देख कर सत्यवान भयभीत हो उठा, लेकिन यह सोच कर उसे बेहद ख़ुशी हुई कि सावित्री के हृदय पर उसका पूर्ण एकाधिकार हो गया है। भाग्य से वह अपनी निजी कार में यहां आया है, सरकारी कार में आया होता तो ड्राइवर के सामने सावित्री की हालत के कारण परेशानी में फंस जाने की आशंका थी। ड्राइवर उड़ती चिड़िया के पंख... ख़ैर इन बातों को तूल देना इस समय व्यर्थ है, सोचते हुए सत्यवान ने सावित्री पर अपना ध्यान केंद्रित किया। वह इस समय यंत्रवत् बैठी शून्य में ताक रही थी। सत्यवान ने कुर्सी आगे बढ़ा कर उसे उठने का संकेत किया और स्नेहपूर्वक उसका हाथ थाम कर उसको कार तक पहुंचने में अपना सहारा दिया। कार में बिठला कर तुरंत वहां से चल देना ही उसने उचित समझा। अपनी प्रसन्नता को प्रगट करते रहने के लिए अपनी एक बांह को सावित्री के कंधे पर रखे रहने की अपनी योजना में उसे कार की तेज़ गति में बैलेंस बिगड़ जाने का भय लगने लगा।

बाहर की स्वच्छ हवा को पा कर सावित्री ने अपनी चेतना को धीरे धीरे सामान्य होते हुए पाया। उसकी आंखों को पूरी तरह से खुला देख सत्यवान ने कार की गति को धीमा करके सावित्री को पुनः आलिंगनपाश में बांध लिया। उसमें प्रेमी की ललक के साथ साथ सावित्री के ऊपर पूर्ण स्वामित्व का गर्व था। सावित्री की चेतनाशक्ति जाग्रत होते ही उसमें एक लपट की तरह सत्यवान को तिरस्कृत करने की क्रोधाग्नि भड़क उठी। मन में लगने लगा कि आज सत्यवान ने उसके साथ छल किया है। वह एक विवाहित पुरुष है। अपनी सारी मर्यादा को भूल कर वह यदि पथभ्रष्ट हो गया था तो उसने क्यों उसका साथ दिया? क्यों नहीं विद्रोह किया? अब वह एक साधारण अबला नारी की तरह, जिसका मान भंग किसी पुरुष ने कर दिया हो, बिलख बिलख कर रो नहीं सकती, किसी से इस अत्याचार के लिए दंड देने की अपील नहीं कर सकती। क्रोध की ज्वाला में जल उठने के कारण सावित्री के कंठ से आवाज़ नहीं निकल रही थी, अधर कुछ कहने के लिए फड़फड़ा कर स्थिर हो जाते, जैसे जड़ हो गये हों। कुछ समय पूर्व इन्हीं अधरों ने सत्यवान को पूरी तरह रसास्वादन की स्वतंत्रता प्रदान कर दी थी। कितनी तल्लीनता से गरम सांसों में वह बेसुध हो रही थी! क्या उसमें उसका योगदान नहीं था? अवश्य ही उसमें अपनी कामवासना की प्यास थी जिसके आकर्षणवश वह सत्यवान के साथ

खिंचती गयी है। यह स्वयं का प्रबल प्रेमजनित संवेग है जिसका विवेक आते ही सावित्री की क्रोधाग्नि शांत हुई और उसने अपने शरीर को आलिंगनपाश से विलग कर लिया।

प्रतिक्रिया में सत्यवान ने लंबी चुप्पी को तोड़ने की धृष्टता करते हुए कहा, "मुझे सामाजिक रीति-रिवाज़ों में रुचि नहीं, मुझे तो आनंद चाहिए। मेरी मान्यता है कि 'लिव एंड लेट लिव' (खुशी से रहो खुशी से औरों को रहने दो)।"

यह सुनते ही सावित्री के कंठ से क्रोधाग्नि की दबी ज्वाला भड़क पड़ी, "विवाह के पवित्र बंधन को तोड़ देने की बात कर सकते हैं क्योंकि आप प्राकृतिक सिद्धांत को मान्यता देते हैं, जंगल में सिंह-सिंहनी कब विवाह सूत्र में बंधते हैं?"

"इस समय मैं तुम्हारे साथ किसी तरह के वाद-विवाद में नहीं पड़ना चाहता। मुझे जो चाहिए था, वह आज मैंने पा लिया है," कहते हुए सत्यवान ने सावित्री को पुनः आलिंगनपाश में बांध लिया।

सावित्री ने अपने दबे हुए क्रोध को कामवासना की तृप्ति की ओर बढ़ते हुए पाया। वह संस्कारवश अपने प्रेमी पुरुष को पूर्ण रूप से समर्पण करने में समर्थ थी लेकिन उसकी कुशाग्र बुद्धि कह रही थी कि उसे जीवनपर्यंत इस मानभंग के अपमान में जलना होगा, काम और क्रोध दोनों पर संयम करना होगा।

सत्यवान उसे प्रसन्न होते देख कर पुलकित हो उठा, "एक चंद्रमा आकाश में चमक रहा है और दूसरा आ कर मेरी गोद में बैठ गया है। मैंने कभी सोचा भी न था कि तुम इतनी आसानी से मुझे अपना लोगी। मेरे लिए तुम ही केवल मेरा स्वर्ग-नरक इस संसार को बना सकती हो। अब तुमसे बढ़ कर मेरे लिए कोई धन, वैभव नहीं है, सुन रही हो सावित्री···"

सावित्री निरुत्तर थी। उसके लिए प्रेम में बहना संभव न था। सब कुछ इतना अनायास हुआ था, जो केवल मृगतृष्णा की भांति उसे जीवन के सूने पथ पर आगे ले जा रहा था। सत्यवान की सबल बांहों में केवल चिपक कर बैठे रहना रुचिकर लग रहा था। किंतु एकाएक सत्यवान ने उसे वास्तविकता के कठोर धरातल पर ला दिया, "सावित्री, संभल कर बैठो, हम शहर में पहुंचने वाले हैं। इतनी देर से तुम्हारे शरीर का पूरा भार मेरे कंधों पर रहा है, मुझे कार चलाते समय अत्यधिक सावधानी से काम करना पड़ा है। मुझे लग रहा है कि मेरी हृदयगति···"

"मुझे क्षमा करें। आपने पहले क्यों नहीं सचेत कर दिया?" ग्लानि से भरे अवरुद्ध कंठ से सावित्री अधिक बोल न सकी।

कल्पनालोक से पृथ्वी पर औंधे गिर पड़ने में किसे पीड़ा नहीं होती? सावित्री की विवशता धीरे धीरे एक दयनीय मनःस्थिति में बदलने लगी। उसे लगने लगा, जो क्षणिक सुख आज सत्यवान के प्रणय निवेदन में उसे मिला था, उस पर उसका अधिकार नहीं है। भविष्य में वह सुख केवल सत्यवान के अनुग्रह पर आधारित रहेगा। सावित्री के लिए जो मिला, जो है, और जो मिलेगा, ये सब कुछ सत्यवान द्वारा निर्धारित—ये कैसी

विडंबना है? सत्यवान ने उससे पूछे बिना उसका सब कुछ ले लिया है। कदाचित् इस पराजय में भी उसकी अस्मिता सुरक्षित रह सकती है यदि वह एक लक्ष्मणरेखा बना कर चले कि वह विवाह के बाद अपना कौमार्य भंग करने की अनुमति सत्यवान को दे सकेगी। मानो विधाता ने यह अभिशाप उसके ललाटपटल पर सदैव के लिए लिख दिया था।

जैसा कि पाठकगण जानते हैं कि सावित्री-सत्यवान की कथा में निर्धारित था कि उसके पति की मृत्यु हो जायेगी। इसलिए जब सत्यवान को लेने यमराज ठीक एक साल के बाद आये, उस समय सावित्री ने उनके साथ वाक्‌युद्ध द्वारा पति की मृत्यु को टाल देने के लिए बाध्य किया। पहले यमराज से सौ पुत्रों की मां बनने का आशीर्वाद प्राप्त कर लिया और तब कहा, 'जब पति ही जीवित नहीं होगा तो उसके सौ पुत्र कैसे होंगे?' हमारे इस उपन्यास की नायिका सावित्री अभिशप्त हुई किंतु इसी विश्वास में वह जीवनपर्यंत सत्यवान के प्रति समर्पित रही कि सत्यवान जब चाहे अपनी धरोहर को विधिवत विवाह करके लेने आ सकता है।

निस्संदेह, इस कथानक की नायिका पर नायक सत्यवान ने एक अमिट व्यथा की छाप सदैव के लिए लगा दी थी, 'तुम मेरी हो, अब तुम किसी अन्य पुरुष की नहीं हो सकतीं, जन्मांतर तक···' क्या यही छलावा नारी को निर्बल बना देता है? वह अपनी भावनात्मक कटिबद्धता के कारण अपने ही बनाये हुए कारावास में क़ैद हो कर सती सावित्री बन जाती है। ऐसे पुरुष और स्त्री के संस्कारों एवं जीवन शैली में कोई समानता नहीं है। ऐसा कामातुर प्रेमी असामाजिक व्यक्तित्व का होता है और ऐसी अबला प्रेमिका नारी का भाग्य विधाता द्वारा निर्मित नहीं होता, यह तो ऐसे कामुक पुरुषों के मोहपाश में पड़ जाने का एक भयानक हादसा है, जैसे—बलात्कार। ऐसे असामाजिक पुरुष अपने प्रबल शारीरिक बल द्वारा नारी के शरीर को सदैव के लिए एक शिलावत जड़ बना कर रख देते हैं। ऐसे पुरुषों में नारी को संभोग द्वारा अपनाकर त्याग देने वाली दुष्प्रवृत्ति होती है जो आदिमानव की बची हुई पूंछ है, जिसे नारी आत्मरक्षा और बलवती आक्रमण की उचित शिक्षा द्वारा सहज ही काट सकती है। सत्यवान के साथ यातनाएं सहते हुए वयःसंधि के अंतिम पड़ाव में कदाचित् यह ज्ञान सावित्री ने न उपयोग किया होता तो वह भी अपनी अस्मिता की रक्षा स्वयं नहीं कर पाती। पाश्चात्य देशों में नारी ने इस समस्या का समाधान बहुत पहले कर लिया है, इसलिए वहां विवाह से पहले ऐसे उन्मुक्त सेक्स को अनैतिक नहीं माना जाता, लेकिन वह नारी स्वतंत्रता का भारत में विकल्प नहीं बन सकता। यह वृहत प्रश्न संवेदनशील मानवी नारी की आत्मरक्षा का है जिसे अति भावनाप्रधान होने के बीच की दूरी को लांघ सकने के लिए प्रेम और श्रद्धा, स्त्री-पुरुष दोनों की कटिबद्धता, सेतु द्वारा संभव है, वासना की तृप्ति द्वारा नहीं। आध्यात्मिक जगत में तो कहा जाता है, 'श्याम रे घनश्याम, तुम तो प्रेम के अवतार हो,' हज़ारों गोपियों में से किसी एक गोपी ने भी चीर हरण को अपनी मानहानि का प्रश्न नहीं बनाया, फिर

क्यों अबला नारी अपने प्रेमी पुरुष के समक्ष खड़ी हो कर अतिदयनीय हो कर विनती करे, 'देखो निष्फल न जाये, आंसुओं की धार हो?' प्रबुद्ध, समकक्ष खड़ी जीवनसंगिनी प्रेयसी नारी ईश्वर को भी प्रेमी रूप में अंगीकार तभी कर पाती है जब वह राधा सी आह्लादिनी शक्ति की प्रतीक हो। वृंदावन में केवल राधा रानी की ही पूजा होती आयी है, राधा के बुलाते ही कृष्ण वहां भाग कर आ जाते हैं और अपनी मधुर मुरली की तान से समस्त सृष्टि को एकाग्र कर लयबद्ध कर लेते हैं। वहां राधा-कृष्ण दो अलग अलग अस्मिताएं नहीं हैं, वहां तो है '*लाली मेरे लाल की जित देखो तित लाल, लाली देखन मैं गयी, मैं भी हो गयी लाल*' अस्तु।

परंतु इस समय सावित्री को भाग्य से एक विकल्प मिल गया था। उसे दक्षिण यात्रा पर रवाना होने से पहले, अवकाश ले कर अपनी मां की अनुमति लेने जाने का कार्य करना अनिवार्य था। होस्टल पहुंचते ही सावित्री का फिर किसी से मिलने का मन नहीं हुआ। सीधे अपने कमरे में जा कर सामान बांधा, उसे बैग में रखा और वह अपने घर चली गयी।

चार

जीवन में इतने नज़दीक ला कर सत्यवान लैब में सावित्री को कुछ दिनों से देख न पा कर अतिव्याकुल हो उठा। सावित्री बिना उसकी आज्ञा लिये कहां एकाएक चली गयी? अभी तो उसे नौकरी से त्यागपत्र देना होगा जिसकी अवधि एक महीने की होनी चाहिए। इसके अतिरिक्त सावित्री की नियुक्ति सुदूर दक्षिण भारत की एक प्रयोगशाला में उच्चस्तरीय शोधकार्य हेतु सीनियर वैज्ञानिक पद पर हो गयी, इसकी जानकारी उसके अतिरिक्त और किसी को नहीं थी। सावित्री ने इस पद के लिए कोई आवेदन पत्र नहीं भेजा था। वह तो सत्यवान के परामर्श द्वारा प्राप्त हुई थी। फिर भी सावित्री उससे पूछे बिना ऐसे ग़ायब हो गयी है जैसे ख़रगोश के सिर से सींग। सत्यवान इस उपेक्षा से मन ही मन तिलमिला उठा, लेकिन सावित्री लौट कर आये तब ही वह अपनी प्रतिक्रिया द्वारा इस अपमान का बदला ले सकता था। सत्यवान ने इस पसोपेश के बीच अनुमान लगाया कि सावित्री अवश्य ही अपनी परमप्रिया मां से सलाह करने गयी होगी। परंतु क्या अपनी नयी नौकरी के लिए या अपने इस नये संबंध के लिए? मन में उठे प्रश्नों से उलझ कर सत्यवान ने तुरंत एक छोटा सा अंतर्देशीय पत्र सावित्री के घर के पते पर लिख कर भेज दिया।

सावित्री मां के पास अपनी नयी नौकरी के विषय में सलाह लेने गयी थी। उसकी विधवा मां पूरी तौर से उसी पर निर्भर थी। यहां से वह अकसर छुट्टियों में मां को देख-सुन आती थी, सदैव त्योहार आदि वह मां के साथ ही मनाती थी, पर इस नयी नौकरी में मां की उचित देखभाल कर सकना उसके लिए संभव न था। सावित्री को आशंका थी कि मां उसके साथ अपनी घर-गृहस्थी छोड़ कर दक्षिण जाने के लिए राज़ी होगी। मां से लंबे काल तक दूर हो जाने में सावित्री अपने आपको सक्षम नहीं पा रही थी, इसी दुविधा में वह तुरंत भाग कर मां के पास आ गयी थी। अंतर्मन में सत्यवान के प्रेम प्रसंग ने सावित्री को अंदर तक हिला दिया था। वह किसी भी हालत में अपनी मां से उसकी स्वीकृति की आशा नहीं कर सकती थी। सत्यवान शादीशुदा था, वह उम्र में भी उसके लायक़ न था, इसके अतिरिक्त मां के समाज में रूढ़िवादी और बिरादरी में प्रेम विवाह घोर निंदनीय विषय रहा है। उच्च शिक्षा दिलवाते समय सावित्री की मां ने

अनेक बार उसे एक ही चेतावनी दी थी, 'बेटी, ऐसा कोई कार्य न करना जिससे तुम्हारी मां के मुंह पर कालिख लग जाये।' इन सब बातों को ध्यान में रखते हुए सावित्री बेहद दुखी हो जाती। उसने मां से बुझे हुए स्वर में पूछा, "मां, मुझे सुदूर दक्षिण भारत से एक अच्छी नौकरी का प्रस्ताव आया है। समझ में नहीं आता, क्या करूं?"

"अरे, यह तो ख़ुशी की बात है कि तुम्हारी पढ़ाई-लिखाई की इतनी क़द्र तो हुई।" थोड़ी देर चुप रह कर बिना हिचक वह बोल उठीं, "मैं भी कभी न कभी रामेश्वरम् के दर्शन का लाभ पा सकूंगी। इस अभागिन के ऐसे भाग्य उदित होंगे, यह तो मैंने कभी स्वप्न में भी नहीं सोचा था। मेरी बेटी मुझे श्रवणकुमार की तरह तीर्थस्थान दिखलायेगी," कह कर वह रसोई में चली गयीं।

सावित्री ने अपनी मां को इतना बोलते काफ़ी दिनों बाद देखा था। मां को खुश करने और तीर्थाटन की संकल्पना से सावित्री को आत्मीय सुख की अनुभूति हुई। चौके में जा कर वह मां के साथ नितांत घरेलू बातें करने लगी, तभी डाकिये ने कुंडी बजायी, सावित्री ने बाहर आ कर डाक ली जिसमें उसे सत्यवान का लिखा हुआ अंतर्देशीय पत्र मिला। पत्र में सत्यवान ने उसे 'अपनी प्रियतमा' लिख कर संबोधित किया था और साथ में उसकी जीवनसंगिनी बन जाने की प्रतिबद्धता का भी उल्लेख किया था। सावित्री उस छोटे से पत्र को पढ़ कर उथल-पुथल भरी मानसिकता से ओतप्रोत हो गयी। एकाएक प्रियतमा का गौरव मिल जाने से हृदय में आनंद की लहरें उठीं किंतु एकाएक उन पर घोर आशंका की बूंदें बरसने लगीं। सत्यवान इतना चतुर हो कर कैसे भूल गया कि यह पत्र उसकी मां के हाथ में भी पड़ सकता था? उस समय उसकी कैसी दुर्दशा होती? उसने तय किया कि यह सब उसे गोपनीय रखना होगा, जैसे सत्यवान अपनी पत्नी उमा से रखता है। इस प्रेम आनंद से अपने पंख उड़ते हुए लगने लगे, किंतु प्रेम प्रसंग की चर्चा नहीं करनी होगी। यह दृढ़ निश्चय ले लेने के बाद से कठिन कार्य में तत्परता से जुट जाना सावित्री के लिए शायद संभव हो गया होगा। माना अपने हृदय में एकाएक उठी आनंद की लहर पर क़ाबू पाना सावित्री के लिए उतना ही दुष्कर था जैसे अपने कलेजे पर पत्थर रखना, फिर भी वह अपनी मां को यह सब बतला कर किसी भी हालत में दुखी नहीं कर सकती थी। उसे इसी प्रतिबद्धता को निभाने के लिए शायद सत्यवान के पास तुरंत पहुंच जाने में अपना हित लगा।

इधर सत्यवान भी सावित्री के एकाएक ग़ायब हो जाने से व्याकुल और सच्चे प्रेमी की भांति विरहाकुल हो उठा था। लैब में पहुंचते ही सावित्री ने सत्यवान के साथ एकांत मिलते ही तुरंत खुल कर कहा, "आप मेरे सच्चे हितैषी और मार्गदर्शक हैं किंतु आप मेरे जीवनसाथी कदापि नहीं हो सकते। मैं हृदय से आपकी आभारी हूं, कृतज्ञ हूं, किंतु आप शादीशुदा हैं, मेरे पति नहीं हो सकते, कभी नहीं।"

सत्यवान इतना सब घटित हो जाने के बाद इस उपेक्षा को सहन न कर सका। अति संवेदित हो बोला, "मां के पास से आते ही लगता है, तुम मुझसे परायी बन आयी हो।

सवि, मैं तुम्हें अपनी आदर्श जीवनसंगिनी, प्रियतमा, पत्नी सब कुछ समझ बैठा हूं। मैंने तुमसे कभी कुछ नहीं छिपाया। मैं तुम्हें हृदय से प्यार करता हूं। इसलिए तुम्हारा प्यार पाने के लिए लालायित हूं। जब से लैब में तुम्हारी छाया मुझे देखने को नहीं मिली, तब से मेरी भूख-प्यास सब उड़ गयी है। मेरी पत्नी उमा ने भी अनुमान लगा लिया है कि मेरे मन-प्राण पर किसी अन्य महिला का अधिकार हो गया है, वह खंडित नायिका की तरह मुझसे रूठ कर अलग हो गयी है। अपने शरीर को मुझे छूने का भी अधिकार नहीं दे रही है। इधर तुम हो कि मुझसे प्यार करने के बाद भी अपने आपको इस भुलावे में रखना चाहती हो कि मैं केवल तुम्हारा हितैषी मात्र हूं। प्रेम के बंधन कच्चे धागे से बंधे नहीं होते जो एक झटके में टूट जायें। मैं तुमसे प्यार करने लगा हूं, अतः तुम भी मुझे प्यार करने से नहीं रोक सकतीं।'' संवेगित हो कर सत्यवान ने सावित्री को अपने आलिंगनपाश में बांध लिया, ''सावित्री, तुम केवल सत्यवान के लिए बनायी गयी हो,'' कहते हुए सत्यवान का मुख दर्प से तमतमा उठा।

सावित्री ने सत्यवान का ध्यान हटाने के लिए कहा, ''लगता है, कोई आ रहा है।''

सत्यवान ने तुरंत आलिंगनपाश से मुक्त करते हुए शंकित स्वर में कहा, ''यह सब तुम्हारे कारण हो रहा है। न तुम नैतिकता का आज मुझे पाठ पढ़ातीं, न ही मैं इतना अधिक उतावला हो उठता।''

''यह व्यवहार अनैतिकता का प्रश्न नहीं तो दूसरा क्या हो सकता है? जिस खुशी से दूसरे को दुख पहुंचे, मेरी समझ में वह पाप है। मेरे भुलावे में आ कर आप अपनी पत्नी पर अन्याय कर रहे हैं, मैं उस पाप की ओर आपको कभी नहीं···''

इस वाक्य को बीच में काटते हुए सत्यवान ने दृढ़ता से कहा, ''अभी जा कर अपना काम करो, तुम्हें नयी नौकरी ज्वाइन करने के पहले अपने सारे कार्य निपटाने के बाद ही तुम्हें जाने की अनुमति मिलेगी। जा कर एक महीने के नोटिस की अर्जी लिखो। मुझे जो करना है, उसे तुम क्या, कोई भी रोक नहीं सकेगा। मेरी मां भी इस समय यदि सामने खड़ी हो जाये तो वह भी मुझे नहीं रोक सकेगी। सुना है कि प्रेम किया नहीं जाता, हो जाता है। सवि, मुझे एक प्यारी लड़की की तरह अपना सहारा दो (बी ए लविंग गर्ल एंड सपोर्ट मी),'' कहते हुए सत्यवान ने प्रेमपूर्वक सावित्री को अपने कक्ष के द्वार तक पहुंचा कर वहां से तुरंत विदा होने के लिए बाध्य कर दिया।

सावित्री का मन ग्लानि और क्षोभ से भर उठा। बाहर आ कर उसे लगा कि वह सत्यवान को इस रूप में देख कर बेहद हिल गयी है। संवेगों की बौछारों में भीग जाने के कारण उसे कुछ भी नहीं सूझ रहा था। आंखों के सामने अंधेरा छा गया। प्रकृति से सावित्री संकोची थी किंतु पलायनवादी कदाचित् नहीं, इसीलिए उसने अपने निकटतम मित्रों से भी इस प्रेम प्रसंग की चर्चा करना उचित नहीं समझा, स्वयं को ही इस झंझावात से निकल जाने के लिए तैयार किया। वह एक ओर दक्षिण जाने की पूरी तैयारी में जुट गयी तो दूसरी ओर मन-प्राण से सत्यवान को अपने से दूर करने के असफल प्रयत्न

करती रही। उसकी दुविधा देख सत्यवान के पैर भी लड़खड़ाने लगे किंतु जितनी चतुराई से सावित्री अपने को अलग कर पाती, सत्यवान के लिए उसे अपने प्रेम के प्रबल वेग से पुनः लीन करने में तनिक भी कठिनाई नहीं होती क्योंकि ब्रह्मचर्य, तप की शक्ति शब्द के मोहजाल में फंस कर सीमित हो जाती है। संवेग तो नदियों के वेग के समान दुर्गम से दुर्गम भाग को काट कर आगे बढ़ने में समर्थ होते हैं। सत्यवान के संवेगों के समकक्ष उसका सामना करना सावित्री के लिए पराजित योद्धा की तरह हथियार डालना मात्र था। सावित्री की विवशता का केवल ईश्वर साक्षी है। क्या यह नारी की अपनी कमज़ोरी है? क्योंकि प्रेम पा कर वह अपनी अस्मिता भूल जाती है। नारी को विधाता ने पूर्ण समर्पण एक वरदान के रूप में दिया है, किंतु सावित्री के लिए वह एक अभिशाप सा बन गया। वह सत्यवान के प्रेम में मोम की तरह पिघल कर रह गयी होती यदि भाग्य ने उसे दक्षिण में एक नये कार्यभार का उत्तरदायित्व न दे दिया गया होता। दक्षिण के कार्यभार के सांचे में सत्यवान ने उसे ढाल दिया था। सावित्री ने संकल्प लिया कि वह सत्यवान के उसकी योग्यता के प्रति इस विश्वास को पूरी तरह निभायेगी, शायद इसी सूत्र को पकड़ कर वह तन, मन, धन से नये कार्यभार को संभाल लेने में जुट गयी।

शाम को केवल घर आ कर उसका मन बेहद उद्विग्न हो उठता। मशीन की तरह घंटों काम करते करते जब मन उचाट हो जाता तो वह पवन-वेग की तरह दौड़ कर सत्यवान के पास पहुंचने के लिए व्याकुल हो उठती, पर यहां घुटन को कम करने के लिए वह छत पर आ कर टहलने लगती। शाम के ढलते सूरज को देख कर उसे लगता, काश, उसका जीवन अज्ञात अनंत दिशा में जा कर डूब जाये! रंगीन बादलों के बीच सूरज की लुक-छुप देख कर लगने लगता कि बादलों सा आवारा व्यवहार सत्यवान ने किया है। उसके जीवन की अमूल्य निधि, जो उसका अपना ममत्व था, सत्यवान ने उस पर अपने व्यक्तित्व की छाप लगा कर मानो ग्रहण सा कस लिया है। उसका अपना कुछ भी नहीं रहा है। जीवन भर अपना कहने के लिए अब कोई भी नहीं होगा। छत पर जैसे जैसे अंधकार बढ़ता जाता, सावित्री में आत्महत्या का विचार कौंध जाता किंतु उसकी मां की दयनीय स्थिति आड़े आ जाती। वह तो पूरी तौर से उसी पर निर्भर है, अतएव आत्महत्या करना एक घृणित पाप सा उसे लगने लगता। आत्महत्या सोचना भी पाप लगता। किंतु सत्यवान विवाहित है, उसके बसे-बसाये घर को तोड़ देना भी तो पाप है। जीवन-मृत्यु की समांतर लकीरों में उलझी सावित्री ऐसे में विज्ञान की कोई पत्रिका पढ़ने की कोशिश करती, पर उसका मन इसमें भी न लग पाता। घर-गृहस्थी का चाव अवश्य उसे चौके में ले जा कर स्वादिष्ट भोजन बनाने की क्रिया में कुछ देर तक स्थिर रखता, किंतु जैसे ही व्यंजन को पका कर थाली में खाने के लिए परोसती, एकाएक उसका ध्यान सत्यवान की ओर चला जाता। उसे खाने-पीने का बेहद शौक़ है। साथ साथ खाने-पीने के चक्कर में ही तो उन दोनों की मित्रता प्रगाढ़ होती गयी थी और सत्यवान की भूख स्वादिष्ट खाने से तृप्त हो कर एकाएक प्रबल कामुकता में परिवर्तित हो गयी। किंतु सावित्री को

इसकी भनक क्यों नहीं लगी? वह एक अबोध बालिका सी मर्माहत होती गयी किंतु वह एक कुशल वैज्ञानिक होने के नाते स्वयं को भी उत्तरदायी समझ बैठी थी। अवश्य ही अवचेतन मन से उपजा उसमें स्वयं एक कामुक (sexual) आकर्षण था जो लोहे की तरह चुंबक से जा मिला। सत्यवान ने विवाह प्रस्ताव उसके समक्ष रखते समय उसे इसी तर्क से अवगत कराया था। यह दोनों का पूर्वजन्म नियोजित मिलन था, इसे तो होना ही था और जो हो गया, उसको ले कर तर्क-वितर्क, आगे और पीछे चलने से क्या फ़ायदा? यदि इस विवाह संबंध का प्रस्ताव सत्यवान ने अपनी शादी के पूर्व किया होता तब क्या सावित्री ऐसे अच्छे रिश्ते को ठुकरा देती? सावित्री एक नये विचार से उद्विग्न हो उठी। मां के भी चित्त में नाते-रिश्तेदारी की मान्यताओं को तोड़ने पर कठोर दंड की व्यवस्था है। वह सत्यवान को किसी भी रूप में स्वीकार नहीं करेगी। हर तरह से उसका विवाह संबंध नहीं हो सकता। यह कैसी बनायी गयी विधि की विडंबना है कि मां ने छोटी सी उम्र से वैधव्य जीवन जीया, अब उसे भी वैसा ही जीना होगा क्या? इस भयंकर कल्पना से सावित्री कांप उठी। नारी हर रूप में प्रताड़ित होने के लिए क्यों अग्रसर हो जाती है, मानो वह मोम की बनी है जो थोड़ी सी गरमायी पा कर पिघलने लगती है! सावित्री का चित्त इन विचारों के ताने को बनाने में घंटों लगा रहता। दक्षिण आ जाने के बाद से उसने दफ्तर के कामकाज को निपटा कर, घंटों इन्हीं सोच-विचार में अपने को व्यस्त रखा। नये समाजीकरण में अपनी तरफ़ से पहल नहीं की अतएव धीरे धीरे अत्यधिक अंतर्मुखी हो जाने के कारण उसकी भूख-प्यास कम होने लगी। रात में नींद भी देर से आती। घंटों वह पलंग पर करवटें बदलती रहती। कभी कभी भयंकर स्वप्न भी आ कर उसकी नींद को उचाट देते, बदन से पसीने छूटने लगते और मन फड़फड़ा कर सत्यवान के पास जाने के लिए आतुर हो उठता। कुछ समझ में नहीं आता, वह क्या करे? दिन में जो तर्कसंगत लगता, उस पर अडिग रहने के सारे संकल्प रात्रि के सघन अंधकार में विलुप्त हो जाते। विरहिणी नायिका की तरह आशाद्वीप जलाये केवल सत्यवान की प्रतीक्षा करती रहती।

आजकल सत्यवान की इच्छाशक्ति और विद्वता के आगे सावित्री नतमस्तक थी। इस सम्मोहन अवस्था में उसे सत्यवान का एक छोटा सा पत्र प्राप्त हुआ कि वह शीघ्र ही सरकारी काम से गुंटूर आ रहा है। इस नये समाचार को पाते ही सावित्री पुलकित हो उठी, किंतु यथार्थ के धरातल पर आते ही उसका मन अनेक शंकाओं से भयभीत हो उठा। सत्यवान की बलिष्ठ भुजाओं में आ जाने के बाद उसकी तर्कशक्ति पंगु हो जाती है, वह अपने को दृढ़संकल्प कर सकने में असमर्थ रही है। मन-प्राण से पति अंगीकार करके भी वह सत्यवान की धर्मपत्नी उमा का अधिकार नहीं लेना चाहती। सत्यवान को कैसे समझाये कि वह जो कुछ कर रहा है, वह अनैतिक है? भावनाओं से ऊंचा कर्तव्य होता है। माना, सत्यवान कर्तव्य से ऊंचा विश्वास को मान कर उसे पत्नी से भी ऊंचा स्थान देने के लिए तत्पर है किंतु क्या भविष्य में वे दोनों इस विश्वास की डोर को थामे

वास्तविकता का सामना कर पायेंगे? वह सरकारी नौकरी के उच्चपद पर आसीन है, सरकारी नियम, सामाजिक मान-मर्यादा सबको ध्यान में रखते हुए वह उसका हाथ कदापि थाम न पायेगा। अकेले में प्रेमालाप करना, भावना में बह जाना और संवेग में अपना संयम तोड़ देना सत्यवान के लिए सहज क्रिया है, परंतु सावित्री जैसी सुचरित्र नारी के लिए यह सहज नहीं है कि केवल कामुक वासना का शिकार हो कर वह उसका सहारा बने और अपने को सत्यवान से दूर रखने के लिए उसने एक प्रण ले लेने का मन ही मन विचार कर लिया। इसके बाद वह सहज रूप से गुंटूर के कार्यों में लग गयी।

इसी बीच उसे सत्यवान का एक तार मिला कि वह मिलने आ रहा है और सावित्री अपने साथ 2,000 रुपये भी लेती आये। इस तार के समाचार से सावित्री अवाक् रह गयी। सत्यवान को रुपयों की क्या ज़रूरत है? गुंटूर में वह सरकारी काम से आ रहा है, वहां तो उसका सारा ख़र्चा सरकार वहन करेगी, फिर क्यों और कैसी ज़रूरत आ पड़ी? सावित्री के स्वयं के पास भी इतने अधिक रुपये बैंक के खाते में न थे, वह कुछ दिन पूर्व ही दक्षिण आयी थी, ट्रांसफर एवं रेलवे में काफ़ी ख़र्च करना पड़ा था, ऐसे में मां को भी पूरा पैसा न भेज पायी थी, अब सत्यवान की इस मांग को कैसे पूरा करे? इस आर्थिक संकट का एक ही विकल्प था कि वह किसी से उधार मांगे, जो उसकी मान-मर्यादा के विपरीत था। उसकी मां की सीख थी कि कभी भी किसी दूसरे के सामने अपना हाथ न फैलाओ, रूखा-सूखा अपनी कमाई का खाओ। उतनी ही चादर फैलाओ जितने में अपने आपको समा पाओ। सत्यवान के सामने यह सब कहने की उसमें सामर्थ्य न थी, क्योंकि उसे पता था कि यह तर्क उसके समक्ष रखने में केवल उसका मज़ाक़ ही बनेगा। उसके अनुसार, उसकी मां की शिक्षा 10वीं सदी की है, जबकि वे 21वीं सदी में रहने जा रहे हैं, इन घिसी-पिटी बातों में उलझने से क्या फायदा? मान्यताओं में भिन्नता तथा मनःस्थिति अंदर तक हिली होने के कारण सावित्री भय एवं पश्चात्ताप से ग्रसित थी, ऐसे में उसे उबरने के लिए अपने पुराने संस्कारों से अत्यधिक लगाव होना स्वाभाविक था।

बचपन से मां को अत्यंत दयनीय हो कर नैतिकता की असिधार पर चलते हुए देखा था। उसकी मां तो 'आंचल में दूध और आंखों में पानी' की साक्षात् मूर्ति थीं। उच्च शिक्षा प्राप्त हो जाने मात्र से मनुष्य के चरित्र निर्माण की आधारशिला बदल नहीं जाती। वह अपनी मां को ही केवल अपना परम हितैषी समझती आयी है, उसे हटा कर वह सत्यवान को अपना हितैषी मानने के लिए बाध्य की गयी थी। उसका यह चुनाव अपना चुनाव न था, अतएव उसके पैर दो क़दम आगे की ओर अवश्य तेज़ी से बढ़ते और फिर तुरंत दो क़दम पीछे हट जाते। वह तो जहां खड़ी होना चाहती वहां भी खड़ी हो सकने में असमर्थ थी, किंतु एक विश्वास का सूत्र था जिससे बंधी सावित्री तुरंत गुंटूर स्टेशन की ओर बढ़ गयी।

रात्रि के सघन अंधकार में गाड़ी गुंटूर स्टेशन पहुंची। ट्रेन से उतरते ही प्लेटफ़ार्म

पर चारों ओर आंखें फैला फैला कर सत्यवान को अपनी प्रतीक्षा में खड़ा न पा कर वह अत्यंत उद्विग्न हो उठी कि इस रात्रि में अब वह कहां जायेगी? उसकी गाड़ी तो दो घंटे पहले आ जानी चाहिए थी, किस कारणवश वह यहां पहुंच नहीं पाया? आशंकाओं से मन उचाट होने लगा। वह इस घबराहट में देख भी नहीं पा सकी कि क्या सत्यवान की गाड़ी लेट हो चुकी है? इसकी सूचना उसे रेलवे पट्टिका को पढ़ कर मिल सकती थी किंतु ऐसी घबराहट की मनःस्थिति में सहज ज्ञान तो कोसों दूर भाग जाता है। वह पत्थर की मूर्ति बनी उसी प्लेटफार्म पर खड़ी रही और एक के बाद एक गाड़ियों का आना-जाना देखती रही। उसे लगा, अवश्य ही सत्यवान उसे खोजता हुआ वहां आ जायेगा। रात्रि जैसे जैसे बढ़ती जाती, प्लेटफार्म का सूनापन बढ़ता जाता। कोई भी यात्री वहां प्रतीक्षा करता हुआ दिखलायी नहीं पड़ा। एक-आध चाय वाला अवश्य उसके पास से गुज़र जाता और घूर घूर कर उसे देखने लगता। थोड़ी देर बाद एक रेलवे कर्मचारी उसके पास आ पहुंचा और उसकी पूछताछ ने उसे अत्यधिक उलझन में डाल दिया। माना उस रेलवे कर्मचारी की पूछताछ केवल उसकी सरकारी ड्यूटी थी किंतु सावित्री को लगने लगा कि वह कर्मचारी उसे परेशान करने के लिए इतने सारे प्रश्न पूछ रहा है, वह यहां कौन सी ट्रेन से आयी है, क्यों प्लेटफार्म पर रुकी, यहां किसको रिसीव करना चाह रही है, क्या पता है, वह व्यक्ति किस ट्रेन से आ रहा है? इतनी रात्रि में केवल मुंबई की ही ट्रेन यहां आ सकती है, इसलिए अब उसे यहां प्रतीक्षा नहीं करनी चाहिए, महिला प्रतीक्षालय में जा कर बैठना चाहिए। वह रेलवे कर्मचारी अधेड़ उम्र का था, इसलिए सावित्री उसके प्रश्नों की बौछारों को सहन करने के बाद केवल हां या ना के उत्तर दे कर उसे टाल सकने में समर्थ हो गयी। किंतु थोड़ी ही देर बाद वह कर्मचारी तीन-चार अन्य युवा टी.टी. के साथ प्लेटफार्म पर चहलक़दमी करता हुआ नज़र आया। इतने लोगों को अपनी ओर आते देख कर सावित्री ने अपनी सूझबूझ से उनका मंतव्य ताड़ लिया। वह अपना सामान उठा कर स्टेशन मास्टर के दफ़्तर की ओर मुड़ गयी। इस रात्रि के पहर में वहां पर केवल एक बूढ़ा चपरासी स्टूल पर औंघता हुआ नज़र आया। उसके साथ पूछताछ के बाद पता चला कि सत्यवान वाली गाड़ी अपने समयानुसार कब की आ पहुंची है, इस स्टेशन पर अब मुंबई की गाड़ी ही आयेगी, वह भी क़रीब दो बजे के आसपास। सावित्री के पास प्रतीक्षा के अतिरिक्त अन्य कोई विकल्प न था। अतएव उस बूढ़े व्यक्ति से पूछताछ करके वह महिला प्रतीक्षालय में आ कर बैठ गयी। घबराहट में वहां का वातावरण भी उसे सुरक्षा प्रदान न कर सका। प्रतीक्षालय के बीच की गोल मेज़ पर एक मोटी सी महिला औंधी लेटी थी, शायद वहां की देखभाल करने वाली आया थी। उठते ही उसने सावित्री से टिकट की पूछताछ की, क्या उसके पास फ़र्स्ट क्लास का टिकट है, क्योंकि यहां केवल फ़र्स्ट क्लास के यात्री ही प्रतीक्षा कर सकते हैं। सावित्री इस प्रश्न से कांप उठी। उसके पास प्लेटफ़ार्म का टिकट था। वह भी गुंटूर स्टेशन का। "तब तुम यहां क्यों बैठी हो, अपने घर क्यों नहीं जा रहीं?" उस आया की पूछताछ का

ढंग ऐसा पैना था कि सावित्री को लगने लगा, वह कोई अपराध कर बैठी है। यह आया उसे ऐसी-वैसी चालू लड़की समझ रही है जो कि प्रतीक्षालय में रात्रि के समय किसी को अपने चंगुल में फंसाने के लिए आती-जाती रहती है। सावित्री ने आया को यह समझा देना उचित समझा कि वह मुंबई से आने वाले किसी यात्री की प्रतीक्षा में है, कुछ देर यहां बैठ कर चली जायेगी। आया काफ़ी अनुभवी नज़रों से सावित्री को सिर से पैर तक घूरने लगी, मानो वह यह बहाने सुनने की काफ़ी आदी है। कैसी लड़कियां रात्रि के तीसरे पहर में अकेली किसी रेलवे स्टेशन आती हैं, उसे ख़ूब पता है। सावित्री को आड़े हाथों लेते हुए आया ने आदेश दिया, "आप अपने टिकट का नंबर, अपना नाम-पता आदि रजिस्टर में लिख दें, मैं तो सोने जा रही हूं। आप चाहे जितनी देर बैठ कर इंतजार करें, लेकिन किसी मर्द को यहां ला कर बातचीत न करें, यहां किसी पुरुष को लाने की सख़्त मनाही है, मेरी नौकरी का सवाल है।"

यह सुन कर सावित्री को सांप सूंघ गया। वह वहां से तुरंत भाग जाना चाहती थी किंतु प्लेटफ़ार्म के सन्नाटे में अकेले खड़े होना और रेलवे कर्मचारियों की पैनी लोलुप दृष्टि को सहन कर सकना भी संभव न था। काश, वह पत्थर की मूर्ति बन सकती! अब वह क्या करे? सत्यवान ने कैसी विपत्ति में उसे डाल दिया है? इन्हीं विचारों से जूझती सावित्री महिला प्रतीक्षालय के बाहर पड़ी एक बैंच पर आ कर एक पत्थर की मूर्ति सी बनी बैठी रही जब तक प्लेटफ़ार्म पर मुंबई से आने वाली गाड़ी की सूचना की घंटी न बजी और धड़धड़ाती हुई ट्रेन प्लेटफ़ार्म पर न आ गयी। उसने अपनी पथरायी आंखों से देखा कि सत्यवान तेज़ी से उसकी ओर लपक कर आ रहा है। वह आगे बढ़ कर उसका स्वागत करने में असमर्थ थी, मानो शरीर में कोई हलचल हो सकना असंभव हो, सारा ख़ून जम गया हो।

सत्यवान ने बढ़ कर बड़े ही प्रेम से उसका हाथ मज़बूती से पकड़ लिया, उसे झकझोरते हुए कहा, "सॉरी सवि, मुझे कुछ आवश्यक कार्य से मुंबई हो कर आना पड़ा, तुम तक सूचना भेजना संभव न था। तुमने यह बड़ी समझदारी की कि यहां रुक कर मेरी स्टेशन पर ही प्रतीक्षा की, नहीं तो मैं अपनी प्रिया को कहां ढूंढ़ पाता?" कह कर हंसते हुए सत्यवान ने उसे अपने आलिंगनपाश में लेने की कोशिश की।

किंतु सावित्री भय से कांपती हुई किसी तरह अपने आपको अलग करके सिहर उठी, "क्या सबके सामने इस तरह अपने प्रेम प्रदर्शन करने में आपको मज़ा आता है? यहां तो मेरी जान ही चली जाने वाली थी। इस रेलवे स्टेशन पर प्रतीक्षा करना कितना कठिन कार्य था, आप अनुमान भी नहीं लगा सकते।"

"इसीलिए तो मैंने आते ही तुमसे माफ़ी मांगी है। मैं भी तो कितनी, कठिनाइयों को पार करके आया हूं। तुम्हें अनुमान न होगा कि मुंबई का प्रोग्राम मुझे अपनी पत्नी उमा को शंका हो जाने के कारण बनाना पड़ा। उसे लगा कि मैं तुम्हारे पास पहुंच रहा हूं। सरकारी काम तो बहाना मात्र है। वह मुझे अपने भाई मयंक के पास, जोकि

आजकल मुंबई में कार्यरत है, पेश करने गयी थी। किसी तरह उसके भाई को मैंने भरोसा दिलाया कि मुझे सरकारी काम से शीघ्र पहुंचना है। उन्हीं की मदद से मैं वहां से छुटकारा पा कर आया हूं। ख़ैर, इन सब बातों से तुम्हें परेशान नहीं होना चाहिए, नाहक़ ही मैंने यह सब तुम्हें बतलाया कह कर सत्यवान ने बातचीत का मोड़ सहज करने के लिए पूछा, "तुम तो टाइम से आ गयी होगी, काश, मेरी गाड़ी भी उसी टाइम पर आती! मैंने प्रोग्राम ऐसा बनाया था कि हम एक दूसरे की प्रतीक्षा में समय न बरबाद करें, जितना हो सके साथ मिलजुल कर···"

बात को काटते हुए सावित्री ने कहा, "आपके लिए मौज-बहार में रहना सुलभ होगा, मेरे लिए तो इस रात्रि में कहां और कैसे सोने का अब प्रबंध हो सकेगा, असंभव है।"

"अरे, इसमें सोचने-समझने की क्या बात है? किसी अच्छे होटल में चल कर कमरा ले लेंगे।"

"यह कोई बड़ा शहर नहीं है, आसपास छोटे होटल ही मिल पायेंगे। वहां इस समय पहुंच कर दो कमरे मिलना क्या संभव हो सकेगा?"

"यह सब तुम मेरे पर छोड़ो। तुम शांत हो कर, जैसा प्रबंध करूं, उसे देखती जाओ, मुझे संभ्रांत महिला का व्यवहार ही अच्छा लगता है। तुम्हारी सुख-सुविधा का ख़याल मुझे ही करने दो, वही तुम्हें बेहद पसंद आयेगा," कहते हुए सत्यवान ने सावित्री की बांहों में अपना हाथ डाल कर गुदगुदी कर दी।

सावित्री चलते चलते एकाएक रुक गयी। इस अभद्र व्यवहार की उसने कल्पना तक न की थी।

सत्यवान ने सहज स्वर में कहा, "अरे, फिर तुम्हारी लक्ष्मणरेखा बन गयी? आज तुम्हें प्रतीक्षा करता देख कर तो ऐसा नहीं लगा था कि हम दोनों के बीच अब कोई दूरी रही है।"

"यह दूरी की बात नहीं, आपको कैसे समझाऊं कि क्यों मैं बेहद परेशान हो गयी हूं?"

"अच्छा भाई, कोई छेड़छाड़ नहीं करूंगा, चलो, होटल ढूंढ़ें," कहते हुए सत्यवान ने सारा सामान स्वयं उठा कर स्टेशन से बाहर आ कर सवारी तय की। सामान को उठा कर स्वयं रिक्शे में डाला और सावित्री को भी अपने समीप बैठा कर ऐसे चिपका लिया मानो वह भी उसकी अपनी संपत्ति हो जिसे ध्यान से अपने समीप रखने का उसे पूरा पूरा अधिकार हो। सावित्री भी बोल सकने में असमर्थ थी। वह चुपचाप सब कुछ झेलती रही। काफ़ी दौड़-भाग कर किसी तरह एक कमरा निम्नवर्ग के होटल में मिल पाया जहां दो पलंग और एक मेज़ मात्र थी। पलंग पर चादरें काफ़ी मैली थीं और पूरे कमरे में एक दुर्गंध थी जिसे सहन करने में सत्यवान को भी परेशानी होने लगी, क्योंकि वह सिगरेट, तंबाकू, मदिरा आदि का सेवन नहीं करता था। अपनी विवशता को छिपाने के प्रयास में

सत्यवान ने सावित्री से पूछा, "क्या करें, कहीं और चल कर रात बितायें? वैसे भी थोड़ी देर में सुबह हो जायेगी। अब आज की रात शायद यहीं बितानी पड़ेगी, सुबह होते ही होटल बदल लेंगे।"

सावित्री ने उत्तर नहीं दिया, वह सामान को घूर घूर कर देखने लगी।

सत्यवान ने शंकित हो कर सावित्री को अपनी ओर पलंग पर खींच लिया। "सामान सब ठीक है, क्यों पथरायी आंखों से देख रही हो? मेरी आंखों में देखो, मुझ पर विश्वास करो, मेरे होते हुए कोई तुम्हारा अहित न होगा," कह कर सत्यवान ने एक बाज़ की तरह अपनी अनुभवी मुद्रा में सावित्री के वक्षस्थल को चूमते हुए उसकी साड़ी को कमर से नीचे तक खोल कर रख दिया और अपने पैरों से सावित्री के पैरों को रगड़ते हुए अपने लिंग को सावित्री के अधरों के पास रखते हुए कानों में फुसफुसा कर कुछ कहा जिसे सुनते ही सावित्री एक बिजली के करंट की तरह अपने शरीर को विलग कर दूसरे पलंग पर आ गयी।

किसी तरह कांपते हुए अपनी समस्त चेतना को बटोर कर उसने सत्यवान को धिक्कारा, "यही सब करने के लिए मुझे यहां लाये हैं? यह सब कदापि नहीं होगा। मैं भाग कर इसी समय यहां से चली जाऊंगी।"

अपने को संयमित रखते हुए सत्यवान ने धीरे से कहा, "सवि, तुम्हें पता नहीं है, मुंबई से आते समय रेलगाड़ी में एक पति-पत्नी को एक साथ सोता देख मैं आज रात कितना अधिक तुमसे मिलने के लिए तरस गया हूं। आज मुझे···"

"क्यों जानवरों का सा व्यवहार आप मेरे साथ करने लगे हैं···?" कहते कहते सावित्री रो उठी।

"अच्छा भाई, माफ़ करो, लेकिन यह बेवक़ूफ़ी न करना कि इस होटल के कमरे से बाहर चल दो। मैंने तो तुम्हारे साथ कुछ भी नहीं किया केवल मुख मैथुन···यहां पास आ कर किस हद तक किया जा सकता है, तुम कल्पना भी नहीं कर सकतीं।"

सावित्री यह सुन कर क्रोध और ग्लानि से कांप उठी। वह तिलमिला कर केवल इतना कह सकी, "आप जानवर ही नहीं, पत्थर दिल भी हैं। इसके लिए आपको भगवान भी माफ़ नहीं कर सकता, मैं माफ़ करने वाली कौन हूं?"

यह सुन कर सत्यवान खिसिया कर करवट बदल कर सो गया किंतु बेचारी सावित्री भयभीत हुई उस अनुभव से अत्यधिक संवेगित हो गयी और एक पल भी न सो सकी। रात्रि भर केवल करवटें बदलती रही, सुबह होने की राह जोहती रही। उसे लगा कि इस होटल में उसका दम घुटा जा रहा है, किंतु इस नरक से बाहर जाने में वह असमर्थ थी, इस यातना को भोगना उसका अपना प्रारब्ध था। एकाएक उसे लघुशंका आने की उत्तेजना होने लगी किंतु डर के मारे वह सत्यवान को उठाने में असमर्थ थी। कमरे से बाहर निकल कर बाथरूम ढूंढ़ने का इतनी रात्रि में प्रश्न ही न था। अपने साहस को बटोर कर उसने कमरे के एक कोने पर बनी मोरी में बैठ कर अपनी लघुशंका को शांत

कर दिया किंतु एकाएक बदन से सफ़ेद रंग का एक स्राव बहता देख कर वह चकित हो उठी। भाग्यवश सत्यवान इस समय घोर निद्रा में था। यदि वह इस समय सफ़ेद स्राव को बहता देख लेता तो आज उसका अनर्थ हो जाता। उसकी अपनी दृढ़ प्रतिज्ञा धरी की धरी रह जाती। सावित्री ने शरीर को मन के ऊपर हावी होते हुए पहली बार देखा था। इस सहज ज्ञान के उजागर से उसकी क्रोधाग्नि थोड़ी शांत हुई। सत्यवान के अमानुषिक प्रथम मिलन के कटु अनुभव ने उसके मन-प्राण को झकझोर रखा था, किंतु सूर्यदेव की प्रथम किरण को देख कर उसके चित्त के अंधकार की कालिमा धीरे धीरे हटने लगी। वह नित्यकर्म से निवृत्त हो कर कमरे में फैले अपने सामान को बांधने लगी। सत्यवान की आंख खुली तो उसने देखा, सावित्री पूर्ण रूप से कमरे को छोड़ देने के लिए तत्पर बैठी है। उसके दृढ़ निश्चय का रूप निहार वह जल्दी जल्दी नित्यकर्म से निवृत्त हो सामान उठा कर होटल का बिल चुकता करके लंबे लंबें डग भरता हुआ चल पड़ा। सावित्री भी चुपचाप पीछे पीछे चलती रही। दोनों के लिए यह मौन असहनीय था किंतु सावित्री की चेतना जाग्रत हो गयी थी। वह सत्यवान के समक्ष अपने आपको दयनीय अबला की भांति उसकी कामुकता के आगे घुटने टेक अपनी पराजय मान कर कदापि पूर्ण समर्पण कर देने वाली नारी नहीं थी, अतएव सत्यवान का अहंकारी एवं आत्मनिष्ठ व्यक्तित्व भी इस दीप्तिशिखा का अनावरण कर आज अपने आपको बौना सा अनुभव करने लगा था।

दोनों ने होटल से बाहर आ कर ठंडी सांस ली। खुले आसमान के नीचे चलते हुए दोनों में जो भाषातीत अनुबंध हुआ, उसका यहां वर्णन करना संभव नहीं है किंतु उस मूक प्रेमालाप ने दोनों का हृदय गंगाजल से मानो धो कर रख दिया था। सत्यवान ने किसी अच्छे रेस्ट्रां में जा कर सावित्री को जलपान करवाया। उसे पता था कि सावित्री ने कल रात से कुछ भी नहीं खाया है। किंतु चाय पी लेने के बाद सावित्री वहां का ताज़ा नाश्ता करने में असमर्थ रही। सत्यवान के आग्रह करने पर उसने दो-चार ग्रास गरम गरम पोहे के खाये और तश्तरी को सत्यवान के सामने एक ओर रख दिया। सत्यवान अपनी तश्तरी का खा लेने के बाद, सावित्री की प्लेट का भी नाश्ता खुशी खुशी चट कर गया। वह अपने इस व्यवहार द्वारा सावित्री को विश्वास दिलाना चाह रहा था कि उसके और सावित्री के बीच में कोई सीमा नहीं रही है। जब सावित्री ने सहज भाव से उसे याद दिलाया कि तश्तरी में पड़ा नाश्ता उसके द्वारा झूठा हो गया है तो वह हंस कर बोला, "अरे, क्या झूठा, क्या सच्चा! जब मन साफ़ है तो सब हज़म हो जाता है। मैं तो तुम्हारे साथ खाते समय पत्थर भी हज़म कर जाता हूं।"

सावित्री यह सुन कर कुछ बोल न सकी किंतु उसकी चेतना जाग्रत अवश्य थी। वह अत्यधिक संवेगित अवस्था के चलते रात भर सो न सकी थी। नहा-धो कर भी वह स्वस्थ अनुभव नहीं कर रही थी।

दोनों रेस्ट्रां से चुपचाप निकल कर शहर की सड़कों पर घूमते रहे। धीरे धीरे सूर्य

नहीं जानता, न हम दोनों किसी को जानते हैं। इसी में हम दोनों जोड़े ऐसे घूम सकते हैं जैसे दो हंसों के जोड़े हैं," कह कर मस्ती में सत्यवान ने सावित्री का हाथ अपने हाथों में ले लिया।

"किंतु यहां भी आम जगह होने के कारण आपको सीमा में रहना पड़ेगा," कह कर सावित्री ने सत्यवान के हाथ से अपने हाथ को अलग कर लिया।

सत्यवान ने प्रतिवाद नहीं किया। वह किसी भी तरह सावित्री को नाराज़ नहीं करना चाहता था। विवाहित होने के कारण कुछ शारीरिक क्रियाएं करना उसकी सहज क्रिया सी बन गयी थी, जबकि सावित्री पूर्ण रूप से ऐसे शारीरिक संकेतों से अनभिज्ञ थी और उसे रात्रि के बाद से ऐसे संकेतों से ऊब सी होने लगी थी। वह न चाह कर भी सत्यवान की शारीरिक पहल को अस्वीकार कर देने का मन ही मन संकल्प कर बैठी थी। ऐसे भावों के आदान-प्रदान में कटुता का आ जाना स्वाभाविक था, अतः क्लांत मन से सावित्री सत्यवान को जितना अधिक झकझोर सकती थी, पूरे दिन झकझोरती रही और स्वयं को काटती गयी, जैसे बट लग जाने पर केवल सुतली कटती जाती है। सत्यवान ने धैर्यता से इन प्रहारों का सामना करना कहां से सीखा, वही जाने, किंतु वह एक उन्नत शिलाखंड सा सावित्री के उद्विग्न मन से निकलते प्रपात को अपने ऊपर गिरा कर कण कण बन बिखर जाने देता रहा। दोनों ने मिल कर गुंटूर के समीप एक अत्यंत मनोरम तीर्थस्थल की यात्रा की। बस में दोनों समीप बैठे किंतु दूरी सतत बनी रही। तीर्थस्थल पहुंच कर भी सावित्री का मौन भंग न हुआ तो सत्यवान ने चतुराई से सावित्री का ध्यान आकर्षित करने के लिए कहा, "देखो सावित्री, यहां क्या लिखा हुआ है, शरीर रथ है, इंद्रियां घोड़े हैं, इंद्रियों का स्वामी मन लगाम है। लेकिन मैं यहां लिख देना चाहता हूं कि मेरी प्रिया के पास मेरे मन की लगाम है, वह जहां ले जाती है, मैं उसके साथ साथ चल देता हूं।"

सावित्री प्रशंसा करने में कृपण नहीं थी, "हां, यह हुई कोई बात! कैसी सुंदरता से आपने अपनी बात कह दी, मानो आप कविहृदय भी हैं, मैं तो आपको कुशल वैज्ञानिक ही समझती आयी हूं।"

"ओह! मैं क्या हूं, मैं भी स्वयं नहीं जानता। जब तुम्हारा साथ मिल जाता है तो कवि की तरह गुनगुनाने में मुझे आनंद आने लगता है। मुझे तो बच्चन की मधुशाला याद आ रही है, 'इस पार प्रिये तुम हो, मधु है, उस पार न जाने क्या होगा'।"

इस प्रेम संवाद से मन का बोझ उड़ गया था। सावित्री में कुछ अहम भाव नहीं था। उसे अपनी कमी स्वीकार कर लेने में लज्जा नहीं लगती थी, यही सत्यवान की दृष्टि में सावित्री का अपना गुण था जिसके आगे वह नतमस्तक हो गया था। उसे अपनी पत्नी उमा का गर्वीलापन असहनीय लगता था। सावित्री को कुछ बोलने के लिए उत्साहित करते हुए सत्यवान ने कहा, "यहां जो लिखा है, उसे ज़रा अंग्रेज़ी में कहिए। हिंदी से ज़्यादा अंग्रेज़ी में बात समझ में ज़्यादा जो आने लगी है, यहां तो सब कुछ तेलुगु में लिखा

गया है या संस्कृत में, हिंदी में कहीं कहीं ही उसका अनुवाद है, लेकिन अंग्रेज़ी में लिखा हुआ कुछ भी नहीं है।''

सावित्री ने आगे बढ़ कर कुछ श्लोकों को पढ़ा और ध्यानपूर्वक उनका अध्ययन करने के बाद बतलाया, ''यहां मन के विषय में उल्लेख किया गया है। इसका सीधा-सादा अर्थ यह है कि जिस मन में संतोष है, उसे कष्ट किसी तरह दुख नहीं दे पाते हैं, जैसे पैरों पर जूतों का आवरण होने से कांटे-कंकड़ आदि नहीं गड़ते हैं। मन के महत्त्व पर यहां काफ़ी प्रकाश डाला गया है। यदि आप कहें तो उस द्वार पर लिखे अन्य श्लोकों को पढ़ कर आऊं और इनका भी सरल भाषा में अर्थ बतलाऊं?''

सत्यवान ने समापन सा करते हुए कहा, ''तो फिर यही निष्कर्ष रहा कि मन अत्यंत शक्तिशाली साधन है और मेरी समझ में चंचल भी। उसे वश में करना वायु को वश में करने के समान है। मेरे मन की लगाम आपके पास है, आपके नियंत्रण में सतत अभ्यास करते करते अवश्य मेरे चंचल मन को वश में करना संभव है।''

सावित्री ने बात समाप्त करने नहीं दी, ''लेकिन यह अभ्यास और नियंत्रण मैं नहीं कर सकती, वह तो आपकी बुद्धि ही करेगी। यदि आप स्वयं अपनी बुद्धि से, विवेक से काम नहीं लेंगे, तब मन को वश में करना आसान नहीं है।''

सत्यवान ने उत्साहित होते हुए प्रतिवाद किया, ''मेरे पास बुद्धि और विवेक दोनों की कमी है। जो मंदबुद्धि होते हैं, वे मन पर नियंत्रण भी कम रख पाते हैं। बुद्धि तो आपके पास है। संवेगों में बह जाने के बाद भी आपकी बुद्धि काम करती रहती है। मेरे मन का संबंध भावनाओं से अधिक होता है। मेरा मन भावनाओं का स्वामी है, लेकिन आपकी बुद्धि का सतत नियंत्रण उन पर अंकुश अवश्य लगा सकता है। सवि, तुम मुझे सुधार सकती हो। बच्चन ने ठीक ही लिखा है, 'इसीलिए खड़ा रहा कि तुम मुझे पुकार लो'।''

''पुकार कर दुलार लो, दुलार कर सुधार लो।'' पंक्ति को इस तरह पूरा करते हुए सावित्री खिलखिला कर हंस पड़ी।

''ओह, तुम इतनी चटपटी बातें भी करना जानती हो! मैं तो समझ बैठा था कि केवल तुम्हें चटपटा खाना बनाना ही आता होगा।''

इस वाक्य को सुनते ही सावित्री सहज हो गयी, क्योंकि इस प्रशंसा को पा कर उसे काफ़ी आराम मिला। किंतु सत्यवान के साथ आनंदविभोर हो उठने से वह दोषमुक्त हो कर भी क्षोभमुक्त न हो सकी, क्योंकि यह उसके चरित्र निर्माण की नींव को सतत हिला रहा था। उसके मन को सहज करने के लिए सत्यवान ने एक प्रयत्न और किया, ''किसी ने हमारी इस मिलन बेला पर नज़र लगा दी है। पहले उमा ने मुझे डांट-फटकार कर मुंबई जाने के लिए बाध्य कर दिया, और अब उमा यहां हम दोनों के बीच नहीं है, फिर भी तुम दुखी हो रही हो। तुम्हारे दर्शनशास्त्र को मैं समझ नहीं सकता। हम दोनों उमा के स्वामित्व से मुक्त हैं। मेरे ऊपर तो उसके होने, न होने से असर नहीं होता। मेरी समझ

में मैं जो कुछ भी करता हूं, ठीक करता हूं। हम बहुत दूर नहीं आये हैं। तुम अगर हृदय से चाहती हो तो मैं तुमसे भी कोसों दूर जा सकता हूं। चलो, हम दोनों वापस लौट चलें।''

''ऐसी बातें करना आपके लिए सरल होगा। अभी भी पीछे लौट चलना आपके लिए संभव है। मेरी पूजा की थाली आपके सामने गिर कर बिखर गयी है। वह फूल आप पर चढ़ गये हैं। चाहे तो आप मुझे आशीष दें, चाहे अभिशाप। जीवन भर आपकी बनी रहने के अतिरिक्त अब दूसरा विकल्प नहीं है।''

''मन होता है, तुम्हें आगे बढ़ कर गले लगा लूं किंतु डरता हूं कहीं तुम नाराज़ न हो उठो,'' सत्यवान ने अतिभावुक हो कर कह दिया किंतु उसे पता था कि उसका प्रस्ताव स्वीकार नहीं किया जा सकता था। संबंधों में प्रगाढ़ता लाने के लिए सावित्री के लिए सामाजिक मान्यताओं का पालन करने के लिए उच्च्य स्थान था जबकि सत्यवान के लिए उन्हें तोड़ कर रख देने में शायद अत्यधिक उत्साह भरा गर्वीलापन, किंतु दोनों की प्रकृतियां भिन्न भिन्न होते हुए भी दोनों में सामंजस्य स्थापित हो गया, तथापि चित्त में उमा का सतत ध्यान सावित्री को एकाएक अकेलेपन की अनुभूति से भर देता। उसका जो कुछ भी था अब वह सत्यवान का था। सत्यवान का पूरा पूरा साथ भी उसे मिला हुआ था, लेकिन अकेलापन सावित्री का पीछा नहीं छोड़ता। जब कभी सत्यवान कोमल भावनाओं के प्रदर्शन द्वारा उसके मर्मस्थल छू देता उतनी ही घनीभूत पीड़ा उसकी अंतर्मन की गहराई में हूक बन उठ जाती, मन कचोट कर पूछ बैठता, क्या वह सत्यवान का सुझाव मान कर गंधर्व-विवाह कर ले? यह प्रश्न आते ही मन ही मन सावित्री को लगने लगता कि वह अकेली खड़ी है, आसपास उसके कोई नहीं, उसकी परम हितैषी मां भी नहीं है, सत्यवान तक नज़र नहीं आता और दूर दूर तक दिशाएं भी नहीं दिखलायी देतीं, मानो वह अनंत की खोज में जा रही हो। प्रश्नों की बौछारों से घबरा कर सावित्री ने सत्यवान का हाथ थाम लिया। पुलकित हो कर सत्यवान ने उस मधुर संवेदन की पुष्टि सावित्री को एकाएक चुंबन देने की धृष्टता में परिवर्तित कर दी। सावित्री सर्पिणी की भांति उत्तेजित हो प्रहार कर बैठी, ''आपको कोई लाज-शर्म नहीं है? मुझे बदनाभ कर देने में आपको क्या मिलेगा? आपको मेरी क़सम, मेरे शरीर को आप कदापि नहीं छू सकते। जब तक आप मेरे साथ सप्तपदी नहीं ले लेते, मैं कदापि सहन नहीं कर सकती।''

सत्यवान इस प्रहार को चुपचाप सहन कर सकने की मनःस्थिति में आज था, अतएव हंसते हुए उसने कहा, ''जितना मुझे रोकोगी, उतना ही अधिक मैं तुम्हारे शरीर पर अपना एकाधिकार करने के लिए उतावला हो उठूंगा। मुझे समाज क्या, तुम भी अब रोक नहीं सकोगी,'' कह कर अतिवेग से सत्यवान सावित्री को ठेलता हुआ एकांत झाड़ी में ले गया। वहां उसने जी भर कर सावित्री को अपनी गरम गरम सांसों भरे चुंबनों से बेसुध सा कर दिया। इस तरह समर्पण के लिए छीना-झपटी में सत्यवान की आंखों पर

लगा चश्मा टूट गया। चश्मे का शीशा चकनाचूर हो जाता यदि सावित्री ने उसे अपनी सूझबूझ से हथेली में थाम न लिया होता। सत्यवान चश्मे के बिना कुछ पढ़-लिख नहीं सकता था। उसका चश्मे का नंबर हाई स्कूल से ही सतत बढ़ता गया था। उच्च शिक्षा प्राप्त करते करते वह अंधा हो जाता यदि समय समय पर उसकी आंखों का निरीक्षण न होता रहता। सावित्री के हाथ में चश्मे की टूटी कमानी और सुरक्षित शीशे देख सत्यवान ने धन्यवाद प्रकट किया, "सवि, देखो, तुमने कितनी सतर्कता से मुझे अंधा होने से बचा लिया। यदि यह शीशा टूट जाता तो इसका नंबर इस अनजाने शहर में मिलना असंभव था। फिर आंखों के बारे में मैं अत्यधिक सावधानी बरतता हूं। मैं तुम्हारे प्रति हृदय से अभारी हूं। मैं वचन देता हूं कि तुम्हारी आज्ञा के बिना आज से तुम्हारी अंगुली भी नहीं छुऊंगा। चलो, यहां से अब लौट चलते हैं, रेलगाड़ी के बारे में पता करना है। तुम्हें घर सुरक्षित पहुंचा कर मैं तुरंत प्लेन द्वारा लौट जाऊंगा।"

सावित्री चश्मा टूट जाने से एकाएक सत्यवान में आये इस अभूतपूर्व परिवर्तन से अवाक् थी। नारी जाति की सहज भोलेपन एवं जिज्ञासा में पूछ बैठी, "अरे, आपके चश्मे की कमानी ही टूटी है, आप तो इतना अधिक सहम गये हैं जैसे आपका कोई शरीर का भाग टूट गया हो! क्या इतनी दूर आ कर देवस्थान के दर्शन किये बिना हम लौट पड़ेंगे?"

"नहीं, मुझे मंदिर में देवता के दर्शन करने में कोई रुचि नहीं है। वैसे भी मैं तुम्हारी तरह पूजा-पाठ में विश्वास नहीं करता। अपने काम में लगन और ईमानदारी को मैं असली पूजा समझता हूं।"

"आपसे प्रतिवाद करने की धृष्टता मैं कैसे कर सकती हूं? किंतु देवस्थान के इतने समीप आ कर दर्शन का लाभ उठाये बिना क्या उस देव की अवहेलना न होगी? हम यहां तक फिर आये क्यों थे?"

"केवल एकांत स्थान की खोज में। इस शहर की सड़कों पर आवारागर्दी करने से तो अच्छा हुआ कि हम यहां आये। काश, यह चश्मा टूट न जाता! मुझे इसके टूट जाने से बेहद परेशानी हो रही है। लाओ, मैं अपने रूमाल में इसे अच्छी तरह बांध कर सुरक्षित रख लूं, शहर जाते ही मुझे एक नया फ्रेम लेना पड़ेगा।"

"शायद कमानी फिर से लग जाये, अच्छी सी दुकान पर जा कर बात करनी होगी, अभी से अपना मन छोटा न कीजिए," कह कर सावित्री ने धीरज बंधाया।

"क्या मैं भोला बच्चा हूं जिसे तुम इस भुलावे में रखने की कोशिश कर रही हो कि यह कमानी टूट कर फिर जुड़ जायेगी? टूटी चीज़ों की जोड़-तोड़ करना व्यर्थ है। जो टूट गया उसे फेंक देना ही समझदारी है।"

"आप मुझे ग़लत समझ रहे हैं, मेरा अभिप्राय उचित दुकान से परामर्श लेने के बाद किसी निर्णय पर आने के लिए था। चलिए, उस दुकान की खोज की जाये जहां हमें..."

"मुझे कहां क्या करना है, इसके लिए तुम्हें चिंता करने की कोई आवश्यकता नहीं

है।" बीच में टोक कर सत्यवान ने अपने अहं की पुष्टि के लिए सावित्री को फिर से मर्माहत किया, "तुम कितने ठंडे ख़ून की बनी हो, तुम्हारे शरीर में गरमी लाने के लिए मेरी भरसक कोशिश में यह चश्मा टूट कर रह गया है, शायद मैं भी टूट कर रह जाऊंगा।"

"प्लीज़, इस तरह से मुझे सताने में आपको क्या मिलता है?" सावित्री ने स्थिति को सहज करने की कोशिश में कहा।

"ठीक क्या है, यह मैं समझ सकता हूं लेकिन अपने आपको तुम्हें सामने बैठी देख रोक नहीं पाता, जबकि इसके विपरीत मैं उमा, जो कि मेरी पत्नी है, के सान्निध्य में मेरी सेक्स की भूख मर सी जाती है। आशा है, तुम इन बातों को समझ सकोगी, एक कुशल वैज्ञानिक होने के नाते।"

इस विवाद को ठंडा करते हुए सावित्री ने कहा, "आप चल कर पता करिए कि कौन सी बस हमें शीघ्र स्टेशन तक पहुंचा देगी। वहां पूछताछ करने के बाद हम स्टेशन के निकट चश्मे की दुकान में जा कर इसे दिखला कर निर्णय लेंगे कि आज आपकी कौन सी अमूल्य वस्तु टूट गयी है जो अब कभी ठीक नहीं हो सकती।"

सत्यवान इस तर्क को सुन कर झेंप उठा, "अरे, मैं भूल गया था कि तुम मेरे साथ हो, ऐसे में मेरी क्या अमूल्य वस्तु टूट सकती है?" दोनों सहर्ष स्टेशन की ओर जाती हुई बस पकड़ कर स्टेशन पहुंच गये और पूछताछ करने के बाद एक अच्छे रेस्त्रां में बैठ कर एक दूसरे का हाथ थामे पुलकित हो भविष्य में पुनः मिलन की योजनाएं बनाने लगे। सत्यवान ने सावित्री को बाध्य किया कि अब वह उसकी प्रिया ही नहीं है, पत्नी, प्रेयसी, जीवनसंगिनी, मित्र, जो भी रिश्ते मिलाये जा सकते हैं, वह सब कुछ है। ऐसे मधुर संबंध को तोड़ कर यदि वह स्वतंत्र होना चाहे तो हो सकती है, वह चाहे तो किसी अन्य पुरुष से विवाह कर ले या चाहे तो सत्यवान के चचेरे भाई से, जो अभी तक अविवाहित है, विवाह कर सकती है। अपने कुटुंब की संपत्ति बना कर उसे हृदय से ख़ुशी होगी।

सावित्री अपने भविष्य के प्रति ऐसी अटपटी बातें सुन कर रो पड़ी, "आपकी मेरे प्रति प्रतिबद्धता केवल कुटुंब की संपत्ति मात्र बनाना है? उससे मुझे मिला कर आप गौरवान्वित हो उठेंगे? मेरा अपना मन क्या है? मैंने अपने आपको तुम्हें सौंपा है, आपके कुटुंब के अन्य किसी और को नहीं।"

"मेरा यह सुझाव केवल तुम्हें समाज में उचित स्थान प्रदान करने के लिए था। विवाह होने के बाद तुम्हें समाज में सुरक्षा मिलेगी, मुझे भी मेरे परिवार की हो जाने से तुमसे मिलने-जुलने की स्वतंत्रता होगी, उमा भी इस तरह शंकित नहीं रहेगी।"

"मैं स्वप्न में भी कल्पना नहीं कर सकती कि आपसे प्रेम करूं और अपना शरीर किसी और को सौंपू। ऐसी शिक्षा आपको किसने दी है? आज की नारी इस तरह के समझौतों में सुरक्षित कदापि नहीं हो सकती।"

"अरे भाई, द्रौपदी ने पांच पतियों को निभाया था, मैं तो···"

"तब भी वह सती कहलायी, लेकिन समाज में, राज सभा में उसकी क्या दुर्गति हुई, कितना अपमान उसे सहन करना पड़ा, उस अपमान का बदला कारण बना महाभारत के युद्ध का।"

"हम दोनों के बीच उस अपमान की कल्पना मात्र से एक महायुद्ध छिड़ सकता है, मैं उसके लिए तनिक भी तैयार नहीं हूं। यदि तुम जीवन भर मेरी प्रतीक्षा कर सकती हो तो अवश्य करती रहो, लेकिन मैं अपनी पत्नी को तिलतिल जला कर तुमसे विवाह करने के पक्ष में नहीं हूं। ऐसा कुछ यद्यपि मेरे कुटुंब के बहुत नज़दीकी रिश्तेदार ने किया है ऐसे कार्य को मैं अवश्य निंदनीय समझता हूं और आशा करता हूं कि तुम भी मुझे ऐसा कुछ करने के लिए प्रेरित नहीं करोगी। वैसे पाप क्या है, पुण्य क्या है, मुझे नहीं मालूम करना, मैं तो भावनाओं में बह कर निर्णय बाद में लेने का आदी हूं, इसी छोटी सी भूल से मैं तुम्हें सता देता हूं, मैं तुम्हारा क्षमाप्रार्थी हूं, जीवनपर्यंत तक," कह कर सत्यवान ने बड़ी कोमलता से सावित्री को अपने गले लगा कर उसके माथे पर अपना चुंबन अंकित कर दिया। "आज से यहां मेरी बिंदिया लग गयी है, थोड़ा सा सिंदूर होता तो मैं तुम्हारी मांग को भर देता। चलो, मुझे तुमसे इतना कुछ इतनी जल्दी, इतना अधिक मिल जायेगा, मैंने कभी सोचा भी न था। हम दोनों अपने जीवन के एक बहुत महत्त्वपूर्ण मोड़ पर आ पहुंचे हैं। आशा है, सवि, तुम्हें यह सब याद रहेगा। क्या तुम जन्म-जन्मांतर से बंधे रिश्तों में विश्वास करती हो? मुझे लगता है, यदि हम इस जन्म में न मिल सके तो अगले जन्म में अवश्य पति-पत्नी हो कर मिलेंगे।"

"लेकिन आप क्यों इसी जन्म में पति रूप में अंगीकार होने से बच रहे हैं? इस सत्य को आप मानें या न मानें, मुझे यह अपना प्रारब्ध भोग ही लगता है, भावी प्रवंचनावश या किसी के श्रापवश। ऐसी अनेक संभावनाओं से मेरा चित्त ग्रस्त रहता है, इस क्षोभ की आत्मग्लानि को केवल मेरा ईश्वर ही जानता है।"

"मुझे भी आभास है कि मैंने तुम्हें बहुत सताया है, थोड़ा सा और सताने की आज्ञा दो तो······" कह कर एक शैतान लड़के की तरह सत्यवान ने सावित्री की चोटी पकड़ कर अपनी ओर घसीट कर उसका मुख अपनी ओर लाने की कोशिश की लेकिन सावित्री ने अपने मुंह को तीव्रता से छुड़ा कर सत्यवान का ध्यान केबिन में घुसते हुए बेयरे की ओर कर दिया। बेयरे को आता देख सत्यवान सावधान हो गया और उसका पूरा ध्यान बेयरे द्वारा लाये हुए बिल को पढ़ने में लग गया। सत्यवान की चतुर आंखों ने बेयरे के बिल की त्रुटि को ताड़ लिया, वह फ़ौरन दनदनाता हुआ मैनेजर के पास पहुंच गया। सावित्री उसके इस व्यवहार से आश्चर्यचकित हो उठी। सत्यवान ने मैनेजर से इस त्रुटि की कड़े शब्दों में निंदा करने के बाद बिल चुकता किया और सावित्री और साथ में रखे सामान की अवहेलना कर, बड़े बड़े डग भरता हुआ रेस्ट्रां से बाहर आ गया। सावित्री बेचारी सारा सामान उठा कर रेस्ट्रां से बाहर आयी तो वहां सत्यवान को प्रतीक्षा करते हुए पाया। सत्यवान ने आगे बढ़ कर सामान ले लिया और अपने क्रोध को दबाते हुए

कहा, "इन बड़े बड़े रेस्त्रां में ऐसी त्रुटि जानबूझ कर की जाती है। उन्हें पता है कि एकांत की खोज में आये हुए प्रेमी जोड़े खाने-पीने में रुचि थोड़ा रखते हैं, उन पर जितना चाहे भर दो, बिल चुपचाप चुकता करके चल देंगे, ऊपर से बैरे को टिप अच्छा सा देंगे। मैं इनके झांसों में नहीं आने वाला। मुझे ऐसे लोगों से हैंडल करने में ख़ूब मज़ा आता है।"

सावित्री इस तमाशे से अंदर ही अंदर शर्मिंदगी महसूस कर रही थी, लेकिन सत्यवान से प्रतिवाद करने में असमर्थ थी। उसे पता था, चुपचाप रहने में ही भलाई है।

रेलवे स्टेशन आ कर सत्यवान ने यात्रा का प्रबंध सावित्री से बिना पूछे कर दिया। सावित्री उसके पीछे वैसे ही चल रही थी जैसे भारतीय गांव में नयी दुलहन विदा के बाद पति का अनुसरण करती हुई दूरी बना कर चलती है। ट्रेन में बैठ कर अपना सामान सुरक्षित रखने के बाद ही सत्यवान ने चुप्पी तोड़ी, "मैंने तुम्हारा और अपना टिकट हैदराबाद का लिया है, कुछ देर और साथ रहने का लालच मैं रोक न पाया। वैसे भी कल तुम अपने काम पर न जा सकोगी, पहुंचते पहुंचते दोपहर हो जायेगी। हैदराबाद से रात की गाड़ी तुम्हें परसों सुबह सुबह पहुंचा देगी, मुझे भी प्लेन लेने में हैदराबाद से आसानी रहेगी, मुझे कई तीव्रगामी ट्रेन भी मिलने की सुविधा रहेगी।"

"किंतु आप तो···" कहते कहते सावित्री सहम कर रुक गयी।

-"हां, मैने तुम्हें घर तक सुरक्षित पहुंचा देने का वायदा किया था, किंतु वहां जा कर यदि मुझे जान पहचान वाला कोई मिल गया तो···"

"क्या आप भी सामाजिक रीति-रिवाज़ों की···"

सत्यवान ने अपनी नयी दलील दे कर सावित्री को निर्वाक् कर दिया, "जानबूझ कर ऐसी बेवक़ूफ़ी क्यों की जाये? हम दोनों को एक साथ देख कर लोगों को कहने-सुनने का मसाला मिलता है, तुम्हें भी ऐसी मूर्खता नहीं करनी चाहिए। आशा है, तुमने भी अपने मित्रों में इस बात की चर्चा नहीं की होगी और भविष्य में भी किसी से न करना, अपनी परम प्रिय मां से भी नहीं।"

"अभी तक तो मैं स्वयं को इस सत्य से पूरी तरह सहमत करने में असमर्थ रही हूं, मित्रों में इसकी चर्चा करने का प्रश्न ही नहीं उठता। रही मां की बात, तो उन्हें यह सब जान कर बेहद दुख होगा, मैं उनका हृदय कदापि नहीं दुखा सकती," दृढ़ता से सावित्री ने सत्यवान को अपने विचारों से अवगत कराया।

"कुछ दिनों तक ऐसे ही चलने दो, देखो समय किस ओर करवट बदलता है! हम कब और किसे बतलाएं, यह सब मेरे ऊपर छोड़ दो? अभी कुछ दिनों तक हम दोनों को एक दूसरे से काफ़ी दूर दूर रहना चाहिए। मेरी पत्नी उमा के मन में काफ़ी हलचल मच गयी है। उसे शक हो गया है, इसीलिए तुम भी भविष्य में मेरे साथ पत्र व्यवहार आदि न करना, मैं ही जब ठीक समझूंगा, तब करूंगा।" सत्यवान को लगने लगा कि उसके चारों ओर बैठे लोगों के कान उन दोनों के वार्तालाप को सुनने का प्रयत्न कर रहे हैं जो कि असंभव न था। गाड़ी अपनी पूरी रफ़्तार में थी। उसकी गड़गड़ाहट में इन दो जनों

के बीच होता हुआ संवाद समझ सकना तब ही संभव हो सकता था जब उसका प्रसंग पता हो। फिर भी सत्यवान ने सावित्री को बाथरूम के पास खड़े हो कर बातचीत करने का आग्रह किया। वहां एकांत मिल सकता था। चलती गाड़ी की तेज़ रफ़्तार में बाथरूम के पास आने वाले इक्के-दुक्के व्यक्ति ही थे। इस एकांत को पा कर सत्यवान ने सावित्री को अपने शरीर से चिपका कर रखा। दोनों मौन एक दूसरे को टकटकी लगाये देखते रहे। गाड़ी की तेज़ रफ़्तार की तरह दोनों के हृदय की धड़कनें बढ़ती रहीं। कुछ देर बाद सत्यवान को गरमी लगने लगी। उसने चलती गाड़ी से बाहर झांक कर खुली हवा में सांस लेने के लिए दरवाज़ा खोल दिया। ठंडी हवा का झोंका दोनों को झकझोरने लगा, सावित्री के बाल उड़ उड़ कर माथे पर आने लगे, सत्यवान उन्हें बड़े प्यार से ऊपर कर देता और फुसफुसा कर कुछ कहता जो सावित्री सुन सकने में असमर्थ थी। उसका ध्यान सत्यवान से हट कर कहीं और चला गया था। उसे तो विरह वेदना सताने लगी थी। उसे पता था कि हैदराबाद आते ही यह मधुर मिलन एक स्वप्न बन कर रह जायेगा। सत्यवान के लिए प्रेम केवल एक संवेगों से भरा हवा का झोंका है जो उस पल तक के लिए पुलकायमान कर देता है। किंतु सावित्री के लिए प्रेम उसकी आराधना है, निरंतर मन से जुड़ी हुई एक पुकार है, जो सतत उसके मन-प्राण पर छायी रहती है, इस सत्य को दिवास्वप्न कह कर वह कैसे अपने दफ्तर के काम को कर पायेगी?

सत्यवान को भी आभास हो गया कि सावित्री का चित्त खिन्न है। सहज मृदुलता से भरे शब्दों में उसने सावित्री को झकझोरते हुए कहा, "सवि, अभी हम दोनों पास पास खड़े हैं, इस यथार्थ में जीने का मज़ा लो। हमेशा वर्तमान में जीना सीखो। यदि वर्तमान अपना है, तो हमारे लिए भविष्य भी उज्ज्वल और सुखदायी होगा। मुझ पर विश्वास रखो, मैं तो कर्तव्य से भी ऊंचा विश्वास को मानता हूं। यदि तुम्हारा मेरे ऊपर अडिग विश्वास रहेगा तो संसार की कोई शक्ति हमें अलग नहीं होने देगी। इस बात को स्वीकार कर चलो कि प्रेम किया नहीं जाता, प्रेम हो जाता है।"

"मन ही नहीं मानता, लाख समझाने पर भी भविष्य की अनेक दुश्चिंताओं से भरा रहता है," सावित्री ने अपनी असमर्थता प्रकट की।

"मैं मज़बूती से तुम्हारा हाथ थामे हुए हूं," कह कर सत्यवान ने अपनी मुट्ठी में सावित्री का कोमल हाथ बांध लिया।

सावित्री ने अपने हाथ को उस बलवती मुट्ठी से अलग करते हुए कहा, "आपकी मुट्ठी से अपना हाथ जिस सहजता से छुड़ा सकती हूं, काश, मैं अपने आपको भी छुड़ा पाती!"

"फिर वही नादानी की बातें! तुम मेरे साथ दो क़दम आगे बढ़ती हो और दो क़दम पीछे कर लेती हो, मेरे सामने यह हाल है तो पीछे जाने क्या करोगी? प्रतिज्ञा करो कि तुम अपने शरीर को मेरी संपत्ति मान कर उसकी अच्छी तरह से देखभाल करोगी। भविष्य में जब कभी हम दोनों मिलें, तुम मुझे स्वस्थ, सुंदर और इससे भी अधिक मोहिनी

लगोगी। माना तुम कोई सुंदरी या अप्सरा नहीं हो, सवि, इस बात से चिढ़ न जाना क्योंकि मैं स्वयं सोच कर चकित हूं, मैं तुम पर क्यों लट्टू हो गया हूं।" सत्यवान मानो ये बातें स्वयं से कर रहा था, सावित्री की प्रतिक्रिया जानने में उसे रुचि न थी।

उस पुरुष से परमप्रिय प्रेयसी भी कैसे उन्मुक्त भरे मनुहार करे जो अत्यधिक आत्मतृप्त और आत्मरति है। पाठकगण इस संवाद को पढ़ कर सहज अनुमान लगा सकते हैं कि सत्यवान और सावित्री की इस भेंट में कैसे दोनों ने एक दूसरे के साथ विदा ली। हैदराबाद ट्रेन पहुंचते ही सत्यवान ने सावित्री को तुरंत दूसरी गाड़ी पकड़वा अपने गंतव्य स्थान गुंटूर के लिए प्रस्थान करने के लिए विवश कर दिया। औपचारिकता में अवश्य उसका हाथ पकड़ कर क्षमा मांगी कि वह उसके घर तक सुरक्षित पहुंचाने में असमर्थ है, क्योंकि उसे अपने कार्यभार को लैब में जा कर देखना अब अति आवश्यक है, वह प्लेन या तीव्रगामी ट्रेन से फ़ौरन निकल जायेगा। पत्र व्यवहार द्वारा इस भेंट की चर्चा करने का तो प्रश्न ही नहीं उठता था। दोनों ने मिल कर तय किया था कि इसकी चर्चा किसी से नहीं करनी है। चेतना में ऐसी मधुर स्मृतियों को सुरक्षित रखना मानो कोरी भावुकता मात्र हो!

पांच

गुंटूर की यात्रा से लौटे सावित्री को केवल दो महीने ही बीते थे किंतु इन दो महीनों में अपनी विरह यातनाओं के कारण लगने लगा था कि सत्यवान को देखे मानो वर्षों बीत गये हैं। मानस पटल पर सत्यवान की इस उपेक्षा से वह अत्यधिक व्याकुल हो उठती। कितनी बार क़लम उठा कर पत्र व्यवहार करने के लिए तत्पर हो जाती। कई बार उसने छोटा सा पत्र भी लिख कर लिफ़ाफ़े में गोंद लगा कर बंद कर दिया, किंतु सत्यवान की चेतावनी उसे पोस्ट करने के लिए रोक कर रख देती। सत्यवान ने कठोर शब्दों में ऐसा कुछ न करने की मनाही कर रखी थी। लिफ़ाफ़ा यदि उसकी पत्नी उमा के हाथ लग जायेगा तो वह अपनी सफ़ाई में कुछ कहने-सुनने के लिए असमर्थ रह जायेगा क्योंकि उमा ने जो उसे अपनी प्यारी बेटी की क़सम दिला रखी थी, फिर वह भविष्य में कभी भी सावित्री से न मिलेगा, न पत्र व्यवहार करेगा। सत्यवान को पता था, बेटी की क़सम दिलवा देने की बात उमा की अपनी समझ की उपज कदापि नहीं हो सकती। अवश्य ही उसने आंसू बहा कर प्यारी सासू जी से सत्यवान के बहके हुए क़दमों की चर्चा की होगी। सत्यवान की मां बचपन में ही सत्यवान को कठोर दंड देने में असमर्थ रही थी। जब भी कोई सत्यवान को डांटता-डपटता या किसी नियम के उल्लंघन के लिए ताड़ना देता, मां हमेशा सत्यवान को भोला नटखट बालक समझ क्षमा कर देने की पहल कर देती। इसी लाड़-प्यार का नतीजा था कि सत्यवान ने अपने मन में कभी ग्लानि अनुभव नहीं की। उसके कुकृत्य को आज तक किसी ने निंदनीय शब्दों में कह कर उसको ताड़ना या दंड नहीं दिया। अतएव उमा के लाख मना करने पर भी सत्यवान अपने प्रेम प्रसंग पर थाम लगाने में असमर्थ था। सावित्री ने भी शुरू शुरू में इस अनैतिक व्यवहार की आलोचना की भरसक कोशिश की कि वह लौट आये, अपनी घर-गृहस्थी में ख़ुश रहे किंतु सत्यवान में अपनी इच्छाशक्ति से हर संबंध को अपनी तरह निभा सकने की विशेष योग्यता थी। अपने लिए वह पानी के बहाव की तरह दुर्गम से दुर्गम रास्ते को चीरता हुआ आगे बढ़ सकता था। उसको अपनी जीत हर क़ीमत पर हासिल करनी आती थी। सावित्री को वह यह कह कर शांत कर देता कि युद्ध और प्रेम में कोई भी व्यक्ति नीति और अनीति को सोच कर आगे नहीं बढ़ता। जीत लक्ष्य है और

हर तरह के साधन जुटा कर अपने लक्ष्य को पाना एक सफल व्यक्ति के लिए चुनौती बनी रहती है। वह जब तक सावित्री को प्रेयसी से पत्नी बना कर गौरव प्रदान न कर पायेगा, शांत नहीं हो सकता। इस कार्य के लिए वह जन्म-जन्मांतर तक लड़ता रहेगा, किंतु वास्तविकता के धरातल पर सावित्री के साथ किये गये वायदे में वह पूर्ण रूप से झूठा और अपने ही शब्दजाल में फंसता जा रहा था। उमा के बेटी की क़सम देने के बाद वह गुंटूर से आने के बाद सावित्री से पत्र व्यवहार करने में असमर्थ था। चाह कर भी वह सावित्री के पास जाने में असमर्थ था। ऐसे में एकाएक उमा की प्रताड़ना ने बेहद शर्मिंदगी महसूस करने के लिए उसे बाध्य कर दिया, "आपकी चिट्ठी आयी है। लिखावट से लगता है, जानी- पहचानी है किंतु मैंने खोल कर नहीं देखा है लेकिन मैं चाहूंगी कि आप मेरे सामने उसे खोल कर पढ़ें, इसी शर्त पर मैं वह चिट्ठी आपको दूंगी, यह भाग्यवश मेरे हाथों में आ गयी है। वैसे वह आपके लैब के पते पर है। चपरासी अन्य काग़ज़ों के साथ लाया था क्योंकि इधर दशहरे की कई दिनों की छुट्टियां चल रही थीं, आप भी शायद दफ़्तर की ओर नहीं गये हुए थे, चपरासी डाक को घर में पहुंचा गया है।"

तुरंत सत्यवान का शंकित चित्त भांप गया कि यह पत्र अवश्य सावित्री का ही होगा, लिखावट से उमा ने ठीक ही अंदाज़ा लगाया है। वह अंदर ही अंदर सावित्री की इस लापरवाही से क्रोधित हो उठा, "फाड़ कर फेंक दो, मुझे ऐसे किसी पत्र को नहीं पढ़ना और न ही तुम्हारे साथ बहस करनी है। मुझे किसी को सफ़ाई देने की ज़रूरत नहीं है।"

उमा ने इस विचित्र व्यवहार की कल्पना नहीं की थी। उसका अनुमान था कि सत्यवान इस बार रंगे हाथों पकड़ा जायेगा। इतनी चतुराई से वह निकल जायेगा, किसे पता था? "नहीं, मैं क्यों फाड़ूं? आप जो चाहे उसका करें किंतु उसे पढ़ कर बता दें, न पढ़ कर फाड़ देने से तो पता भी न चल पायेगा कि सत्य क्या है, झूठ क्या है," कह कर उमा चुप हो गयी।

सत्यवान ने उस लिफ़ाफ़े को ले कर तुरंत हवन कुंड की बुझती हुई आग को समर्पित कर दिया। नौरात्र में उमा ने पंडित जी को बुला कर दुर्गा जी का पाठ करवाया था और आज हवन करवा कर विधि-विधान से उस पूजा का निष्ठापूर्वक समापन किया था। देवी जी की कृपा का फल था कि उसके परिवार पर आया हुआ महान संकट क्षणमात्र में भस्मीभूत हो गया। उमा ने सत्यवान के क्रोध को शांत करने के लिए कहा, "ये पढ़ी-लिखी अविवाहिता लड़कियां अपने मायाजाल में फंसाने के बाद पीछा नहीं छोड़तीं, आप कहां कहां से अपना पीछा छुड़ाते फिरेंगे? मुझे उसका पता बता दें, मैं ऐसी ऐसी खरी-खोटी लिख कर भेजूंगी कि वह भविष्य में कभी ऐसी हिम्मत न कर सके।"

सत्यवान ने बड़ी चतुराई से कहा, "उमा, आप बड़ी सयानी बनी फिर रही हैं लेकिन आप नहीं जानतीं, हम लोगों के इर्द-गिर्द अधिकतर सहकर्मी अविवाहित लड़कियां होती हैं किंतु आपके पति के अलावा उन्हें क्या अन्य कामदेव नहीं मिल सकता? मेरी तरह

न जाने···छोड़ो इस पचड़े को, आज हमारे घर में कितनी शांति है! तुमने देवी जी का पाठ करवा कर अच्छा किया। मेरी मां भी ऐसी पूजा-पाठ करवाने का आयोजन किया करती थीं। उनके अनुसार हमारे कुटुंब में इसी की बदौलत सुख, समृद्धि आयी है। हमारा सब कुछ देवी की कृपा से है, मानती आयी हैं।''

''अवश्य ही, किंतु दूध में पड़ी मक्खी को देख आंख बंद करके उसे पीया नहीं जा सकता। आप अपने व्यवहार को दैवी कृपा मान कर संतोष कर लेने का कृपया दुस्साहस न कर बैठें।''

''तुम्हारी ज़बान कतरनी की तरह चलने लगी है,'' कहते हुए सत्यवान ने उमा को चुप हो जाने का संकेत दिया।

पति-पत्नी के बीच उठी इस तनाव की लपटें सावित्री तक पहुंच गयीं। निरंतर सत्यवान के पत्रोत्तर की प्रतीक्षा में थकी हुई सावित्री एक दिन अवाक् हो उठी, जब उसे किसी अज्ञात व्यक्ति ने चुनौती भरा छोटा सा पत्र लिख भेजा था। पत्र उसे अपने घर के पते पर मिला था। वह आश्चर्यचकित थी कि उस अज्ञात व्यक्ति को सत्यवान और उसके बीच की अंतरंग बातों का पता कैसे चल गया? किसने उसे उसके घर का पता बतलाया? पत्र की अंतिम लाइनें पढ़ कर उसे संतोष हुआ कि वह व्यक्ति उसका परम हितैषी होने का दावा कर रहा है, अतएव चेतावनी दे रहा है कि वह भविष्य में सत्यवान से कभी पत्र-व्यवहार करने का दुस्साहस न करे। वह विवाहित है और उसकी पत्नी उमा एक प्रतिष्ठित परिवार की एकमात्र कन्या है। वह परिवार सावित्री को इस भूल के लिए कड़ा दंड देने में नहीं हिचकिचाएगा। उसे हर हालत में सत्यवान को भूल जाना चाहिए। यह पत्र सावित्री ने एक बार नहीं, अनेक बार पढ़ा। दुश्चिंताओं से भरा चित्त होने के कारण वह सत्यवान से संपर्क न कर सकी। मन ही मन ईश्वर से प्रार्थना करती रही कि सत्यवान स्वयं उससे आ कर मिले या कोई पत्र लिख कर भेज दे। इस दुबिधा में पूरे छह महीने बीत गये, कहीं से कोई समाचार नहीं मिला। सावित्री की विरह वेदना बुझी हुई भट्ठी की तरह थी, अंदर ही अंदर आग की तपिश उसे झुलसा कर राख बन जाने के लिए बाध्य कर रही थी। इसी बीच सत्यवान ने स्वयं आ कर उसकी बुझती हुई राख पर पुनः अंगारे डाल दिये। वह इस बार अत्यधिक स्वामित्व भाव से सावित्री को प्रताड़ित करता हुआ बोला, ''मैंने तुम्हें लाख समझाया था कि मुझे पत्र न लिखना। तुम्हारे कारण उमा ने मुझे कितना अपमानित किया तुम कल्पना भी नहीं कर सकतीं। मुझे भी तुम्हारी याद सताती थी, लेकिन फिर भी मैंने इस बीच तुम्हें पत्र डाला क्या? फिर तुम्हें क्या ज़रूरत पड़ गयी थी? कितनी औरतें आजकल अपने घर वालों के साथ रह पाती हैं? पढ़ी-लिखी औरतें ज़्यादातर अपने पति से दूर रह कर नौकरी करती हैं, साल में कभी मिल पाती होंगी। वैसे ही तुम्हें गुज़ारा करना पड़ेगा। मेरे पास जब कभी भी मौक़ा मिलेगा, अवश्य मैं उस मौक़े को चूकने न दूंगा।''

सावित्री ने सहमते हुए उत्तर दिया, ''अब कभी यह चूक न होगी, किंतु आप तो

गुंटूर की यात्रा के बाद……" कहते कहते सावित्री का मुंह लाल हो उठा।

सत्यवान ने आगे बढ़ कर सावित्री का मुंह चूम लिया। अंक में भरते हुए सहज शब्दों में दुलराया, "सवि, तुम्हारी विरह वेदना देख कर मैं बहुत खुश हूं। कोई मेरी प्रतीक्षा में बैठा है, इससे बड़ा मुझे क्या पद मिल सकता है, लेकिन मेरी अपनी मजबूरियां हैं। उमा मेरा पीछा नहीं छोड़ने वाली, उससे दूर होने का कोई रास्ता मुझे नहीं सूझता। पता है तुम्हें, इसी चक्कर में मेरी एक और संतान हो गयी है। पत्नी को खुश रखने के लिए मुझे यह सब कुछ करना पड़ा जो अब केवल तुम्हारा अधिकार होना चाहिए था।"

सावित्री ने सत्यवान के अंतिम वाक्य को सुन कर घायल हिरणी की तरह तड़प कर अपना मुख अलग कर लिया। वह बेसुध हो कर मौन लेटी रही।

सत्यवान ने उसे मनाने की काफ़ी कोशिश की किंतु उसकी चुप्पी जब नहीं टूटी तब संवेगित हो सत्यवान ने उसे निर्वस्त्र कर उसके शरीर से खिलवाड़ करते हुए स्तनपान करना शुरू कर दिया, और नारीत्व को जाग्रत करने के लिए कानों में फुसफुसा कर कहा, "थोड़े दिनों में तुम वैज्ञानिक अनुसंधान करना भूल कर मेरे बच्चों को इसी तरह दूध पिलाती रहोगी।"

सावित्री का हृदय भावनाओं के तूफ़ान में फंस कर भी ऐसी मां बन जाने के लिए कदापि तैयार न था, जिसको अपने पिता का संरक्षण प्राप्त न हो। सत्यवान केवल उसका नहीं है, यह ज्वलंत सत्य उसे अंदर ही अंदर फंसे कांटे की तरह लहूलुहान कर रहा था। यदि सत्यवान मन-प्राण से उसका होता तो अपना शरीर पत्नी को कैसे दे देता? हे ईश्वर, यह कैसी विडंबना है! प्रेम का स्वांग रचना किसी से, और सामाजिक रीति-रिवाज़, कर्तव्यबोध आदि का पालन विधिवत ब्याही अपनी पत्नी की झोली में भरना? ऐसी असिधार पर चलना शायद सत्यवान के लिए ही संभव हो सकता है। सावित्री भोली अवश्य थी किंतु उच्च शिक्षा प्राप्त होने के कारण सामाजिक व्यवस्था की आधारशिला से भली भांति परिचित थी। आदिकाल से मनुष्य ने परिवार की रूपरेखा बनायी। प्रेयसी को पत्नी का पद देने के लिए विवाह संस्कार विधिवत करना आवश्यक माना। इस संस्कार की मर्यादा को नकार देना सत्यवान के वैज्ञानिक मस्तिष्क की उपज केवल संवेगों की धार के साथ सहज बह जाने के कारण हो जाती होगी। उसके प्रेम के उन्माद के बहाव में समाज का भय, नीति-अनीति का ज्ञान सब कुछ तिरोहित हो सकता है किंतु सावित्री इन्हीं संबंधों में प्रेम में पड़ी भारी तबाही के बावजूद पूर्ण समर्पण द्वारा मातृत्व के भार को संभाल सकने में सक्षम हो सकी?

नारी विवाह के बाद ही पुरुष से सच्चा प्रेम करती है, क्योंकि यही सामाजिक व्यवस्था उसकी संतान को सुरक्षा प्रदान कर पाती है। जानवरों में भी जो नर यह सुरक्षा प्रदान नहीं कर सकता, मादा उस रतिक्रिया के साथी को त्याग कर अपनी भावी संतान की उत्पत्ति कहीं अन्य सुरक्षित एकांत स्थान में करती है। सब जान कर भी सावित्री सत्यवान के समक्ष बोल सकने में क्यों असमर्थ रही, यह तो सावित्री ही जाने! क्या वह

सत्यवान के समक्ष हर तरह की परीक्षा दे देने में कृतसंकल्प थी या उसका यह प्रारब्ध भोग था? पाठकगण अनुमान लगाने के लिए स्वतंत्र हैं।

सत्यवान का रतिक्रिया में अनुभवी चित्त इस समय सावित्री की उदासीनता से खिन्न हो उठा। सावित्री को झकझोरते हुए उसने सचेत किया, "तुम्हें क्या हो गया है? मैं हज़ारों मील से भाग कर तुम्हारे पास आया हूं, तुम्हारे साथ छेड़छाड़ कर लेने से मेरी इच्छाएं जाग्रत हो जाती हैं, लेकिन तुम्हारी उदासीनता देख...अच्छा, छोड़ो इन बातों को, तुम्हारे शरीर को छूने की भी मुझे इज़ाजत न हो तो मैं कभी भी ऐसी हरकतें नहीं करूंगा जिससे तुम्हें दुख पहुंचे। सवि, मुझ पर भरोसा रखो, मैं तुम्हारी मान-मर्यादा का सदैव ख़याल रखता हूं, तुम्हारे शरीर पर अपना हक़ समझता हूं और उसको उचित सम्मान देने के लिए ही मैं तुम्हारे नारीत्व को जगाने की कोशिश कर बैठता हूं। आशा है, तुम्हें इसमें आपत्ति नहीं है, हो तो बोलो।"

सावित्री का मौन भंग न हो सका। सत्यवान ने खीज कर कहा, "अच्छा, उठो, अपने कपड़े ठीक करो। चलो, बाहर कहीं घूम कर आते हैं। खाना भी किसी अच्छे होटल में खायेंगे।"

सत्यवान की इस आज्ञा को सावित्री ने चुपचाप निभा दिया। दोनों चुपचाप आवारागर्दी कितनी देर कर पाते, सत्यवान ने सावित्री को सड़क के पार हरी घास पर बैठ कर वार्तालाप करने की सलाह दी। सावित्री भी अनमने मन से घास पर आ बैठ गयी और एक एक करके घास के टुकड़े तोड़ने लगी। सत्यवान ने भावुकता में उसका हाथ थामते हुए कहा, "सारा ग़ुस्सा बेचारी घास पर क्यों निकाल रही हो? मेरा क्या क़सूर है, कुछ हम भी तो जानें!"

सावित्री बोल कर अपने अंतर्मन की व्यथा व्यक्त करने में असमर्थ थी। उसके नारीत्व का मान मोम की तरह पिघल गया था, ऐसे में सत्यवान से अपेक्षा करने का प्रश्न कहां उठ सकता कि वह उसकी अस्मिता की रक्षा करे? माना सत्यवान उसकी शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ति का दम भरता आया है लेकिन यह सत्य है कि कभी भी उसने सावित्री के लिए कोई छोटा-मोटा उपहार तक ला कर नहीं दिया। एकाएक चुप्पी तोड़ते हुए सावित्री ने हठ की कि वह अपनी एक फ़ोटो उसे दे दे। लेकिन सत्यवान ने बड़ी तर्कता से उसे सचेत किया, "मेरी फ़ोटो तुम्हारे पास देख कर लोग तरह तरह की बातें बनायेंगे। यदि उमा को पता चल गया तो मेरी शामत आ जायेगी।"

सावित्री सदैव ही अपनी इच्छाओं को दबाती आयी थी, अपने परम प्रिय सखा की छबि को मनुहार कर सकने का सुख भी उसके लिए दुर्लभ बन गया। इस तर्कोक्ति को सुन कर केवल ठंडी सांस लेते हुए उसने कहा, "आपकी कौन सी चीज़ पर मेरा अधिकार है?"

सत्यवान ने तुरंत उत्तर दिया, "मेरे मरने के बाद मेरी राख पर केवल तुम्हारा ही अधिकार होगा, अन्य किसी का नहीं।"

इस भावुकता भरे उत्तर को सुन कर सावित्री अवाक् रह गयी, "मुझे आपके जीवन काल में अपने अधिकार की मांग है, जीवन के बाद आपकी राख ले कर मैं अभागिन क्या करूंगी? मेरी तो प्रभु से प्रार्थना है कि मैं इस संसार से विदा आपके कंधों पर चढ़ कर एक सुहागिन की तरह लूं।"

"ओह, तुम भी इतनी पढ़ी-लिखी हो कर एक अनपढ़ भारतीय नारी की तरह सुहागिन मरने के सपने संजोती रहती हो!" सत्यवान ने यह कहते हुए प्रेम से सावित्री को अंक में भर लिया।

सावित्री अपने शरीर को अलग कर सकने में असमर्थ थी, यद्यपि उसे पता था कि सड़क के समीप सांध्य बेला की रोशनी में घास पर बैठ कर ऐसी मुद्रा में देखे जाने पर भारतीय समाज में क्या मानहानि हो सकती है। इस क्षणिक आवेश में बह जाने के कारण उस दिन सावित्री की जो दुर्गति हुई, उसे शब्दों में वर्णित करना संभव नहीं। पाठकगण अनुमान लगा सकते हैं कि प्रेमी जोड़ों को पुलिस वाले एकांत स्थान में ऐसी रतिक्रियाओं की मुद्रा में आसीन पा कर कैसे आड़े हाथों लेते हैं और उनकी कड़े शब्दों में आलोचना करने के बाद उनसे पैसे वसूल करने के बाद ही उनका पीछा छोड़ते हैं। सावित्री ने इस अनुभव को दबाने के लिए उस दिन अपने पर्स के सारे पैसे पुलिस वाले को दे दिये और साथ में अपनी एकमात्र सोने की अंगूठी भी उतार कर उसे दे दी किंतु सत्यवान की प्रतिक्रिया इसके बिलकुल विपरीत थी, जिसका अनुमान पाठकगण अवश्य लगा सकते हैं। पुलिस की धमकी को सुन कर सत्यवान ने सहज भाव से कहा, "मैं अपनी पत्नी के पास बैठ कर बातचीत करते करते भूल गया कि हम कहां बैठे हैं। अच्छा, हम घर चले जाते हैं, ऐसी जगह में बैठ कर विश्राम करने की भूल फिर कभी नहीं करेंगे। आपने आ कर हमें चेतावनी दी, ठीक किया," कह कर सत्यवान तेज़ी से डग भरता हुआ आगे बढ़ गया। उसने पीछे मुड़ कर भी नहीं देखा कि सावित्री पुलिस वाले से क्या बातचीत कर रही है। बेचारी सावित्री चुपचाप अपना पर्स ख़ाली करके और अपनी अंगूठी उसे दे कर जब लौटी तब सत्यवान ने उसकी भर्त्सना करते हुए कहा, "तुम्हें ज़रूरत क्या थी पुलिस वाले के सामने अपना पर्स खोल कर दिखाने की? इन लोगों का रोज़मर्रा का काम है, किसी न किसी से किसी तरह पैसे ऐंठ लेना। मैंने तो एक भी पैसा नहीं दिया। तुम्हें इतना भयभीत नहीं होना चाहिए। ख़ैर, कितने पैसे दे कर आयी हो, पता है?"

"मुझे तो बेहद डर लग रहा है। मैं तो इसी शहर की रहने वाली हूं। अगर यह पुलिस वाला मेरे दफ़्तर तक या घर पर आ जाता तब?"

"औरतें पढ़ी-लिखी हों या अनपढ़, बेहद डरपोक होती हैं। तुम इतनी जल्दी उसके चकमे में आ गयीं! मान गये, आपको कोई भी बेवक़ूफ़ बना सकता है।"

"मेरी तो जान चली गयी, शर्म से, डर से, भावी दुश्चिंताओं से, क्यों ऐसे में भी आप मेरा मज़ाक़ बना रहे हैं?" सावित्री यह कह कर रो उठी।

"अच्छा, रोओ नहीं, मैं तुम्हें मज़बूत बनाने की कोशिश कर रहा था। परिस्थिति बिगड़ जाने पर संवेगित हो जाने के बजाय मनुष्य को अपने विवेक से काम लेना चाहिए। मुझे पता है, मेरी सवि बहुत भोली भाली है, उसको कोई भी बेवक़ूफ़ बना सकता है क्योंकि वह है ही एक बुद्धू, नासमझ, नादान लड़की। चलो, चल कर खाना खाया जाये," स्थिति को संभालने के लिए सत्यवान ने पहल की।

सावित्री इस कटु अनुभव के बाद खाना खाने के लिए कदापि तैयार न थी। सत्यवान ने भी उसे बाध्य करना उचित नहीं समझा लेकिन इतनी जल्दी वह सावित्री से विदा ले कर गेस्ट हाउस वापस जाने को तैयार न था। सत्यवान के बहुत आग्रह करने के बाद तय हुआ कि दोनों पास के किसी स्टेशन के पास जा कर रात्रि स्टेशन के विश्रामरूम में व्यतीत करेंगे। सावित्री के पास इस यात्रा की कोई भी तैयारी न थी। बहुत से स्त्री-सुलभ उसने तर्क दिये किंतु सत्यवान की हठ के सामने उसे झुकना पड़ा। हार कर सावित्री ने दयनीयता से कहा, "रात्रि में आप मेरे शरीर पर अपना स्वामित्व नहीं स्थापित करेंगे।"

सत्यवान ने हठप्रतिज्ञ हो कर उसके लिए हामी भरी।

जून की गर्मी के दिन थे। दोनों शाम के समय दुबारा नहाने के आदी थे किंतु कपड़े साथ न होने के कारण स्नान करना संभव न था, सत्यवान ने अवश्य कमरा सुरक्षित करवा लेने के बाद देर तक फ़व्वारे के नीचे नहा कर अपने चित्त को शांत किया। उसने सावित्री को भी सलाह दी कि वह भी उसी तरह नहा कर आ जाये किंतु स्त्रीसुलभ लज्जा के कारण वह सत्यवान की तरह नंगे बदन फ़व्वारे के नीचे खड़े हो कर नहाने में असमर्थ थी। रेलवे के विश्राम रूम में बाथरूम का दरवाज़ा बंद करना संभव न था। रेलवे स्टेशन पर अकसर होता है कि वहां कुंडी आदि ग़ायब ही मिलती है। सत्यवान को सावित्री के समक्ष ऐसे नहा सकने में कोई लज्जा नहीं लगी, किंतु इस नग्न रूप को देख कर अवश्य सावित्री के ऊपर लज्जा का घड़ा पानी गिर गया था। उसका मन बेहद आशंकाओं से घिरने लगा, रात्रि यहां कैसे व्यतीत होगी? वह अपनी इस भूल के कारण सत्यवान के प्रति अत्यधिक उदासीनता का व्यवहार करने लगी। सत्यवान ने उसे सहज करने के कई प्रयत्न किये, उसे बड़े प्रेम से निर्वस्त्र अपने पास लेट जाने का आग्रह किया। सम्मोहन अवस्था में जैसे रोगी डॉक्टर की आज्ञा का उल्लंघन कर सकने में असमर्थ होता है वैसे ही कुछ सावित्री का व्यवहार रहा। सत्यवान का रतिक्रिया में अनुभवी चित्त इस असहयोग को अपने पुरुषोचित्त गर्व द्वारा खंडित नहीं करना चाहता था। वह सावित्री को हृदय से प्यार करने लगा था। उसकी सहमति के बिना वह उसके शरीर को न छूने के लिए कटिबद्ध था। अतः रात्रि दोनों ने करवटें बदलते हुए काटी। सुबह की प्रथम किरण निकलने के पहले ही दोनों ने नित्यकर्म से निवृत्त हो कर अपनी अपनी दिशा की ओर जाने की तैयारी कर ली। विदा के समय सत्यवान ने केवल इतना ही कहा, "मैं अपनी पत्नी को भी रेलवे स्टेशन जा कर डिब्बे तक ही पहुंचा पाता हूं, क्योंकि वहां खड़े हो कर

ट्रेन चलने की प्रतीक्षा करना मेरे बस की बात नहीं, वैसे भी मैं किसी तरह की औपचारिकता में विश्वास नहीं करता। आशा है, तुम्हें घर पहुंचा कर विदा करने की मुझे ज़रूरत नहीं पड़ेगी। तुम ख़ुद पढ़ी-लिखी व्यवसायी महिला हो।"

"मैं स्वयं नहीं चाहूंगी कि आप मुझे इस समय छोड़ने जायें, आपको यहां से ही ट्रेन मिल जायेगी, आप चाहें तो मैं आपको ट्रेन के डिब्बे तक छोड़ आऊं," सावित्री ने तटस्थ भाव से उत्तर दिया।

"मुझे अच्छा लगेगा, लेकिन किसी ने प्लेटफ़ार्म पर देख लिया तब आप तो शर्म से लाल हो उठेंगी," कहते हुए सत्यवान ने प्रेम से सावित्री का हाथ अपने हाथों में ले लिया। मुट्ठी को खोल कर बाहर हाथ निकालने की कोशिश में सावित्री ने अनेक प्रयत्न किये किंतु अपने हाथ को अलग न कर पायी। सत्यवान बराबर सावित्री को अपलक नेत्रों से देखता गया, स्नेहसिक्त सावित्री सुबह सुबह पसीने पसीने हो उठी। दोनों उन्मुक्त भाव से हंसने लगे। अपलक बीती रात्रि की शारीरिक थकान एवं समस्त तनाव के बंधन अपने आप घुल कर बिखर गये।

पाठकगण इस विदा से यह अनुमान न लगा लें कि इसके उपरांत सावित्री के प्रति सत्यवान खिंचता गया। घटनाचक्र यह है कि सत्यवान दो साल तक सावित्री से फिर न कभी मिल सका, न ही उसने कोई पत्र व्यवहार किया। सावित्री को इन दो सालों में आशा-निराशा के झूले में झूलते हुए मानसिक यातनाओं का सामना करना पड़ा। वह कुछ दिनों तक रोती-धोती रही फिर उसे विषाद का मानसिक रोग हो गया। उसकी भूख, प्यास, नींद आदि सब उड़ गयी। अपने दृढ़निश्चय पर अडिग रहने के कारण वह सत्यवान की उदासीनता की चर्चा तक अपने डॉक्टर या मित्र वर्ग में न कर सकी। इतनी मेधावी कन्या को मानसिक रोग से पीड़ित देख बेचारी मां का हृदय हाहाकार करता किंतु सावित्री तो पत्थर की मूर्ति बन गयी थी, अपने विषय में कुछ भी नहीं कहती-सुनती, मानो संसार में उसे कहने-सुनने के लिए कुछ शेष न रहा था। केवल डॉक्टरी दवाइयों का उपचार अवश्य करवाती क्योंकि अपनी मां की पथरायी आंखों में आंसू देख वह विह्वल हो उठती, अपनी अंतरिम वेदना की गठरी मां के बूढ़े कंधों पर लाद कर जीवन निर्वाह करना नहीं चाहती थी। आत्महत्या का विचार अकसर आता किंतु उसे करने का दुस्साहस जुटा सकना संभव न था, फिर मां की कौन देखभाल करता? समय की गति के साथ जीवन बहता गया। तभी एक दिन उसकी मुलाक़ात सत्यवान के अचानक उसके लैब में पहुंच जाने से हुई। सदा की तरह सत्यवान में सावित्री को प्रेम से अंगीकार करने की ललक थी किंतु सावित्री की मनःस्थिति में हिम शिला सी शीतलता एवं सख़्ती थी। अतएव उसका तनिक स्पर्श सत्यवान के लिए टीस सा भरा हुआ था। सत्यवान ने इस अनुभूति को नकारते हुए कहा, "अरे, तुम तो इतनी कमज़ोर लग रही मानो सालों से बीमार हो! इधर लगता है, कोई वैज्ञानिक अनुसंधान में तुम्हें खाने-पीने की भी सुधि नहीं रही है, हम भी तो काम करते हैं। इधर मैंने विदेश की फिर से यात्रा की है। मेरी लिखी

हुई किताब भी जल्दी ही छपने वाली है। मैं एक सेमिनार के सिलसिले में आया था तो समय निकाल कर तुम्हें भी देखने आ गया। बताओ, क्या हाल-चाल है? अनुसंधान का काम कैसा चल रहा है? चलो, चल कर तुम्हारी लैब को देखें, क्या क्या नये नये उपकरण मंगवा रखे हैं!

"आप सेमिनार से उठ कर यहां आये, चलिए इस बहाने आपके दर्शन मिले... गेहूं के साथ बथुए को भी पानी मिल जाता है।"

"ओह, अपने को बथुए जैसा साग-पात क्यों बना रही हो? मैं अपनी सवि से मिलने आया हूं, सेमिनार का तो बहाना मात्र है।"

"छोड़िए यह नाटक, इतने दिनों तक सावित्री ज़िंदा है या मर गयी, इसकी भी आपको चिंता न थी।"

"क्योंकि मैं जानता था, मेरी आज्ञा के बिना तुम इस संसार से नहीं जा सकतीं। अब मैं रोज़ पूजा करने लगा हूं। मैं आजकल चार फूल रोज़ भगवान को चढ़ाता हूं—एक अपने लिए, एक अपनी प्रिय बिटिया की मंगलकामना के लिए, एक अपने पुत्र के लिए और एक तुम्हारी सुरक्षा के लिए," कहते हुए सत्यवान ने अत्यंत गर्वीले भाव से सावित्री को झकझोर दिया।

"आपकी पहुंच तो अब भगवान तक हुई है, मैं तो बचपन से रोज़ भगवान की पूजा करती आयी हूं लेकिन मेरी प्रार्थना उन्होंने नहीं सुनी।"

"अपने अपने काम करने का ढंग है। भगवान भी आजकल उन्हीं की सुनता है जिन्हें अपने ऊपर भरोसा होता है, आत्मविश्वास होता है। भगवान से मैं प्रार्थना करके कुछ नहीं मांगता। जो लेना हो, उसे ख़ुद हासिल करता हूं, यह तो तुम्हें पता ही है मेरे बारे में।"

"हां, आप जैसे सफल व्यक्ति में कोई दोष कैसे निकाला जा सकता है? तुलसीदास जी ने ठीक ही लिखा है, 'समरथ को नहिं दोष गुसाईं,'" सावित्री ने चिड़चिड़ाहट भरे स्वर में कहा।

"शायद यह चौपाई पहले भी सुन चुका हूं," तटस्थ होते हुए सत्यवान रुखाई से बोला, "हमें अभी तो कहीं बाहर चलना चाहिए, मुझे बेहद प्यास लग रही है।" यह सुन कर सावित्री ठंडे पानी का प्रबंध करने चली गयी, सत्यवान मेज़ पर पड़े काग़ज़ों को देखने लगा, और उन पर अपनी टिप्पणी लिख कर उन्हें सजा कर रख दिया। सावित्री की हर चीज़ पर मानो उसका एकाधिकार था। ठंडा पानी पिलाने के उपरांत सावित्री सत्यवान को ले कर लैब के बाहर आयी। वहां आते ही उसके पैर में मानो मीलों चलने की थकान समा गयी हो! उसने ठंडी सांस लेते हुए सत्यवान से नमस्कार करके विदा ले ली। इस अद्भुत व्यवहार परिवर्तन से सत्यवान अवाक् था क्योंकि वह जीवन में अपनी सफलता की चरमसीमा पर पहुंच गया था। ऐसे प्रतिष्ठित वैज्ञानिक को एक साधारण सी शोधकर्ता ऐसे विदा नहीं कर सकती। वह अपनी मान-मर्यादा के अहंकार में यह भूल

गया कि सावित्री उसकी प्रिया है, मान करना उसका अधिकार है। उसका दायित्व है कि अपनी खंडिता नायिका को प्रेम से मनाये किंतु अत्यधिक आत्मनिष्ठ होने के कारण सत्यवान इस अपमान को दबा न सका, केवल औपचारिकता में 'फिर मिलेंगे, जब तुम गुस्से से ठंडी हो जाओगी, तब तक मैं इंतज़ार करूंगा' कह कर चला गया।

सावित्री ने ठंडी सांस ली। कहां से यह पवन का वेग आ कर उसे इस गरमी में ठंडी बौछार से भिगो गया है, इससे तो तपिश अत्यधिक असहनीय हो उठी! घर आ कर उसने बाथरूम में घुस कर तुरंत अनेक लोटे पानी डाल कर सिर धोया। बाथरूम में इतनी देर तक नहाते देख उसकी मां का चित्त बेचैन हो उठा। बाथरूम के बाहर वह खड़ी हो कर सावित्री को आवाज़ देने लगी, "बाहर जल्दी निकलो। देख रही हूं, तुम कितनी देर से नहा रही हो। समझ में नहीं आता, तुम्हें आजकल हो क्या रहा है? तुम्हारा व्यवहार दिन पर दिन विचित्र होता जा रहा है।"

"मां, क्यों चीख़ रही हो? मैं कोई छोटी लड़की नहीं हूं। अभी बाहर आती हूं," सावित्री का स्वर उतना ही अधिक तीखा और अजनबी था।

मां यह जवाब सुन कर सहम गयी। मन ही मन भगवान से प्रार्थना करने लगी कि उसकी बेटी का यदि कोई अनिष्ट होने वाला हो, तो उसकी झोली में आ गिरे। यदि उसको कुछ हो गया तो संसार में उसका अपना कौन रहेगा? सब ओर अंधकार भरी निराशा है, यह तो कोढ़ में खाज हो जाने वाली दुर्दशा है। हे भगवान! इतनी पढ़ी-लिखी लड़की को क्या ख़ब्त सवार हो गयी है कि घंटों पानी से नहाती जा रही है। मां की प्रार्थना फलीभूत हुई, सावित्री ने बाथरूम का दरवाज़ा खोला लेकिन उसकी पथरायी सूजी हुई आंखों में ऐसा सूनापन था कि मां का हृदय विदीर्ण हो उठा। उसने बाथरूम के अंदर झांक कर देखा तो पाया, मोरी के पास सावित्री के अमूल्य हीरे के कर्णफूल गिरे पड़े थे। ये कर्णफूल कुछ दिन पहले ही सावित्री को मां ने ख़रीदवाये थे। सावित्री की कमाई के ये प्रथम आभूषण थे जो मां के बहुत मनुहार करने पर सावित्री ने ख़रीदे थे। ऐसी कीमती चीज़ को जिसे स्वयं ने अपनी गाढ़ी कमाई से ख़रीदा हो, वह व्यक्ति इतना अधिक लापरवाह हो सकता है कि उसे बहने के लिए मोरी के पास फेंक कर चल दे? अवश्य ही ऐसे मनुष्य का दिमाग़ फिर गया है। अतएव मां ने सावित्री से कुछ कहना-सुनना ठीक नहीं समझा। उसने गर्म चाय पिला कर उसे किसी तरह डॉक्टर के पास ले जाना उचित समझा। डॉक्टर ने सावित्री से कई तरह से पूछने की कोशिश की कि आज दफ़्तर में उसके साथ कोई हादसा तो नहीं हुआ है किंतु सावित्री के मौन को वह तोड़ने में असफल रहा। उसकी मनःस्थिति देख कंपोस का एक इंजेक्शन दे, सावित्री को सुला देना उचित उपचार समझा गया।

डॉक्टरी इलाज एवं समय की रफ़्तार के साथ साथ सावित्री के मूड में आशातीत परिवर्तन आया। वह कुछ दिनों की छुट्टियों को आराम से व्यतीत करके जब दफ़्तर पहुंची तो मेज़ पर पड़े अपने काग़ज़ों को संभालते हुए उसे सत्यवान की लिखी हुई

टिप्पणी दिख गयी। सहसा उसके मस्तिष्क में सत्यवान के निर्दयी व्यवहार का चित्र आ गया। व्यक्ति अपने अहंकार में चूर हो कर दूसरे की भावना के साथ कैसा कैसा खिलवाड़ कर सकता है! अपनी भावनाओं पर पत्थर रख कर वह सत्यवान की उपेक्षा तक के लिए कुछ भी किसी से कह नहीं सकी है। मनोचिकित्सक की अनुभवी आंखों से लगा कि वह सब कुछ समझ रहा है किंतु उसने भी सावित्री के मस्तिष्क में उपजी घृणा, क्रोध, प्रतिकार आदि में उलझी अनेक विपरीत भावनाओं को मुक्त कर देने की पहल नहीं की है। केवल उसकी शारीरिक आवश्यकताओं को पूछता रहा है—भूख कैसी है, नींद आयी कि नहीं, मन कैसा है, कामकाज में जी लगता है या नहीं, मरने की इच्छा तो जाग्रत नहीं हो जाती, आदि। मानो सावित्री जैसी सुसंस्कृत नारी केवल हाड़-मांस की बनी है। उसकी कोमल भावनाओं को कहीं से आघात अवश्य लगा है, इसका अनुमान हो जाने पर भी वह उसके मन की परतों को खोल सकने में असमर्थ रहा है। सावित्री को पुरुष के हर रिश्ते—पिता (जो बचपन में नहीं रहा), भाई (जिसका सान्निध्य इस जन्म में मिला नहीं), प्रेमी (जो केवल स्वांग भरता रहा), पति (जिसके बंधन सप्तपदी के बिना ही उसे सात जन्मों के कटघरे में बांध कर रख गये हैं), मनोचिकित्सक (जो अत्यधिक व्यस्त होने के कारण उसकी देखभाल एक मशीन की तरह कुशलता से करता आया है)—से उदासीनता एवं अवहेलना मिली है। प्रेम, दायित्व, अधिकार, अपनत्व मिलना उसके भाग्य में नहीं है। शायद यह सब पूर्व जन्म के कोई भयंकर पाप के कारणवश है, इस विचार के चित्त में आ जाने से सावित्री एकाएक अपराध भावना से कुंठित हो उठी। उसे याद आया, बचपन में एक संन्यासी उसे गीता का हिंदी अनुवाद का अभ्यास हर रविवार को आ कर करवाते थे। उस समय सावित्री की मां रसोई में उस संन्यासी के लिए भोजन तैयार करती रहती थीं। एक दिन पढ़ाते पढ़ाते संन्यासी का हाथ अनायास सावित्री के वक्षस्थल पर चला गया। उस समय सावित्री केवल तेरह वर्ष की थी, कामुक भावनाओं से बिलकुल अनभिज्ञ। संन्यासी का हाथ अपने उभरे हुए सुकोमल उरोजों पर पड़ते ही सावित्री चौंक उठी, भाग कर वह बाथरूम में पहुंच गयी और सिर से पैर तक पानी डाल कर नहा लेने के बाद ही उसे चैन आया। वह फिर उस संन्यासी के पास पढ़ने नहीं गयी, न ही उसने मां से उस संन्यासी के अभद्र व्यवहार की चर्चा की। उस मौन अवहेलना को पा कर संन्यासी ने सावित्री के घर आना बंद कर दिया। मां को समझ में नहीं आया कि वह संन्यासी सावित्री को पढ़ाने क्यों नहीं आते, न ही उनके यहां सदा की भांति हर रविवार को भोजन ग्रहण करते। मां ने सावित्री को बाध्य किया कि उन्हें संन्यासी के आश्रम जा कर पूछताछ करनी चाहिए कि एकाएक उनका आना क्यों बंद हो गया है? पहले तो सावित्री ने पढ़ाई का बहाना बना कर आश्रम में क़तई जाने से मना किया, लेकिन मां अकेली संन्यासी के आश्रम कैसे जाती, हार कर उसे जाना पड़ा। वहां पहुंच कर सावित्री चुपचाप मूर्ति की तरह एक कोने में खड़ी रही। संन्यासी काफ़ी रोगग्रस्त लगे। वह मां के बहुत पूछने पर भी न आ पाने की अपनी असमर्थता

को कह न सके। मां सावित्री के इस उदासीन व्यवहार से खिन्न थी। गुरु को रोगशैया पर पड़ा देख भी सावित्री उनके पास नहीं आयी, न ही उसने श्रद्धापूर्वक शीघ्र कुशल होने या उनके न आने का कारण पूछा। सावित्री की मां के लिए उसका यह विचित्र व्यवहार हैरानी का था। लौटते समय उसने सावित्री को काफ़ी डांटा, 'गुरु के प्रति आदरभाव रखने की शिक्षा दी'। उस दिन सावित्री ने मां की भर्त्सना को चुपचाप सहा, किंतु आज उसे लगने लगा कि संन्यासी के श्रापवश ही उसे अपने प्रेमी से अवहेलना का दंड मिला है। वह संन्यासी कामुक इच्छाओं से ग्रस्त हो कर रोगशैया पर पहुंच गया था। वैसे ही मरणासन्न अवस्था में वह स्वयं पहुंच रही है। सावित्री इन विचारों से ग्रसित हो फफक फफक कर रो उठी।

लैब में उस समय कोई अन्य कर्मचारी नहीं थे, केवल उसकी सहकर्मी ईश्वरी दास अपने कक्ष में कार्यरत थी। किसी के रोने की आवाज़ सुन कर वह कार्य छोड़ कर सावित्री के पास आयी। उम्र में बड़ी होने के कारण उसने सावित्री को रोती देख कर बड़ी सतर्कता से पूछा, "लगता है, तुम्हारी तबीयत अभी पूरी तरह ठीक नहीं हुई है। सुबह सुबह रोना आ जाना अच्छा लक्षण नहीं है। चलो, मैं तुम्हें घर तक पहुंचा दूं।"

"नहीं, मुझे अपने हाल पर छोड़ दीजिए," आंसुओं को पोंछते हुए सावित्री ने उस सहकर्मी को वापस लौट जाने के लिए विवश किया। किंतु मिसेज़ दास लौटी नहीं, वह प्रेम से सावित्री के लिए एक ठंडा गिलास पानी ले आयीं और अपनी कुर्सी को निकट ला कर चुपचाप आसन जमा कर बैठ गयीं। कुछ देर की चुप्पी के बाद सावित्री ने सहज हो जाने का अभिनय किया, "मिसेज़ दास, प्लीज़, अपना काम करें। मुझे कुछ याद आ गया था। इधर कमज़ोरी ज़्यादा हो जाने के कारण मेरा मन उचाट हो जाता है, आंसू अपने आप आ जाते हैं, कुछ देर बहने के बाद वे अपने आप रुक जाते हैं," अपने आंसुओं की कठोरता से अवेहलना करते हुए सावित्री ने कहा।

"हां, जो घनीभूत पीड़ा थी, दुर्दिन में आंसू बन बरसने आयी। आज मुझे ये पंक्तियां पूरी तरह याद नहीं हैं, किंतु आंसू आवारा पानी तो नहीं हैं जिन्हें बहा बहा कर अपनी आंखों की ज्योति को बरबाद कर दिया जाये। वैसे ही हम वैज्ञानिक आंखों से सबसे अधिक काम लेते हैं। तुम्हारे लिए अपनी आंखों की क़ीमत न हो लेकिन मेरे लिए वह हमारी सबसे प्यारी इंद्रिय है। तुम्हें पता है, मेरी आंखों की ज्योति बहुत तेज़ी से कम हो रही है? इस रफ़्तार से गिरती गयी तो मैं भविष्य में कहीं अंधी न हो जाऊं," विषय परिवर्तन कुशलता से करते हुए मिसेज़ ईश्वरी दास ने कहा···।

"अरे, आपने कभी चर्चा नहीं की! आपकी आंखों में क्या तकलीफ़ है?" आतुर हो सावित्री ने पूछा।

"डॉक्टर अभी पूरी जांच नहीं कर पाये हैं, जांच चल रही है, पूरी हो जाने पर बतलाऊंगी, लेकिन तुम्हारी डॉक्टरी जांच खत्म हो गयी हो तो बतलाओ, तुम्हें क्या रोग हो गया था कि छुट्टी लेनी पड़ी?"

"डॉक्टर मुझे कहते हैं, डिप्रेशन हो गया है," सपाट शब्दों में सावित्री ने जवाब दे कर मिसेज़ दास को अवाक् कर दिया।

"वह रोग तो आजकल हर तीसरे व्यक्ति को हो जाता है, जैसे ज़ुकाम हो। सुना है कि एक बार जीवन में चाहे बाल्यकाल, यौवन या बुढ़ापा सब ही को यह रोग आ कर ग्रस्त कर सकता है। ख़ैर, चलो, तुम इस रोग से निपट लो," कह कर मिसेज़ दास खिलखिला कर हंसने लगीं।

"अरे, आप तो मेरे रोग को इतना सहज ले रही हैं, यहां मेरे प्राण संकट में हैं और आप···"

"हर व्यक्ति अपने दुख को ही सबसे बड़ा मान कर अपने कलेजे में उसे छिपा कर रखना चाहता है। उसी चक्कर में वह रोग असाध्य बन जाता है। देखा जाये तो संसार में कौन दुखी नहीं है! हम एक दूसरे से अपना दुख बता कर ही अपने दुख को कम कर सकते हैं।" मिसेज़ दास ने अपने हाथ में सावित्री के हाथ को बड़ी कोमलता से दबाते हुए धीरज दिया।

"शायद आप ठीक कहती हैं। कभी बैठ कर आत्मीयता से बातचीत करने का सौभाग्य मुझे नहीं मिला है।"

"मैं अवश्य तुम्हें लंच के अवकाश में कहीं ले चल कर अपनी रामकथा और तुम्हारी आपबीती को सुनूंगी," कह कर मिसेज़ दास अपने कक्ष में आ कर कार्यरत हो गयीं।

सावित्री ने भी ठंडी सांस ली। वह इतनी जल्दी अपनी पीड़ा की गठरी को किसी अन्य के समक्ष खोल सकने में असमर्थ थी, किंतु उसे मिसेज़ दास के व्यवहार से एक नयी आशा के फूटने का आभास अवश्य मिला था।

मिसेज़ दास ने सावित्री से मित्रता बढ़ाने की कोई विशेष पहल नहीं की, केवल लंच में वह अकसर सावित्री को अपने साथ ले जातीं। दोनों बैठ कर चुपचाप भोजन ख़त्म करके वापस आ कर अपने अपने कार्य में व्यस्त हो जातीं, सावित्री को संतोष हुआ कि मिसेज़ दास ने उस दिन के बाद से फिर कभी भी कुछ जानने की जिज्ञासा नहीं दिखलायी जो कि नारी जाति का एक सुलभ गुण माना जाता है। ऐसे सहकर्मचारी के साथ भोजन करना और कुछ देर वहां बैठ कर सहगल के गाने सुनने के लिए रेस्त्रां वाले से अनुग्रह करना, यही दोनों की मित्रता की डोर को बढ़ाता गया।

एक दिन मिसेज़ दास ने पूछा, "सहगल के गाने ही सावित्री, तुम क्यों सुनना पसंद करती हो, वह भी 'दुख के दिन बीतत नाहीं'?"

"अपनी अपनी पसंद है। मुझे दुखांत कहानी और गाने ज़्यादा अच्छे लगते हैं। साहित्य में दुखांत का स्थान ऊंचा माना गया है। मैं तो साहित्य के बारे में कुछ नहीं जानती, विज्ञान की छात्रा जो रही हूं, लेकिन मेरी भावनाओं को ऐसे गाने सुनने से बेहद राहत मिलती है।"

"सावित्री, जो भी दुख हो, उसे सीने से लगा कर रखने से दुख बढ़ता जाता है।

कुंठा की बेल को काटना ही पड़ता है। मुझे देखो, मैं विवाहित हूं लेकिन समाज के कितने लोग जानते हैं कि मेरे पति ने मुझे त्याग रखा है। उसने तो दूसरी शादी भी कर ली लेकिन मेरी मांग अभी भी भरी रहती है। शायद इसलिए कि भारतीय समाज में एक तलाक़शुदा नारी को स्वीकार नहीं किया जा सकता। मेरे मायके वालों ने उच्च शिक्षा दिलवा कर मुझे कामकाजी महिला होने की स्वीकृति दी किंतु उनके परिवार की लड़की पति के द्वारा त्याग दी गयी है, वह भी इसलिए कि वह लालची ससुराल वालों की शादी के बाद भी दहेज की मांग पूरी करने में असमर्थ थे। मैं आत्महत्या कर न सकी, जिस डोली में बैठ कर गयी थी वहीं से अरथी उठे, ऐसी सीख मेरे घर में दी गयी थी लेकिन जब मैं पति के घर से केवल अपने दुधमुंहे बच्चे को ले कर लौटी तो मेरी मां ने मुझे अपने आंचल में छुपा लिया। मुझे रोती हुई देख अपने आंसू बहाने के अतिरिक्त उसने सीख दी कि बंदरियों के मरे बच्चे की तरह कब तक छाती से इस दुख को लगाये रखेगी? उठ, अपने पैरों पर खड़ी हो, तेरा बच्चा पढ़-लिख कर ऐसे पिता से स्वयं बदला लेगा, वह कभी उसे माफ़ नहीं करेगा। मां ने मुझे वर्तमान में रहना सिखलाया और आज मैं गर्व से कह सकती हूं कि मैं उस पुरुष से जो मेरे जवान बेटे का बाप है, वह पिता अवश्य कहलाने का हक़दार है किंतु मेरे मन और तन पर उसका कोई अधिकार नहीं है, मेरी मांग केवल मेरे बच्चे के उज्ज्वल भविष्य के सौभाग्य की प्रतीक है।"

सावित्री को लगा, आज मिसेज़ दास का मन बंधे फूट की तरह फट पड़ा है। मानो अपने जीवन की करुण गाथा को वह बिना पूछे ही बतलाने के लिए बाध्य हों। सावित्री ने उसे सहज करने के लिए पूछा, "आजकल आपके साथ कौन कौन रहता है? आपका बेटा तो मेडिकल की पढ़ाई करने पूना चला गया होगा?"

"मैं आजकल बिलकुल अकेली हूं। मां को मरे चार साल हो गये हैं, पिता जी भाई के परिवार के साथ रहते हैं। वैसे भी वह पुत्री के साथ रहने के लिए सहमत नहीं थे," मिसेज़ दास ने पर्स उठा कर वहां से चलने का आदेश दिया तो सावित्री ने चुपचाप उस आदेश की पूर्ति की। दोनों में कई दिनों तक एक अनकही संधि बनी रही, न ही सावित्री ने कुछ पूछा, न ही मिसेज़ दास ने अपने अतीत की चर्चा की, फिर भी उन दोनों में संवेदनाओं की पहचान द्वारा शब्दातीत वार्तालाप चलता रहा।

एक दिन सावित्री की बड़ी सी आंसुओं की बूंद मिसेज़ दास के पर्स पर टप से गिरी तो मिसेज़ दास ने चौंक कर उस ओर देखा, उसने सावित्री के अथाह दुख को समझा और उसे अपनी बांहों में समेट लिया। उसने मन ही मन प्रतिज्ञा की कि वह उसे अकेले नहीं छोड़ेगी, उसकी छाया बन दफ्तर में पूरी निगरानी करती रहेगी। यह तो एक मानव की दूसरे मानव के प्रति सहज उपजी अनुदारता है।

सावित्री ने मिसेज़ दास के प्रति दिनोंदिन बढ़ते अपने भावनात्मक लगाव को समझने का प्रयत्न नहीं किया। विषाद रोग हो जाने के बाद से सावित्री में कोमल भावनाएं पथरा सी गयी थीं, केवल वह अपने वैज्ञानिक कार्यक्षेत्र में पूरी निष्ठा के साथ

काम करने लगी थी। शायद इस कामकाज में उसे पहले जैसा आनंद आने लगा था। इसीलिए वह लगन से यह कार्य करती और वही उसके जीवन का उद्देश्य बन गया था। मिसेज़ दास भी उसे एक मशीन की तरह कार्यरत देख कर मन ही मन संतुष्ट थीं।

फरवरी मास के आते ही वैज्ञानिक जगत में कई एक सेमिनार, गोष्ठी, वर्कशाप, आदि का आयोजन होता है, सावित्री को अपने नये शोधकार्य का निरीक्षण करवाने का इससे अच्छा क्या मौक़ा हो सकता था, किंतु वह अपने को ऐसे दर्पण में देख सकने के लिए क़तई तैयार नहीं कर पा रही थी। मिसेज़ दास के अतिरिक्त उसकी लैब में अन्य सहकर्मचारियों ने उसे तर्कों द्वारा बाध्य किया कि वह ऐसे सुअवसर को हाथ से न जाने दे, इस बार शोधकार्य के लिए अवश्य ही उसे अपना पेपर भेजना चाहिए। मिसेज़ दास ने स्वयं पोस्ट ऑफिस जा कर अपना और उसका रजिस्ट्रेशन का चेक और शोधकार्य का सारांश लिखवा कर भेज दिया। सावित्री को एकाएक अनेक सहकर्मियों का स्नेह अंदर ही अंदर झकझोर कर रख रहा था। वह तो अपने को मशीन की तरह व्यस्त रहने में सुरक्षित पाती थी, अपने शोध की चारों ओर चर्चा का विषय बनने में उसे भय लगने लगता मानो बरसात की बौछारें उसके सारे कपड़ों को भिगो कर रख गयी हों। वह शर्म से जड़ी जा रही थी। मिसेज़ दास ने बड़ी चतुराई से साथ निभाया। उसके अनुसार आजकल के वैज्ञानिक थोड़ा सा कार्य करके चारों ओर उसकी पब्लिसिटी करते फिरते हैं, जबकि उसका कार्य काफ़ी ठोस है और निस्संदेह पूरे दफ़्तर को उसकी ख्याति से सरकार द्वारा बड़ा अनुदान मिल सकता है, भविष्य में मोटी रकम मिलने पर सबको फ़ायदा होगा। अस्तु, उसे सहकर्मचारियों की ऊंची-निजी बातों को सुन कर प्रभावित नहीं होना चाहिए, उसका अपना फ़ायदा क्या है, इसका पता अवश्य रखना चाहिए। यह सब सुन कर सावित्री सहम गयी। यदि वह अपना पेपर जा कर इस कॉन्फ़्रेंस में नहीं पढ़ पायी तो उसकी अच्छी तरह से दफ्तर में निंदा होगी, आगे बढ़े कदम को पीछे हटा सकना संभव था इसीलिए सावित्री ने मिसेज़ दास के साथ जा कर पेपर पढ़ने में ठंडी सांस ली।

कॉन्फ़्रेंस में अन्य कई विशिष्ट वैज्ञानिक देश और विदेश से आये हुए थे, विशेषकर विदेशी वैज्ञानिकों ने स्वयं आ कर सावित्री को उसके शोधकार्य के लिए बधाई दी और कई महत्त्वपूर्ण सुझाव भी दिये। एक ने उसे रात्रि के भोजन के लिए भी आमंत्रित किया किंतु सावित्री ने उसका निमंत्रण स्वीकार नहीं किया। वहां से अपना पीछा छुड़ाने के लिए वह एक कॉन्फ़्रेंस हॉल के खुले प्रांगण में अकेली आ कर बैठ गयी। सहसा कोई परिचित आवाज उसके कानों में गूंज उठी। आगे बढ़ कर देखा तो पाया कि सत्यवान अपनी मित्र मंडली सहित कॉन्फ़्रेंस हॉल की ओर चला आ रहा है। सावित्री ने सोचा अवश्य ही सत्यवान उसे प्रांगण में बैठा देख उसकी ओर आ कर भेंट करने आयेगा, किंतु सत्यवान ने सावित्री को देख कर भी अनदेखा करने का नाटक किया। वह तेज़ी से क़दम बढ़ा कर हॉल में दाख़िल हो गया और पहली पंक्ति में जा कर

बैठ गया। सावित्री इस विचित्र व्यवहार से चकित थी, किंतु उसने दृढ़ निश्चय किया कि वह स्वयं सत्यवान से मिलने के लिए पहल नहीं करेगी। अपने मन-मस्तिष्क में उठे तूफ़ान दबा कर वह सभागार की तीसरी पंक्ति में जा कर बैठ गयी और चुपचाप वहां की कार्रवाई सुनने का प्रयत्न करती रही।

सत्यवान ने पीछे मुड़ कर कई बार सावित्री को घूर घूर कर देखा, लेकिन सावित्री टस से मस नहीं हुई। सत्यवान को बार बार पीछे मुड़ कर सावित्री को देखने की धृष्टता को एक चतुर वैज्ञानिक ने परख लिया, "अरे, डॉक्टर साहब, आपकी नज़रें जिस नाज़नीं को ढूंढ़ रही हैं, उसको अपने शोधकार्य में स्वर्ण पदक मिलने वाला है।"

सत्यवान ने लापरवाही भरे किंतु ऊंचे स्वर में जवाब दिया जोकि सावित्री को साफ़ सुनायी पड़ा, "ओह, मुझे तो पता भी नहीं है, आज सुबह की कार्रवाई क्या हो चुकी। मेरा हवाई जहाज़ तो ग्यारह बजे आया, वहां से मैं अभी अभी आ रहा हूं। नये उभरते हुए वैज्ञानिकों के बारे में मुझे कोई जानकारी नहीं है। भई, एक उम्र तक अभिरुचि ली जा सकती है, मैं तो अब लैब में काम कम करता हूं, डायरेक्टर होने के बाद से केवल प्रशासन में मेरा सारा समय जाता है, लोग बाहर मेरे पास भेंट करने के लिए घंटों इंतज़ार करते हैं।"

इतनी गर्वीली बातें सुन सकना सावित्री के लिए असहनीय हो उठा। वह वहां से उठ कर तुरंत बाहर आ गयी। वापस कमरे में आ कर उसने मिसेज़ दास को आराम से सोते हुए पाया। कुछ समय एकांत में अपने आपको पा कर सावित्री शांत हुई। उसने झटपट कपड़े बदले और गाउन पहन कर सोने का उपक्रम करने लगी, किंतु मस्तिष्क में उठे तूफ़ान के कारण वह केवल करवटें बदलती रही। सत्यवान के डायरेक्टर बन जाने की ख़बर पा कर वह इस उपलब्धि से खुश थी, किंतु सत्यवान का गर्वीलापन उसे असहनीय लगा। जिस उपेक्षा से उसने आज तिरस्कृत किया, इसका बदला वह ले कर रहेगी। वह भी एक मनुष्य है, उसकी भावनाओं के साथ खिलवाड़ करने का सत्यवान को कोई अधिकार नहीं है—चाहे वह डायरेक्टर क्या, भगवान क्यों न बन जाये। उसे सत्यवान से कुछ नहीं लेना-देना। अपनी नादानी के कारण ही अब तक सत्यवान द्वारा उसका शोषण हुआ है किंतु भविष्य में कदापि संभव न होगा। एकाएक क्रोध, ग्लानि और विरह वेदना से सावित्री का दम घुटने लगा। उसे लगा, उसके साथ घोर अन्याय हुआ। काश, वह सभागार में जा कर समस्त वैज्ञानिकों के सामने सत्यवान के कुचरित्र की धज्जियां करके उसके वास्तविक रूप को समाज को दिखलाती! अपने शोध के लिए सुबह प्राप्त प्रशंसा को ध्यान में रख कर उसने ऐसा पागलपन करना मूर्खता समझा, किंतु मिसेज़ दास को गहरी नींद में सोते देख उसे उससे भी वितृष्णा हो उठी। यह नारी पति के अमानुषी रूप को झेलने के बाद अपनी सारी कड़वाहट मानो शब्दों में व्यक्त कर देती है। इसकी निद्रा, भूख, प्यास पर उसका कोई भी असर नहीं पड़ता, जबकि उसे अतीत की कोई भी घटना लाख भुलाने पर भी नहीं भूलती, वह तो उसके मन और मस्तिष्क

पर सदैव के लिए अमिट छाप छोड़ कर रख गयी है। उसके लिए जीना भी एक मजबूरी है, किसी में कोई आनंद नहीं आता, सोचते सोचते सावित्री बिसूर बिसूर कर रोने लगी। उस कातर ध्वनि ने मिसेज़ दास की गहरी नींद को उचाट कर रख दिया।

मिसेज़ दास ने फ़ौरन उठ कर सावित्री को गले से लगा लिया। सावित्री अपने ख़ून के आंसुओं को पीती हुई भर्रायी अवाज़ में बोली, "मैंने आपसे कहा था न कि मुझे कॉन्फ़्रेंस में नहीं जाना, आप मुझे यहां ज़बरदस्ती खींच कर ले आयीं। जिसका अनुमान था, वही हुआ। मुझे अपने हाल पर छोड़ दीजिए, प्लीज़!" इसके आगे कुछ कहने के लिए सावित्री की जिह्वा पर ताला लग गया था।

"अरे, आज सुबह तुम्हारे पेपर को अच्छी तरह लोगों ने रिसीव किया, इतनी प्रशंसा की कि सुनते हैं, तुम्हें स्वर्ण पदक मिलेगा, फिर क्या बात हो गयी? मेरी समझ में कुछ नहीं आ रहा है, तुम बेहद उद्विग्न हो गयी हो, किसने क्या कहा तुमसे?"

"मुझसे कुछ भी मत पूछिए, मुझे बस अपने हाल पर छोड़ दीजिए।" रुंधे गले में दबे आंसुओं की धार फिर से आंखों से आ गले पर बहने लगी। मिसेज़ दास की समझ में कुछ नहीं आ रहा था, वह चुपचाप अपने पलंग पर आ कर बैठ गयीं।

कुछ देर बाद सावित्री सहज हो कर बाथरूम में जा कर हाथ-मुंह धो कर आयी तब भी मिसेज़ दास ने अपनी जिज्ञासा को दबा कर रखना उचित समझा क्योंकि उसे पता था कि सावित्री अत्यधिक अंतर्मुखी व्यक्तित्व की है, स्वयं ही अपनी भावनाओं के अंतराल से निकलने के बाद कुछ कहने-सुनने में समर्थ होगी। वह किसी भी क़ीमत पर सावित्री की भावनाओं को ठेस नहीं पहुंचाना चाहती थी। यही मौन हो जाना सावित्री के लिए कवच सिद्ध होता था।

धीरे धीरे शाम का अंधियारा कमरे पर छाने लगा। वैज्ञानिक समारोह में शाम के वक़्त अच्छे सांस्कृतिक प्रोग्राम आयोजित होते हैं, उसके बाद प्रीतिभोज आदि का प्रबंध होता है। सावित्री को उदास बैठे देख कर, विषय परिवर्तन करने के लिए मिसेज़ दास ने सुझाव दिया, "आज शाम भीमसेन जोशी का गायन है, उसके बाद कोई नृत्यांगना का भरतनाट्यम है और रात्रि के भोजन में सब ही लोग आमंत्रित हैं। कोई अच्छी दवाई की कंपनी द्वारा प्रीतिभोज का निमंत्रण दिया गया है, वहां पर जाना उचित रहेगा, इस कमरे में मेरा दम घुटा जा रहा है।"

"आप तैयार हो कर अवश्य शाम का सांस्कृतिक कार्यक्रम देखें और प्रीतिभोज के बाद ही आयें, मुझे माफ़ करें।"

"किंतु तुम्हें पता है कि मैं तुम्हें अकेले छोड़ कर नहीं जाऊंगी, तब यह हठ कैसी? एकाएक तुम्हें क्या हो जाता है सावित्री, अच्छी-भली सुबह तक थीं?"

"कैसे बतलाऊं, इतना ही जानना पर्याप्त है कि मैं यहां आ कर बेहद पश्चात्ताप की अग्नि से झुलस रही हूं।"

"यह सब मेरे कारण हुआ। न मैं तुम्हें खींच कर यहां लाती, न ही तुम्हारा मूड फिर

से गड़बड़ा जाता। इस तरह मैं अकेले जा कर आनंद कैसे उठा सकती हूं, भाड़ में जाये संगीत और प्रीतिभोज!" खीजते हुए मिसेज़ दास ने अपना निर्णय सुनाया।

"मैं आपकी जगह होती तो ऐसा ही करती किंतु मुझसे अधिक सुलझी हुई आप एक परिपक्व महिला हैं। मेरी अपनी कुछ मजबूरियां हैं। उसे बता कर मैं आपका चित्त दुखी नहीं करना चाहती। मेरे लिए संसार में कोई नहीं है जो मेरा दुख समझ कर बांट सके, मुझे तिल तिल कर इसी तरह नष्ट होना है।"

"मैं उसकी साक्षी हो कर तुम्हें विनाश की गर्द में नहीं जाने दूंगी। ज़रूर तुम्हारी भेंट ऐसे व्यक्ति से हुई है जिसने तुम्हें बुरी तरह फिर से हिला दिया है। वह व्यक्ति मुझे मिल जाये तो मैं उसे झकझोर कर रख दूं। तुम्हारी जैसी मेधावी लड़की को ऐसे व्यक्ति का खिलौना नहीं बन जाना चाहिए, जब चाहा खेला और उसे पटक कर तोड़ दिया।"

सावित्री मिसेज़ दास की ये बातें सुन कर अवाक् रह गयी। उसकी बर्फ पड़ी कोमल भावनाओं पर मानो सूरज की किरण ने चुपके से आ कर अपनी छाप छोड़ दी हो! मिसेज़ दास की इस तर्क युक्ति को काट सकना संभव न था, "यदि संगीत प्यार की भूख के लिए भोजन है, तो उसे बजने दो (If music is the food of love, let it be played)। जानती हो, शेक्सपियर ने कहा है, इसलिए जल्दी करो, भीमसेन जी के आलाप को सुन कर तुम्हें अवश्य शांति मिलेगी।" अनमने मन से सावित्री ने उठ कर मिसेज़ दास के साथ तैयार हो कर बाहर जाने का निश्चय किया। कमरे में पड़ी ड्रेसिंग टेबल के सामने बैठ कर उसने अपने बालों को नयी रीति से बनाया और एक बढ़िया सी साड़ी का चुनाव किया। सजधज कर वह अपना प्रतिबिंब दर्पण में देख वितृष्णा से भर उठी। उसे लगा, आज शाम को वह सत्यवान को दूर से लुभा कर इतना तड़पायेगी कि वह चैन की नींद न सो सकेगा। किसी भी प्रलोभन में आ कर अब वह सत्यवान के हाथ का खिलौना न बनेगी। शायद हर पुरुष को अपनी ओर आकर्षित कर तड़पा तड़पा कर बदला लेने में उसके मन को शांति मिल सकेगी। सावित्री का यह दिवास्वप्न मिसेज़ दास की आवाज़ से टूट गया, "जल्दी करो, तुम्हें तैयार होने में इतनी देर क्यों लग रही है? वहां देर से जाने पर शायद बैठने के लिए कोई कुर्सी भी न मिले।"

"अभी आयी, लेकिन शास्त्रीय संगीत को कितने वैज्ञानिक सुनने में दिलचस्पी लेंगे, वहां तो वैज्ञानिकों के परिवार के लोग ही आते होंगे, विशेषकर वे जो पूरे दिन हमारी शुष्क वैज्ञानिक चर्चाओं को सुनते सुनते ऊब उठे होंगे।"

"यह तो वहां पहुंच कर पता लगेगा, शहर के प्रतिष्ठित कलाप्रेमी भी भीमसेन जी को सुनने आये होंगे," कहते हुए मिसेज़ दास ने खींच कर सावित्री को कमरे से बाहर किया।

फ़रवरी मास की बसंती हवा का झोंका दोनों को एक अनोखी मस्ती में भरता हुआ पंडाल की ओर तीव्र गति से खींचता हुआ ले आया। दोनों ने बीच में बैठना उचित समझा, क्योंकि सावित्री को भय था कि उसका मन देर तक शास्त्रीय संगीत के साथ बंध

नहीं पायेगा, पहली पंक्ति में बैठ जाने से उठने में संगीतकार का अपमान होगा, किंतु संगीत की लहरों में अपने आपको खो देने के बाद दोनों को पता ही नहीं चला कि समय कैसे गुज़र गया। नृत्य देखना भी दोनों ने अनिवार्य समझा। सावित्री को लालच था कि नृत्य देखने सत्यवान अवश्य आयेगा, क्योंकि उसके उपरांत प्रीतिभोज था, वह दोनों में शामिल होना ज़रूरी समझेगा। मिसेज़ दास की अभिरुचि इसके अतिरिक्त सावित्री के मन बहलाव के प्रति सदैव थी। यहां आ कर सावित्री का बदला हुआ मूड देख कर वह अंदर ही अंदर बेहद ख़ुश थी। अतएव जितनी देर तक यहां बैठ सके उतनी देर तक वह सावित्री के साथ बैठे रहने के लिए कृतसंकल्प थी। नृत्यांगना के भाव प्रदर्शन में विरही राधा का मान देख सावित्री ने सहज ही उसके साथ अपने को स्वीकार कर लिया किंतु कृष्ण को अपनी मानिन प्रिया को अनुराग से मनाने की अभिव्यक्ति देख वह उद्विग्न हो उठी, सत्यवान के प्रति उपजी क्रोधाग्नि फिर से धधक उठी। अपने तिरस्कार का प्रतिशोध लेने की उत्कंठा में सावित्री सत्यवान को पंडाल में खोजने लगी। चारों ओर आंखें दौड़ा दौड़ा कर देखा किंतु कहीं भी सत्यवान दिखलायी नहीं दिया। खीज कर सावित्री पंडाल में मिसेज़ दास को छोड़ बाहर आ गयी। बाहर आ कर देखा, वहां प्रीतिभोज का भंडार तैयार था। कुछ विदेशी वैज्ञानिक मदिरा भरा गिलास लिये चुस्की ले रहे थे और कुछ भारतीय वैज्ञानिक मदिरापान इतनी तीव्रता से कर रहे थे मानो भरा हुआ चस्क अभी ही ख़ाली हो जाने वाला हो। सावित्री को अकेले आते देख कुछ विदेशी वैज्ञानिकों ने आगे बढ़ कर उसका स्वागत किया, "Welcome you are looking wonderful" (स्वागत है, आप बहुत अच्छी लग रही हैं)।

सावित्री अपने रूप की प्रशंसा सुन कर शर्म से लाल हो गयी, तब ही एक नौजवान विदेशी वैज्ञानिक ने सहज भाव से पूछा, "Do you care to take something with us? Join our company (आप कुछ पेय पदार्थ लेना पसंद करेंगी? क्यों न हमारे साथ रहें)?" सावित्री की आंखें सत्यवान की खोज में उसे यहां तक ले आयी थीं, किंतु यहां आ कर दूर दूर तक सत्यवान की परछाईं भी उसे नहीं दिख रही थी, खीज में आ कर उसे लगा, आज वह सारे बंधन तोड़ कर रख दे, इतनी अधिक मदिरापान करे कि उसे होश न रहे। इस इच्छा के प्रबल वेग के साथ सावित्री आज लुढ़क पड़ती किंतु भाग्यवश एक भारतीय वैज्ञानिक ने सतर्कता के साथ कहा, "रस का जूस या कोल्ड ड्रिंक का प्रबंध अवश्य होगा। हमारे यहां संभ्रांत महिलाएं मदिरापान नहीं करतीं।"

"ऐसा क्यों? मैं तो भारतीय नारी को वैज्ञानिक जगत में पुरुषों से किसी बात में पीछे नहीं देखता हूं, पुरुष तो यहां इतनी ज़्यादा शराब पीते हैं और नशे में बहक तक जाते हैं, फिर नारी को शराब पीने की आज़ादी क्यों नहीं दी जाती? भारत को समझ पाना हम विदेशी लोगों के लिए बेहद कठिन है," कह कर वह वैज्ञानिक सावित्री को ललचायी हुई कामदृष्टि से देखने लगा। सावित्री के लिए इतने सारे पुरुषों के बीच अकेली खड़ी रहने का यह पहला अवसर था। उसे लगा, मानो द्रौपदी की तरह उसे इस

सभा में ला कर सत्यवान द्वारा अपमानित किया जा रहा है। वह अपने को इस सुसंस्कृत मायाजाल के चंगुल से बचा कर सुरक्षित रखने में असमर्थ है। इस दयनीय अवस्था में केवल उसे भगवान का ही सहारा है। उसके हृदय से उठी पुकार को सुनते ही करुणामय भगवान मानो वहां प्रकट हो गये हों। उसके गुरु डॉ. विमोचन सिन्हा साहब ने सावित्री को अपनी ओर दूर से ही बुलाने के लिए अपना हाथ ऊंचा उठा कर इशारा किया। सावित्री ने संकोच भरे शब्दों में 'सॉरी, प्लीज़' (मुझे कृपया माफ़ करें) कह कर वहां से अपना पीछा छुड़ाया। गुरु ने स्नेह से उसकी पीठ थपथपायी और सुबह की सभा में उससे अच्छी प्रस्तुति के लिए हृदय से बधाई दी, "मुझे पता था एक दिन तुम अच्छी शोधकर्ता सिद्ध होगी, नहीं तो एक दिन···"

"क्या, सर, नहीं तो···? वाक्य पूरा करते आप रुक क्यों गये?"

"भाई, सुन कर तुम्हें बुरा लग जायेगा।"

"नहीं सर, आपकी बातों से अवश्य मुझे ज्ञान प्राप्ति होगी, बहुत दिनों से आपकी शिक्षा मिलने का सौभाग्य नहीं मिला है।"

"तो सुनो, मुझे लगता था, यह छोटी सी शर्मीली लड़की जो अकेली इतने बड़े विश्वविद्यालय में खोयी खोयी रहती है, यदि यहां कुछ न बन पायी तो अवश्य ही वह पागल हो जायेगी।"

"सर, कैसे पता कि मैं पागल नहीं हूं?" कह कर सावित्री ने डॉ. सिन्हा को अचरज में डाल देने की धृष्टता की किंतु डॉ. सिन्हा ने बड़ी गंभीरता से सावित्री को सिर से पैर तक घूरते हुए संयत स्वर में कहा, "तुम पागल नहीं हो, क्योंकि तुम स्वयं के पागलपन को पहचान रही हो। लगता है, समय के अंतराल में तुम्हें बोलना आ गया है। कैसी हो सावित्री? विवाह आदि संपन्न हुआ है या नहीं?"

"नहीं, सर। अभी तक तो नहीं और भविष्य में भी ऐसा कुछ करने का अवसर आता नहीं दिखता। आपको पता नहीं, मैं अपनी विधवा मां की एकमात्र संतान हूं, उनकी उचित देखरेख करना शादी करने के बाद संभव न होगा।"

"मां-बेटी दोनों को स्वीकार करने के लिए अवश्य ही ऐसा तुम्हारे लिए उपयुक्त संबंध मिलना टेड़ी खीर है।"

"आपके आशीर्वाद से नौकरी अच्छी मिल गयी है, शोधकार्य करने की पूरी कोशिश करती हूं, आगे भगवान के भरोसे पर हूं।"

"सब कुछ भगवान के भरोसे पर छोड़ देना मुझे समझ में नहीं आता, "दैव दैव आलसी पुकारा', क्या तुम अपना भविष्य अपने स्वप्नों के अनुसार···"

वाक्य को बीच में काटते हुए सावित्री ने खीज कर कहा, "सबके स्वप्न कहां पूरे होते हैं, आम हिंदुस्तानी भगवान के भरोसे पर जीने के लिए बाध्य है।"

"इतनी छोटी उम्र में ही तुम निराशावादी हो गयी हो। आशा है, भविष्य में जब मैं तुम्हें मिलूं तब तुम अधिक सुखी मिलोगी, यही मेरा हृदय से तुम्हें आशीर्वाद है।"

गुरु से आशीर्वाद प्राप्त करके सावित्री का मन पुलक उठा। उसने आगे बढ़ कर गुरु के पैर छू लिये। डॉ. सिन्हा ने अपने पैर पीछे करते हुए प्रेम से उसे उठाते हुए कहा, "अरे हमारे यहां लड़कियां पैर नहीं छूतीं, हम तो अपनी कन्या के पैर पूजते हैं।"

डॉ. सिन्हा से विदा ले कर सावित्री स्वतंत्र पक्षी की तरह किसी परिचित चेहरे की खोज में निकल पड़ी। पंडाल में इस समय कुछ ही लोगों का जमघट लगा हुआ था। भोजन का प्रबंध हो चुका था किंतु कोई भी खाने की प्लेट ले कर परोसने नहीं जा रहा था। बातचीत का शोरगुल और हंसी की ध्वनि से सावित्री का मन खिल उठा। वह ध्यान से पंडाल की रंगसज्जा को निहाराने लगी। वैज्ञानिक सत्र में उसने इस सौंदर्य की ओर ध्यान ही नहीं दिया था, किंतु मनमोहक रूप से फूलों द्वारा अभिनंदन द्वार सजाया हुआ था, बिजली के अनेक रंग-बिरंगे बल्बों से प्रकाशित मेज़ों पर भोजन की सामग्री को अति चतुरता से सजा कर रखा गया था। इतने प्रकार के स्वादिष्ट भोजन और मिष्ठान्न का आमंत्रण पा कर सावित्री की क्षुधा जाग उठी। उसने सुबह केवल जलपान किया था, दोपहर का भोजन वह खा न सकी थी। सत्यवान की अवेहलना को सहन करने में उसकी भूख, प्यास, नींद सब ग़ायब हो गयी थी। अपने को हलका पा कर उसने सत्यवान को ढूंढ़ने के प्रयास को निरर्थक समझना ही उचित समझा, लेकिन इतनी रात बिलकुल अकेले घूमने में उसे असुरक्षा अनुभव हो रही थी। काश, मिसेज़ दास को ले कर वह आती! सावित्री ने मिसेज़ दास की दोपहर से कोई भी बात आसानी से नहीं मानी है। शायद इसीलिए वह रूठ गयी होंगी। वह कमरे में जा कर अपनी त्रुटि के लिए उससे क्षमा अवश्य मांग लेगी, क्योंकि फिर वह सत्यवान के प्रति अपनी मानसिक त्रासदी को ले कर अपनी प्रिय मां और अब सहेली मिसेज़ दास पर झुंझलाहट क्यों उतारती रहती है? सावित्री की विचारधारा को किसी अपरिचित विदेशी वैज्ञानिक ने झकझोर कर रख दिया, "Oh, I have been trying to follow you for sometime but you are not giving me any chance even to say good evening (मैं आपका पीछा कितनी देर से कर रहा हूं किंतु आप मुझे अभिवादन तक करने का मौक़ा नहीं दे रही हैं)," कहते हुए उसने अपना हाथ बढ़ा कर सावित्री से हाथ मिलाना चाहा किंतु सावित्री ने फीकी मुस्कान द्वारा अभिवादन की स्वीकृति दी किंतु अपना हाथ पीछे कर लिया। खिसिया कर वह बोला, "मुझे आपकी भाषा नहीं आती, न ही आपके रीति-रिवाज, हमारे यहां हाथ मिला कर अभिवादन किया जाता है। मैंने विज्ञान के सत्र में सबसे हाथ मिलाये हैं, किंतु आप पहली महिला हैं जिसने अपना हाथ खींच लिया। क्या आप मुझसे मित्रता करना पसंद नहीं करतीं, दोपहर में भी आपने अपना पीछा छुड़ा लिया था। मैं अनुगृहीत हूंगा यदि आप अपना…"

"ऐसी कोई बात नहीं है, आप मेरे व्यवहार को अन्यथा न लें, प्लीज़," उसकी बात को काटते हुए सावित्री ने सहज भाव से कहा।

"इसका मतलब है कि आपकी संगति में मैं कुछ देर बातचीत करने का सुख उठा

सकता हूं! सुबह से देख रहा हूं कि आपके साथ कोई महिला पूरे वक़्त रहती थी, इस समय नहीं है इसीलिए मैं आपका पीछा कर सका।" अपनी पैनी दृष्टि को सावित्री की आंखों में झांकते हुए उस वैज्ञानिक ने सावित्री को विस्मय में डालते हुए कहा, "मैं समझा था कि आप दोनों महिला लैंगिकता···" एकाएक वह रुक गया।

"मेरी वह अच्छी सहेली और सहकर्मचारी है। हम दोनों एक साथ यहां आये हैं और एक ही कमरे में ठहरे हुए हैं। इस समय वह सांस्कृतिक कार्यक्रम देख रही है, कुछ देर बाद आ जायेगी। आपको दो महिलाओं को एक साथ देख कर हैरानी नहीं होनी चाहिए, भारत में यह आम बात है, पुरुष एक साथ चलते हैं, स्त्रियां एक साथ उठती-बैठती हैं।"

"वह तो रूढ़िवादी भारतीय परंपरा का अंग है, यहां तो स्त्री-पुरुष दोनों ही कंधे से कंधा मिला कर अपने अपने विचार प्रकट कर रहे हैं, दोनों में एक समान आत्मविश्वास है और विज्ञान के प्रति एक सच्ची निष्ठा, फिर शाम को सामाजिक रूप से क्यों अलगाव?"

तर्क अकाट्य था। सावित्री ने चुप रह कर उस वैज्ञानिक को बोलने के लिए ज़रूरत से ज़्यादा छूट दे दी। "मैं खुद भी नारी स्वतंत्रता के आंदोलन के ख़िलाफ़ नहीं हूं लेकिन जब मैं स्त्रियों को अपनी कामवासना की तृप्ति के लिए महिला को केवल उपयुक्त पात्र के रूप में देखता हूं तो मुझे लगता है, अवश्य ही यह क्रांति काम अभिघात (trauma) की परिणति है, ऐसी स्वतंत्र नारी पुरुष पर भी आघात (shock) लगा देती है। मुझे लगा, आप उच्च कोटि की वैज्ञानिक होते हुए भी कोमल और अति संवेदनशील हैं, इसीलिए आपसे मित्रता की खोज में आ गया हूं और अपने विचार स्पष्ट रूप से कह सका हूं।"

यह सब सुन कर भी सावित्री ने अपनी चुप्पी नहीं तोड़ी। खीज कर वह वैज्ञानिक सावित्री को भोज से पहले एक कप कॉफ़ी साथ साथ पीने का आग्रह करने लगा। सावित्री ने अपनी असमर्थता में कहा, "मुझे रात को कॉफ़ी पी कर नींद नहीं आती। आप अपने लिए कॉफ़ी अवश्य ऑर्डर करें, मैं कुछ देर के लिए आपका साथ अवश्य दूंगी लेकिन मैं अपनी सहेली की प्रतीक्षा में हूं, उसके आते ही मुझे जाना पड़ेगा। आशा है, आप अन्यथा न सोचेंगे।"

"चलिए, इसी बहाने आपकी कंपनी का लाभ मिलेगा। यदि आप उचित समझें तो आपकी सहेली और मेरे मित्र किसी सुंदर स्थल की कल यात्रा कर आयें। कई पर्यटन संचालक (tourist guide) मेरे पीछे पड़े हैं कि आसपास यहां कई एक रमणीक देखने योग्य स्थल हैं। हम वैज्ञानिक इतना समय कब निकाल पाते हैं कि मौज-बहार पर निकल पायें।"

"मुझे पता नहीं कि मेरी सहेली को आपका प्रस्ताव रुचिकर लगेगा कि नहीं," तटस्थता के भाव से सावित्री ने कहा।

"यदि आप आग्रह करेंगी तो वह क्यों स्वीकार नहीं करेंगी किंतु वह न भी चलें, आप तो अपना निर्णय लेने में स्वतंत्र हैं।"

"स्वतंत्रता के साथ साथ ज़िम्मेदारी का भी ख़याल रखना पड़ता है," अपना पल्ला झाड़ते हुए सावित्री ने कहा।

"मैं आपको बाध्य नहीं करना चाहता, लेकिन पता नहीं क्यों, पहली भेंट में ही आप मुझे इतनी अच्छी लगने लगी हैं कि आपसे घनिष्ठता बढ़ाने की मेरी इच्छा तीव्रतम हो उठी है। हमारे देश में स्त्री-पुरुष के युगल जोड़े ऐसे ही आकर्षण में मुलाक़ात बढ़ाते जाते हैं, और प्रेम के बंधन में बंध जाने पर उनका विवाह तक हो जाता है।" अपनी इच्छा को दर्शाने के लिए उसने सावित्री का हाथ अति कोमलता से एकाएक दबा दिया।

सावित्री सर्प की भांति फन उठा कर दर्प से बोली, "मुझे आपकी सभ्यता की बातों में रुचि नहीं है। आप भूल रहे हैं, मित्रता दोनों हाथों के समान जुड़ने से होती है।"

"अवश्य, मैं भूल गया था कि भारतीय नारी अपनी लंबी साड़ी में छिपा कर पूरा सुंदर शरीर रखना पसंद करती है, अपनी अंगुली को भी किसी को छूने नहीं देती, केवल उसका ऊपरी वस्त्र (ब्लाउज़) जो नाभि (umbical) को खुला रखता है, वही औरों की दृष्टि को अपनी ओर केंद्रित कर लुभाता रहता है। अच्छा, आज की इस छोटी सी मुलाक़ात के लिए अनेक धन्यवाद। यदि मैंने आपकी मान-मर्यादा का अतिक्रमण किया हो तो उसे मेरी नादानी समझ माफ़ करें," कह कर वह वैज्ञानिक तीर की तरह निकल गया।

सावित्री ने चैन की सांस ली। उसे लगा, यह वैज्ञानिक अत्यधिक वाचाल होते हुए भी संवेदनशील था। इतनी जल्दी समझ गया कि यहां पर दाल नहीं गलने वाली। हो सकता है, विदेशी होने के कारण वह हमारे समाजीकरण के रीति-रिवाजों से अनभिज्ञ है, जैसे इस विदेशी के वार्तालाप में बहुत सी बातें समझ में नहीं आयीं, विशेषकर दो महिलाओं की मित्रता की घनिष्ठता में किस तरह से कामुकता का स्थान दे दिया जाये? काश, सत्यवान में इस विदेशी वैज्ञानिक की संवेदनशक्ति का सतांश भी होता। सहसा सावित्री के सामने सत्यवान का दर्पित चेहरा कौंध गया। वह ठगी सी एक ओर सत्यवान की प्रतीक्षा में आंखें बिछाये खड़ी है, उसके सामने खड़ा सत्यवान अपने डायरेक्टर पद के गर्व में फूला नहीं समा रहा है, सावित्री को अनदेखा करते हुए वह चपल गति से दूसरी ओर चला जाता है, एकाएक सावित्री का यह द्विवास्वप्न टूट पड़ा क्योंकि मिसेज़ दास की कोमल बांहें गरदन पर झूल कर उसकी चेतना को जगाने का प्रयत्न कर रही थीं, "अरे मैंने तुम्हें कहां कहां नहीं ढूंढ़ा, तुम्हें पता भी नहीं कि मैं तुम्हें हिला रही हूं, तुम्हारा ध्यान कहां खो गया है?" प्यार से झकझोरते हुए मिसेज दास ने सावित्री को भोजन के लिए बाध्य किया, "मुझे तो बड़ी ज़ोर से भूख लग रही है, शास्त्रीय संगीत सुन कर मुझे बड़ी शांति मिलती है, मेरी भूख-प्यास सब बढ़ जाती है, मेरा मन कर रहा था कि मैं भोजन कर लूं, लेकिन पता था कि तुम मेरे बिना खाने नहीं जाओगी। इसीलिए

तुम्हें ढूंढ़ कर थक गयी। चलो, मिल कर खायेंगे, शायद ही हमें अब कुछ खाने को मिले। इतने पढ़े-लिखे लोग भी खाने पर ऐसे टूट पड़ते हैं मानो ऐसा बढ़िया अच्छा खाना उन्हें कभी मिलता न हो।''

''ऐसी बात नहीं है, अच्छा खाना देख लालच आ जाता है,'' सावित्री ने सहज भाव से कहा, ''लेकिन आपने मेरे कारण अपनी भूख को दबा कर रखा, मैं आपके इस सच्चे प्यार के लिए हृदय से आभारी हूं।''

''ओह, आज इस औपचारिकता की क्या आवश्यकता है? खाना तो हम एक साथ खाने के आदी हो गये हैं। तुम्हारे बिना मेरे गले से वह नीचे न उतरता। देखो, मैं एक प्लेट में ज़्यादा खाना ले कर आती हूं फिर दोनों मिल-बांट कर खा लेंगे। यदि तुम लेने गयीं तो पता चला, वहां कुछ भी शेष नहीं रहा,'' हंसते हुए मिसेज़ दास खाना लेने चली गयीं।

सावित्री सत्यवान को इतनी रात तक खाने के पास न आते देख कर आश्चर्यचकित थी। उसे अच्छे खाने-पीने का शौक़ है, आज क्यों यहां आने से कतरा रहा है? हो सकता है, उसे भोज पर किसी अन्य ने आमंत्रित किया होगा, फिर भी वह चाहता तो यहां आ कर भेंट कर सकता था। मेरे साथ उसने यह निष्ठुर व्यवहार क्यों किया? इस प्रश्न का उत्तर देने के लिए सावित्री जितना अधिक सोचने की कोशिश करती उतना अधिक वह जटिल बनता गया। हार कर वह मिसेज़ दास से पूछ बैठी, ''क्या पुरुष सफलता के शिखर पर पहुंच कर अपने प्यारे व्यक्ति को भूल जाता है?''

''सब पुरुष ऐसे नहीं होते हैं। जो स्वयं से केवल प्यार करते हैं, उनके लिए किसी भी क़ीमत पर सफलता मिलना अति आवश्यक होता है, क्योंकि वह उनके स्वयं की मात्र होती है। मिलने पर वह फूले नहीं समाते। उस अहंकार के खो जाने के भय में वह अपने प्यारे से प्यारे व्यक्ति को सूली पर चढ़ा सकते हैं, पर तुम यह क्यों पूछ रही हो?''

''चलिए, कमरे में चल कर इसकी विस्तृत चर्चा करूंगी, आज बहुत दिनों के बाद मुझे किसी के व्यवहार से ठेस लगी किंतु उस ठेस ने मानो मेरे ज्ञानचक्षु खोल दिये हैं।''

''मुझे भी खुशी है कि तुम बहुत दिनों बाद इतनी जल्दी अपने मूड को ठीक कर सकी हो,'' कह कर मिसेज़ दास ने अपना ध्यान आइसक्रीम खाने में लगा दिया। उसके एक दांत में कीड़ा लग गया था इसीलिए ठंडी ठंडी आइसक्रीम खाने में उसे असुविधा हो रही थी किंतु वह आइसक्रीम का लोभ दबा न सकी।

सावित्री ने कमरे में आ कर मिसेज़ दास से अपने एक पुराने मित्र की वैज्ञानिक उपलब्धियों की चर्चा की, नाम आदि उसने बतलाना उचित नहीं समझा किंतु संकेत दिया कि वह मित्र आज अपनी सफलता के चरम शिखर पर पहुंच कर उसे भूल गया है। दोपहर में भेंट एकाएक आमने-सामने हो जाने पर वह उसे अनदेखा करता हुआ चला गया, ''ऐसा उसने क्यों किया?''

''शायद इसलिए कि तुम्हारी मित्रता को वह अपनी उच्च ख्याति में कलंक या

बाधक मानता हो। चार जनों के सामने वह तुम्हें जानता ही नहीं, इसी का नाटक कर रहा था, नाम-पता बतलाओ तो मैं उससे इस अपमान का""

मिसेज़ दास के वाक्य को काटते हुए सावित्री ने सशंकित हो कहा, "आप उससे बदला लेने के चक्कर में क़तई न पड़ें, वह वैज्ञानिक बहुत ऊंचाई पर पहुंच गया है। अगर उसके कान में भनक भी पड़ गयी तो वह आपकी नौकरी तक को ख़त्म करवा देंगे, ऐसी निर्मम हत्या दिन-दहाड़े करेंगे कि कोई जान भी न पायेगा कि मिसेज़ दास की नौकरी कैसे चली गयी।"

"मैंने तुम्हारे बिना बतलाये ही समझ लिया, वह कौन है जो तुमसे कतरा रहा है। मेरा अनुमान ग़लत न हो तो वह तुमसे मिलने खुद आया था तुम्हारी लैब में, उसी के बाद तुम्हें तिलतिल कर जलते हुए मैंने देखा है। ऐसे पुरुषों से मुझे बदला लेना आता है लेकिन तुम्हें उसके लिए सहमति देनी होगी, बोलो, तुम्हारी क्या राय है?"

"जिससे हृदय से प्यार किया जाये उससे बदला लेने का प्रश्न ही नहीं उठता। आज आपको पता चल ही गया है कि वह कौन व्यक्ति है जिसके कारण मैं अपना वजूद खो बैठी हूं। उसने मेरे स्वप्नों को चकनाचूर कर दिया है, मेरी भावनाओं के साथ खिलवाड़ किया है। वह सब पूर्ववत्, आप बदला ले कर नहीं कर सकतीं, उससे भावनात्मक रूप से बंध जाने के बाद मेरा अपना कुछ नहीं है," कहते कहते सावित्री फफक कर रो दी।

मिसेज़ दास ने अपने वक्षस्थल से चिपका कर उसके बहते हुए आंसुओं को थाम लेने की कोशिश की किंतु मूसलाधार वर्षा की तरह वे आंसू अनवरत गिरते गये, मानो अपने हृदय के दबे हुए समस्त उद्गारों को आज सावित्री मिसेज़ दास के समक्ष खोल कर रखना चाह रही थी। एक विवाहित पुरुष से प्रेम करने की ग्लानि उसकी चेतना में हूक भरी पीड़ा बन समा गयी थी। उसे समाज से जीवनपर्यंत प्रताड़ित होने का दंड भरा दुर्भाग्य मिल गया था किंतु मिसेज़ दास उसकी भर्त्सना करने के बजाय उसकी पीड़ा को समझ रही थीं। उसकी संवेदना पा सावित्री का चित्त आंसुओं से प्लावित हो कर लंबी ग्रीष्म ऋतु की त्रसित प्रकृति पर वर्षा की नन्ही नन्ही बूंदों के बरस जाने के बाद सा स्वच्छ हो उठा। वह मिसेज़ दास की गोदी से उठ कर उन्हें धोने बाथरूम तक पहुंची थी कि एकाएक टेलीफ़ोन की घंटी बज उठी। रिसीवर उठा कर उसने हलो कहा, उधर से किसी विदेशी ने क्षमा-प्रार्थना करते हुए कहा, "माफ़ कीजिए, इतनी रात आपको डिस्टर्ब किया। मैं पूछना चाह रहा हूं कि कल आप और आपकी साथी हम लोगों के साथ घूमने चल सकेंगी, क्योंकि टूर की बुकिंग रात में कर लेना उचित रहेगा? सुबह हमारी कार आ कर आप दोनों को ले आ सकती है यदि आप सहमत हों।"

"प्लीज़, हम दोनों को क्षमा करें। हम दोनों ने कुछ प्रोग्राम निर्धारित कर रखा है," कह कर सावित्री चुप हो गयी। कुछ देर दोनों ओर से चुप्पी सधी रही किंतु एक असहनीय शांति के बाद उधर से आवाज़ आयी, "आपसे एक अनुग्रह है, हमारे पास एक साल की छोटी बच्ची है जो मेरे मित्र ने भारत से ही गोद ली है। वह हम लोगों के

साथ एडजस्ट नहीं हो पा रही है, यदि आपमें से एक या आप दोनों उस बच्ची को कल रख लें तो कृपा होगी। मैं और मेरे मित्र की पत्नी आप लोगों को शिशुपालन (baby sitting) के लिए प्रति घंटे के हिसाब से···"

बात को काटते हुए सावित्री ने कड़े शब्दों में कहा, "रुपये दे कर शिशुपालन करवाने का प्रश्न यदि है तो आप किसी और से संपर्क करें, वैसे भारतीय मूल की कन्या के लिए आपकी मदद करने में मुझे ख़ुशी होगी। यह कार्य करना एक तरह से हमारा फ़र्ज़ है। आपने हमारी संतान को सुरक्षा देने के लिए गोद लिया है जो सराहनीय है।"

"धन्यवाद, आपने मेरे मित्र को कल सुबह सहारा देने की अनुमति दे दी। ऐसी मदद के लिए हमारे देश में फ़ीस देने की परंपरा है, इसीलिए मैं ऐसा प्रस्ताव सहज भाव से कर बैठा था। यदि आपकी भावनाओं को अनजाने में ठेस पहुंचायी हो तो उसके लिए मैं क्षमाप्रार्थी हूं, वैसे भी इस समय टेलीफ़ोन करने में काफ़ी हिचक रहा था। मेरे लिए अभी शाम शुरू हुई है किंतु ज़्यादातर भारतीय दस बजे सोने लगते हैं। मुझे पता है, मैं वाक़ई अपनी धृष्टता के लिए माफ़ी चाहूंगा। आपके पास बच्ची को ले कर हम लोग आठ बजे पहुंचेंगे। आशा है, आप लोग उस समय परेशान (डिस्टर्ब) नहीं होंगे···" कहते कहते उस ओर से आवाज़ आनी बंद हो गयी। सावित्री ने चोगे में कई बार हलो हलो कह कर अपनी सतर्कता से उस विदेशी की बातचीत में रुचि लेने की कोशिश की किंतु उधर से कोई प्रतिक्रिया नहीं हुई तो चोगे को रख दिया। सावित्री हैरान थी कि इस विदेशी ने उसके रहने के स्थान को कैसे पता कर लिया और कैसे इस अज्ञात शहर में टेलीफ़ोन द्वारा संपर्क स्थापित किया? उसे लगा, विदेशी भावनात्मक रूप से संवेदनशील अवश्य है किंतु ये अपनी धुन के पक्के होते हैं। जो बात एक बार ठान लेते हैं, उसे पूरा करके ही दम लेते हैं, शायद इनकी सफलता का यही राज़ है।

सुबह आठ बजने में दो मिनट पहले एक भोली सांवली रंग की कन्या को लिये दो विदेशी पुरुष और एक महिला ने पदार्पण किया। वे लोग सुबह सुबह आ कर डिस्टर्ब करने के लिए अनेक बार क्षमा मांग रहे थे, साथ में ढेर सारे फल, दूध की बोतल, पानी की बोतल और अनेक खेलकूद से भरा बड़ा सा पिटारा लाये थे जिसके अंदर बच्चे के बदलने के लिए कई आवश्यक वस्त्र और प्रसाधन की सामग्री भी थी। सावित्री को यह सब सौंपते हुए उस विदेशी महिला ने बड़े प्रेम से हाथ मिला कर अभिवादन करते हुए कहा, "मेरी बच्ची का नाम सूज़ी है, बड़ी प्यारी बच्ची है, रोती बहुत कम है लेकिन बोलती भी बहुत कम है। इसे दो महीने हमारे साथ रहते हुए हो गये हैं लेकिन यह अभी तक मुझे पूरी तरह से स्वीकार नहीं कर पायी है। क्या पता, आप लोगों के पास यह पूरा दिन व्यतीत करने में व्याकुल हो कर आप लोगों को परेशानी में न डाल दे, ऐसा कुछ हुआ तो मुझे कृपया माफ़ कीजिएगा, I do not know how I would repay you for this obligation anyway, a lot of thanks of your kind help to us. (पता नहीं इस मेहरबानी को मैं कैसे चुका पाऊंगी, मदद के लिए अनेक धन्यवाद)।"

सावित्री ने देखा, वह कन्या विदेशी मां की गोद से उसके पास कटी डाल की तरह टूट कर उसकी गोद में आ गिरी। मां-बाप से बिछुड़ते समय बालसुलभ, रोना-धोना न देख कर सावित्री आश्चर्यचकित थी। उसकी काली काली आंखों में एक सूनापन था। सावित्री के वक्षस्थल से चिपक कर धीरे धीरे संयत हो कर सूज़ी बोल उठी, "मम्मी, टाटा, टाटा।"

सूज़ी को सीने से चिपकाये सावित्री ममता की मूर्ति लग रही थी, लेकिन मिसेज़ दास सावित्री के इस रूप को देख कर खीज कर बोलीं, "ओह, मुझे पता नहीं था कि तुम इतनी पढ़ी-लिखी वैज्ञानिक हो कर भी इस बीसवीं सदी में पुनर्जन्म और अपने पति को परमेश्वर मानती हो। मुझे तो इस कलियुग में ईश्वर पर भी पूरा भरोसा नहीं है। पति तो मेरा लालची, एक दुष्ट राक्षस था," कह कर मिसेज़ दास का मुंह क्रोध से तमतमा उठा।

उसका यह रूप देख कर सावित्री सहम उठी। आगे बढ़ कर वह एक गिलास में ठंडा पानी ले आयी और मिसेज़ दास को प्रेमपूर्वक पिलाने लगी। थोड़ी देर में मिसेज़ दास सहज हो गयीं।

कॉन्फ़्रेंस से लौटने के बाद सावित्री अपने कक्ष में जा कर कार्यरत हो गयी किंतु उसका मन तेज़ हवा की तरह उड़ा जा रहा था। काश, वह सत्यवान के पास जा कर सच और झूठ को जान पाती! सत्यवान से टेलीफ़ोन पर वार्तालाप करना असंभव था क्योंकि उसने जब भी सत्यवान से ऑफ़िस या घर पर टेलीफ़ोन करने की कोशिश की है, सदैव उधर से बड़े फीके और तिरस्कृत स्वर में सुनने को मिला है, 'मैं सत्यवान बोल रहा हूं। कहिए, आपको मुझसे क्या कार्य है? आपसे भेंट होना भविष्य में असंभव है, कृपया टेलीफ़ोन न करें।'

पत्र व्यवहार करने का अधिकार केवल सत्यवान को मिला हुआ है। वही जब मन करता, ऑफ़िस के पते पर प्रेम पत्र लिख भेजता, जिसकी सावित्री डोर थामे समय समय पर सत्यवान की विवशताओं की जानकारी पा कर उसे क्षमा करती आयी है। सावित्री के साथ सत्यवान का कठोर व्यवहार केवल दूसरों को उनके प्रेम का पता न लग जाये, इसी शंका के परिमार्जन की कोशिश में होता आया है। इस दलील को सुन कर सावित्री सत्यवान से अकेले में भी एक प्रिया की तरह रूठ नहीं पाती। वास्तव में, देखा जाये तो उनके मिलन की बेला अत्यधिक प्रतीक्षा करने के बाद गत वर्षों में एक या दो बार ही हो पायी है। सावित्री के मानसिक रोग की जानकारी भी सत्यवान को नहीं लगी है। सत्यवान सावित्री को अपनी नवयौवना प्रेयसी के रूप में ही देखता। अकस्मात् छोटी भेंट होने पर दोनों का शारीरिक मिलन होना असंभव हो जाता, केवल सत्यवान आंखों से मनुहार कर अगणित चुंबनों द्वारा सावित्री को संवेगित करके वर्षों तक उसे विरहाग्नि में जलने के लिए अकेले छोड़ देता, जिसका कुप्रभाव सावित्री की जनन क्रिया पर पड़ता रहता है। एक-आध बार सावित्री ने कुछ शारीरिक क्रियाएं असंयमित हो कर ऐसी कीं

कि सत्यवान को लगा कि सावित्री उसके बच्चे की मां बनने को लालायित है। सत्यवान ने सावित्री में सहज उपजे मातृत्व भाव को शांत कर देने के लिए कहा, "लगता है, बच्चे की लालसा तुम्हारे में तो तीव्रतम हो उठी है, सवि, मैं तुम्हें चोट (hunt) नहीं दूंगा, ऐसे में मैं स्वयं को चोट दे दूंगा और अपने को कभी भी माफ़ नहीं कर सकूंगा।" यह सुन कर सावित्री के कलेजे को ठंडक पहुंचती। वास्तव में, एक सच्चा प्रेमी ही प्रेमिका के भविष्य की चिंता करके अपनी कामवासना पर अंकुश लगा सकता है।

पाठकगण, सत्यवान और सावित्री के बीच जो अंतरंग समझौते हुए हैं, उन्हें शब्दों में अंकित नहीं किया जा सकता, केवल उनका अनुमान ही लगाया जा सकता है क्योंकि परम हितैषी मिसेज़ दास की इतनी गूढ़ जानकारी भरी शिक्षा मिल जाने के बाद भी सावित्री का सत्यवान के प्रति अटूट विश्वास हिला नहीं है, वह केवल सत्यवान की बलिष्ठ भुजाओं में लिपट कर रो रो कर पूछने के लिए आतुर है कि 'तुम कह दो, मुझे जो कुछ बतलाया गया, वह सब झूठ है, तुम केवल मेरे हो, और के साथ तुम्हारा प्रेम प्रदर्शन केवल एक नाटक था।' सावित्री वास्तविकता को जान कितनी हद तक उसे नकार सकती है! शायद यह उसके मानसिक रोगी होने का प्रमाण था, वैसे भी सुनते हैं कि विरही प्रेमी पागल की तरह प्रलाप करने लगता है।

भाग्यवश कुछ दिनों बाद ही सावित्री को सत्यवान का एक छोटा सा पत्र मिला जिसमें उनके पुनर्मिलन होने की निकट भविष्य में स्थल और समय की सूचना थी। इस बार सावित्री अपनी ख़ुशी को सर्वव्याप्त कर देने के लिए लालायित हो उठी। वह कोयल सी कूक कूक कर कहने के लिए व्याकुल हो उठी, 'पिय कहां पिय कहां'! दफ़्तर में उसकी ख़ुशी को देख मिसेज़ दास ने चुटकी ली, "पिया ना माने बात री मेरा घना सुहागिन नाम।"

सावित्री ने भी उसे आड़े हाथों लेते हुए जवाब दिया, "वृद्धजन क्यों कसकते हैं हमारी क्षणिक जवानी पर?"

"ओह! तो तुम्हें लग रहा है कि मुझे तुमसे ईर्ष्या हो रही है? मैं तो तुम्हारे भले के लिए कह रही हूं। ये कल्पना के ताने-बाने बुनना बंद करो, दिवास्वप्न में रहते रहते तुम यथार्थ से भाग रही हो सवि," मिसेज़ दास ने सलाह दी।

"शायद आपने मेरे लिए परमहित की बात कही है, किंतु गत वर्षों से जिस दिवास्वप्न को देख कर मैं जीवित इस भयंकर रेगिस्तान से निकल कर इस मृगतृष्णा के पास अपनी प्यास बुझाने आयी हूं, उसके जल को पी लेने की अनुमति दें मेरी प्यारी सहेली," कहते हुए सावित्री ने मिसेज़ दास को अपनी बांहों में भर कर आम के वृक्ष की टहनी की तरह हिला कर रख दिया। एकाएक सावित्री में इतनी शक्ति देख मिसेज़ दास अवाक् रह गयीं किंतु भविष्य में कुछ अनहोनी होने जा रही है, इस आशंका से मन ही मन भयभीत हो उठीं।

सावित्री की मां से वह तुरंत जा कर विचार-विमर्श कर सकने में असमर्थ थी क्योंकि

सावित्री के व्यवहार में आज बहुत दिनों के बाद उदासी के काले बादल छंटे थे। मां के सशंकित हो जाने से मां और बेटी में बात बात में टकराव हो जाने की संभावना थी। मां बेटी के पांव में बेड़ी लगा कर घर की चहारदीवारी में बांध कर कैसे रख सकती है?

सावित्री आर्थिक रूप से वास्तव में स्वतंत्र थी। मां ही आर्थिक रूप से अब उस पर आश्रित थीं। वही घर की चहारदीवारी में घुसी इस छोटी सी गृहस्थी को संभालती रहती थीं, मानो सावित्री पुरुष हो! इन विषम परिस्थितियों में रहते रहते सावित्री मां पर अपना निरंकुश एकाधिकार जमाने लगी थी विशेषकर जब उसके मूड में उन्माद का दौरा आ जाता था। उन दिनों उसे नींद भी कम आने लगती थी और बार बार लघुशंका के लिए उठ कर या अपने लिए चाय बनाने के बेतहाशा प्रयास में वह मां की भी नींद हराम कर देती थी। मां खीज कर उसे सोने के लिए कहती तो वह हंस कर, कभी क्रोधित हो कर, तो कभी क्रूरता से अपमान करने के लिए उनको खटियों से चौबीसों घंटे चिपके रखने की आज्ञा देने लगती, रसोई में जा कर ज़ोर से बरतन पटक पटक घर में तूफ़ान मचा देती। बेचारी मां पास-पड़ोस के लोगों तक बात न फैल जाये, इस डर से सावित्री के अत्यंत असहनीय उद्‌दंड व्यवहार को चुपचाप सहन करने के लिए बाध्य थीं। काश, मां के लिए केवल मिसेज़ दास से भेंट होने पर इस अशोभनीय व्यवहार की चर्चा कर सकना संभव हो पाता या सावित्री के मनोचिकित्सक से, जिसकी उचित दवाई देने के बाद से नींद ठीक होने लगती और व्यवहार भी संयमित हो जाता! सावित्री अपने इस अभद्र व्यवहार को बिलकुल भूल जाती, मां भी उसे याद दिलाने के लिए शब्दों में दुहरा कर सावित्री को ग्लानि से नहीं भर देना चाहती थीं, वैसे भी उदासी का दौर शुरू होते ही सावित्री के मन में न जाने कितनी जानी-अनजानी बातों के लिए दोष की भावना आ उसके चित्त को दोष की भावनाओं से ग्रस्त करने लगती जिनकी चर्चा मां के साथ कभी कभी करते करते सावित्री फूट फूट कर रोने लगती और मां का स्नेही आंचल भी उस अश्रुधार को रोक नहीं पाता। सावित्री के इस अजीबोग़रीब व्यवहार परिवर्तन को देखते रहने के कारण मां सावित्री से डरने लगी थीं। कोई भी बात के लिए सावित्री से पूछताछ करना मां ने वर्षों पहले से छोड़ दिया था। आज दफ्तर से सावित्री ने घर आते ही अपना छोटा सा सूटकेस तैयार किया और मां को सूचित किया, "मां, मैं आज किसी आवश्यक कार्य के लिए बाहर जा रही हूं, वहां काम पूरा करके ही वापस आऊंगी, मेरी चिंता न करना, खाना खा लेना, कल शाम तक वापस आ जाऊंगी," कह कर सावित्री मां के उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना तेज़ी से चल दी। बाहर आ कर उसे एक ख़ाली स्कूटर जाता हुआ दिखलायी दिया, हाथ दिखला कर उसे फ़ौरन स्टेशन की ओर चलने की आज्ञा दी। स्टेशन पहुंच कर फ़र्स्ट क्लास की टिकट ले वह गाड़ी में आ कर बैठ गयी। गाड़ी चलने में कुछ समय बाक़ी था, इस इंतज़ार में उसके दिल की धड़कन तेज़ी से चलती हुई साफ़ साफ़ सुनायी देने लगी। पसीना माथे से जलधार की तरह गिर रहा था। वह रूमाल से माथे और अपने गरदन पर बहते पसीने को पोंछती रही और अत्यंत बेचैनी से गाड़ी

चलने का इंतज़ार करने लगी। उसके मन में एक भारी शंका थी, कहीं मां जा कर मिसेज़ दास से उसकी इस अकस्मात् यात्रा के लिए पूछताछ न कर बैठे। उसने तो मिसेज़ दास को भी नहीं बतलाया है कि वह सत्यवान से भेंट करने जा रही है, क्योंकि मिसेज़ दास यह बात जान कर उसे अपनी अनुमति नहीं देतीं और मां से भी सावित्री को बाहर जाने के लिए आज्ञा न देने की चेतावनी ज़रूर देतीं। अपने स्वजनों की आंखों में धूल झोंक कर आने में सावित्री मन ही मन अपने को एक भयंकर अपराधी मान बैठी थी, सत्यवान के लिए वह कुछ भी कर सकती है, कोई भी बंधन तोड़ सकती है, क़ोई भी पाप...सहसा गाड़ी की सीटी ने सावित्री की विचार श्रृंखला तोड़ दी। गाड़ी ने शीघ्र ही रफ़्तार पकड़ ली तब ही सावित्री को चैन आया और एकाएक गले की प्यास असहनीय हो उठी। पास में बैठे सहयात्री से पीने के पानी को मांग कर उसने अपने गले की प्यास को बुझाया किंतु अधर की प्यास से वह पूरी यात्रा भर छटपटाती रही। जैसे उसे आशंका थी, गंतव्य स्थान पर पहुंच कर उसने सत्यवान को प्रतीक्षा करते नहीं पाया। कुछ देर प्रतीक्षा के बाद सत्यवान को मुस्कराते हुए अपनी ओर आता देख वह उसकी ओर झुंझलाहट के साथ दौड़ कर पैर पर हाथ पटकते हुए बोली, "अब आप सफ़ाई में कुछ नहीं कहिए, आपकी बहुत सी मजबूरियां रही होंगी जिनका हिसाब-किताब देने की ज़रूरत नहीं है, मैं यह बहाने सुन सुन कर थक गयी हूं।"

"अरे, बच्चों की तरह क्यों फैल मचा रही हो?" शांत स्वर में सत्यवान ने सावित्री को अपनी बांहों का सहारा देते हुए कहा। सत्यवान ने पहले से ही रहने के स्थान को बुक कर लिया था, अतएव सावित्री को किसी भी असुविधा का सामना नहीं करना पड़ा। चाय का कमरे में ऑर्डर दे कर सत्यवान कोच पर बैठ कर पास में पड़ी मैगज़ीन के पृष्ठ पलटने लगा। कुछ देर प्रतीक्षा करने के बाद थकी सावित्री उसके पास आ कर बैठ गयी किंतु सत्यवान ने अपनी आंखें पत्रिका में ही गढ़ाये रखीं, केवल आंखों की कोर से वह सावित्री के व्यवहार को परखता रहा। सावित्री ने कल्पना भी नहीं की थी कि इतने दिनों के विरह-बिछोह के बाद मिलन में सत्यवान उसकी इस तरह अवहेलना करेगा। वह मन ही मन उत्तेजित होने के कारण, अति निकट आ, सत्यवान के हाथ से पत्रिका को खींच लेने की कोशिश करने लगी। सत्यवान ने घूरते हुए ताड़ना दी, "ठीक से बैठो, बेयरा चाय ले कर किसी समय आ सकता है।"

सावित्री ने तपाक से जवाब दिया, "रेस्ट्रां में खुलेआम बैठ कर जो ऐसी हरकतें करने से बाज़ नहीं आता है, आज वही बंद कमरे में मुझे शिक्षा दे रहा है।"

"तुम्हारी ज़बान कतरनी की तरह चलने लगी है, अपना नहीं तो मेरे उच्च पद का ख़याल करो। छेड़छाड़ करने के लिए हमारे पास पूरी रात बाक़ी है, मुझे चाय पी कर फ़ौरन रात्रि के भोज के लिए बाहर जाना है, तुम यहां बैठ कर मेरी अच्छी पत्नी की तरह इंतज़ार करो और क़तई कमरे से बाहर जाने का दुस्साहस नहीं करना। मैंने यहां बुकिंग मिस्टर और मिसेज़ के नाम से करवायी है," सत्यवान ने कठोरता से चेतावनी दी।

"मुझे पत्नी का पद देने से पहले आपको सप्तपदी लेनी होगी, उसके लिए अपनी पत्नी उमा से तलाक़ लेना होगा," सावित्री ने उत्तेजना में प्रतिवाद किया।

सत्यवान ने कहा, "समय आने पर सब कुछ संभव होगा, अभी चुपचाप चाय की प्रतीक्षा करो।"

"मेरे लिए एक क्षण भी तुमसे अलग रहना असहनीय है, रात्रि भोजन यहीं करिए, इसी कमरे में, नहीं तो मुझे यहां से घर वापस जाने दीजिए, मेरा दम यहां घुटा जा रहा है," यह कह कर सावित्री निढाल पलंग पर लेट गयी और तेज़ रफ़्तार में चलते बिजली के पंखे को निरंतर निहारती रही। बेयरा कब आ कर चाय दे चला गया, सत्यवान ने खुद ही चाय बना कर कब उसके समीप ला कर रख दी, इस सबका भान सावित्री को नहीं हुआ। हार कर सत्यवान ने कमरे का दरवाज़ा बंद किया और अपनी टाई और कोट उतार सावित्री के बग़ल में आ कर लेट गया। वह सावित्री के अधरों और उरोजों से खिलवाड़ करता रहा लेकिन सावित्री चुपचाप निष्क्रिय हो कर अपना ध्यान पंखे पर लगाये रही।

खीज कर सत्यवान ने उसे झकझोरा, "तुम चाहती हो, मैं तुम्हारी अंगुली के इशारे से नाचता रहूं, यह कैसे संभव है? तुम भी आधी उम्र पार कर चुकी हो, मैं भी अपने कैरियर (पद) की ऊंचाई पर पहुंच गया हूं, ऐसे में हम दो पागलों की तरह मर्यादाओं को तोड़ इस अज्ञात होटल में एक दूसरे की बांहों में बंधे चौबीस घंटे कैसे गुज़ार सकते हैं? मैंने तुम्हें यहां अपनी एक सरकारी आवश्यक मीटिंग के लिए बुला भेजा है, वह काम भी करना है और जितना समय निकाल सकूंगा उतना पूरा तुम्हें दूंगा। प्लीज़, मुझे अपना पूरा सहयोग देने की कृपा करो, मुझे उमा की तरह अपने नाज़-नखरे उठाने के लिए परेशान न करो," सत्यवान ने यह कह कर अपना कोट उठा कर पहन लेने के लिए पलंग छोड़ दिया।

सावित्री भी बिजली की तरह उठ कर उसकी पीठ से चिपक पर बैठ गयी और उसे भरसक अपना कोट न पहनने देने की कोशिश करती रही। प्रिया का आलिंगन और कामुक याचना किस ओर सत्यवान को खींच रही थी, इसको समझते हुए धैर्य से सत्यवान ने कहा, "नारी के इस रूप से मुझे आकर्षण होने के बजाय वितृष्णा होने लगती है। मुझे तो सकुचाई, शर्मीली पहले सी सावित्री चाहिए जिस पर सूरज की किरण पड़ते ही वाष्प बन हवा में उड़ जाये।"

"प्यासी मछली की तरह पानी के लिए तड़पा तड़पा कर मारने से तो अच्छा है, मुझे आज ही मार कर ख़त्म कर दो।"

"वास्तव में क्या यही चाहती हो, लाओ, तुम्हारा गला घोंट कर रख दूं," कह कर सत्यवान ने अपने हाथों से सावित्री का गला चारों ओर से घेरा बना कर धीरे धीरे दबाना शुरू किया, लेकिन सावित्री ने कोई प्रतिक्रिया नहीं की तो घबरा कर वह उठ बैठा। "तुम्हें आज क्या पागलपन सवार हो गया है? हम दोनों एक दूसरे का गला घोंटने नहीं

आये हैं, अगर तुम मेरी प्रतीक्षा करते करते इतना अधिक थक गयी हो तो तुम्हें मैं किसी अन्य से शादी कर लेने की आज अनुमति देता हूं, लेकिन इतना याद रखना, अभी तीन लोगों का जीना दुर्लभ हुआ है—मैं, तुम और मेरी पत्नी उमा का—फिर बेचारा वह अभागा जिससे तुम इस अधेड़ उम्र में विवाह करोगी। हमारे भारतीय समाज में कितने ही विवाहित जोड़े हैं जो अपने कामकाज के लिए एक दूसरे से दूर रहने के लिए बाध्य हैं, उनका मिलन साल में एक-आध बार ही संभव हो पाता है, वह एक दूसरे से बिछुड़ कर कोसों दूर रहते होंगे, कभी तुमने अनुमान लगाया है?"

सत्यवान की यह उक्ति सुन कर सावित्री खीज कर बोली, "वे दोनों विवाहित होते हैं, सामाजिक रूप से सुरक्षित और एक दूसरे की लगाम उनके हाथों में होती है, जब चाहा खिंच कर पास आ सकते हैं, यहां तो महाशय का पता ही नहीं कहां कहां गुलछर्रे उड़ाये जा रहे हैं।"

"तो उमा की तरह इस शक का बीज तुम्हारे दिमाग़ में भी उग आया है? मैंने तो तुम पर बताओ, कभी अविश्वास किया है जो तुम मेरे पर अविश्वास कर रही हो।"

सावित्री इसका जवाब देने के लिए निरुत्तर थी किंतु सत्यवान की अवहेलना कर देने के लिए तत्पर, "आपको रात्रि भोज में जाना है, देर हो रही होगी, लेकिन जल्दी आ जाने की कृपा करें, इस अज्ञात होटल के कमरे में बैठ कर इंतज़ार करने से अच्छा है, मेरा लौट जाना, कृपया मुझे स्टेशन तक छोड़ दीजिए।"

"रात भर मेरी दुर्दशा क्या होगी, इसकी तुम्हें चिंता नहीं है। मैंने पति-पत्नी के नाम से यहां बुकिंग करवायी है, लोग क्या कहेंगे? क्या अनुमान लगायेंगे?" शंकित हो कर सत्यवान ने सावित्री को समझाने की कोशिश की। प्यार से उसके बालों को सहलाता रहा। माथा चूम कर अपने स्वामित्व के एकाधिकार को स्थापित करता रहा। लेकिन सत्यवान आज समझ कर भी कि सावित्री की क्या मांग है, क्या शारीरिक भूख है, इसे अपनी बढ़ती हुई ख्याति के आगे केवल सावित्री को अपनी भावनाओं का बलिदान करने के लिए कटिबद्ध करता रहा लेकिन सावित्री के मौन को न तोड़ पाने और अपनी हार होने के कारण खिन्न चित्त उठ कर बाहर कमरे में मास्टर चाबी का ताला लगा कर चला गया।

रात्रि का भोज किसी विदेशी व्यापारिक संस्था द्वारा दिया गया था। वहां पर मदिरा का दौर मध्य रात्रि तक चलता रहा है, जिसमें सत्यवान को कोई दिलचस्पी नहीं थी। किंतु एक मदिरा प्याला उठा कर अति नाटकीय ढंग से अपनी गंभीर बातचीत बढ़ाने का और दूसरों से अपने हित के निर्णय पर पहुंचा देने में सत्यवान को बेहद मज़ा आता था। वह टेबल पर आया। विशिष्ट मेहमान होने के नाते अन्य अतिथि को भी सत्यवान के टेबल पर आने के बाद ही खाना मिल सका। वहां से विदा ले कर सत्यवान जब कमरे पर वापस आया तो कमरे में लगा ताला देख कर सूझ-बूझ भरी अपनी चतुराई के लिए शाबाशी देने लगा। कमरे में दाख़िल हो कर रोशनी जलाते ही उसने सावित्री को बेसुध

निर्वस्त्र हो कर सोते हुए पाया। उसकी नग्न नारी देह देख उसे क्रोध आने लगा, कैसी निर्लज्ज हो गयी है सावित्री! घृणा से भर कर वह कमरे में पड़े दूसरे पलंग पर कपड़े बिना बदले रोशनी बंद करके सो गया।

सुबह उठते ही उसका ध्यान सावित्री की ओर गया। पलंग पर कोई सोया हुआ नहीं था। उसे लगा, शायद सावित्री बाथरूम में तैयार होने चली गयी होगी। थोड़ी देर में उठ कर वह बाथरूम की ओर गया, वहां भी सावित्री नहीं थी, और कमरे में उसका सूटकेस भी नहीं था। रात में दिया हुआ चाय का प्याला भरा का भरा पड़ा था। वैसे ही ट्रे में रखे हुए बिस्कुट सूख रहे थे, उनके चारों ओर चींटियों का दल आ कर अवश्य अपना आधिपत्य जमाये हुए था। सत्यवान को ख़याल आया कि सावित्री ने रात भर कुछ खाया-पीया नहीं है। घबरा कर उसने बाहर आ कर सावित्री की खोजबीन की। काफ़ी देर बाद उसे ख़बर मिली कि मेमसाहब सुबह की सैर करके इस समय लांच में बैठी उसका इंतज़ार कर रही हैं। उनके साथ बंधा हुआ सामान भी है, सत्यवान यह ख़बर सुन कर क्रोध से तमतमा उठा। उसे लगा, वह फ़ौरन सावित्री को कमरे में ला कर इस व्यवहार के लिए डांटे-फटकारे किंतु सावित्री की मूर्तिवत बैठी लांच में शक्ल को देख कर सहम गया, "क्यों सुबह उठ कर अकेले सैर को निकल पड़ीं? मुझे जगा लिया होता। चलो, कमरे में चलो। कुछ खाओ-पीओ।"

"नहीं, मुझे सीधे स्टेशन पहुंचा दें। मुझे फ़ौरन घर वापस जा कर ही अन्न ग्रहण करना है।"

यह सुन कर सत्यवान ने बिना कहे-सुने होटल छोड़ देना उचित समझा और सावित्री के कथनानुसार उसे गाड़ी में बिठा कर विदा किया। गाड़ी के चलते समय अवश्य उसने सावित्री के हाथ को प्रेमपूर्वक दबाते हुए कल रात के अपने कठोर व्यवहार के लिए क्षमा मांगी।

इस अनोखे मिलन की कड़वाहट दोनों के चित्त में कई वर्षों तक रही। दोनों ने कोई पत्र व्यवहार भी नहीं किया। अतएव इस कटु अनुभव के कारण दोनों की दूरी सतत बढ़ती गयी। वैसे भी मानसिक रोग से युद्ध करते करते सावित्री की कोमल भावनाएं बर्फ सी सख़्त होने लगी थीं। वह अपना पूरा ध्यान केवल दिनचर्या और सरकारी कामकाज में लगाने लगी थी। इधर सत्यवान भी सफलता की चोटियां एक के बाद दूसरी पार करता हुआ अपने उच्च पद के गौरव में फूला नहीं समा रहा था। उसकी संतानें भी पढ़-लिख कर अच्छी नौकरियों में लग गयीं और उनका विवाह उसने काफ़ी धूमधाम से कर दिया। सावित्री को औपचारिकता में एक निमंत्रण पत्र भी नहीं भेजा।

सावित्री के परिवार में मां के सिवाय अन्य कोई स्वजन न था। अतएव मिसेज़ दास मित्र से अधिक इस छोटे से परिवार की परम हितैषी बड़ी बहन बन गयी थी। सावित्री ने उसे सत्यवान के बारे में पूछताछ करने की कोशिश को मौन रह कर उसे निरस्त कर दिया था। उसने अपनी मां को भी सत्यवान के बारे में कुछ नहीं बतलाया था। मिसेज़

पर चौबीसों घंटे रहता है। केवल ईश्वर जानता है कि मैं पूजा में प्रतिदिन फूल चढ़ाते सयम तुम्हारी कुशलक्षेम की प्रार्थना करता रहा हूं और जीवन भर करता रहूंगा।"

सत्यवान की बातें सुन कर सावित्री का हृदय आनंदमग्न हो उठा किंतु अचानक बोल उठी, "अब आपका क्या प्रोग्राम है? अपनी क़ैद से कितनी देर की छुट्टी ले कर आये हैं?"

"काफ़ी चटपटी बातें करना तुम्हें आ गया है! इस समय मुझे अपने घर तो ले चलो," कातर स्वर में सत्यवान बोला।

"वहां ले जाना कैसे संभव होगा? मेरी वृद्धा मां आप और मेरे संबंध को जान कर जीवित नहीं रह सकेंगी," अपनी असमर्थता बतलाते हुए सावित्री ने कहा।

"उन्हें संबंध बतलाने की ज़रूरत क्या है? मुझे तो उनका आशीर्वाद चाहिए। शायद अपने कृत्यों के प्रति क्षमा-याचना करके उस वृद्धा मां से, जिसकी पुत्री को मैंने मानसिक यातनाओं में इतने वर्षों से झोंक रखा है, मैं दोषमुक्त हो जाऊंगा। शायद अपने इस सरकारी क़ानूनी फंदे से भी मुक्त हो सकूं। बड़ों के आशीर्वाद में बड़ी शक्ति होती है।"

"आप कबसे इन दकियानूसी अंधविश्वासों का सहारा लेने लगे हैं? मेरी मां आप की शक्ल को भी देखना पसंद नहीं करेगी, आशीर्वाद आपको देना तो बड़ी बात है। कहीं बैठ कर शांति से हम बातचीत कर सकते हैं, घर जाने की मुझे देरी नहीं हो रही है," सावित्री ने सलाह दी।

"नहीं सवि, मुझे तुम्हारी मां के दर्शन अवश्य करने हैं। उन्होंने तुम जैसी देवी मुझे देने की कृपा की है," सत्यवान भावुक हो कर बोल पड़ा।

सावित्री न चाह कर भी सत्यवान को घर लाने के लिए विवश थी। भाग्यवश इस समय मिसेज़ दास वहां नहीं होगी, नहीं तो मां के समीप आज इतने वर्षों के रहस्य का उद्घाटन हो जाने की संभावना पूरी थी। घर आ कर सावित्री ने सत्यवान को बैठक में बिठा दिया और मां को केवल इतना ही बतलाया कि कोई विशिष्ट वैज्ञानिक मिलने आये हुए थे। वह जलपान करने घर आ गये हैं। सावित्री की मां स्वभाव से भोली और जैसा कोई बतलाता, उसे वैसा ही समझने वाली महिला थी। उसने विनीत हो कर सत्यवान को नमस्कार किया, लेकिन सत्यवान ने पैर छू कर आशीर्वाद देने की प्रार्थना की, जिसे सुन कर मां गद्गद हो उठीं, और सत्यवान को हृदय से लगा कर उसे 'आयुष्मान् भवः, यशस्वी भवः' कह कर आशीर्वाद देने लगीं। सावित्री सत्यवान की इस विनीत मुद्रा को देख कर मन ही मन मुस्करा उठी। दुख की अनुभूति मनुष्य को कितना परिपक्व बना देती है, उसने आज जाना। कल तक सत्यवान अपनी मान-मर्यादा, पद-प्रतिष्ठा आदि के गर्व में मस्तक ऊंचा किये फूला नहीं समाता था, किसी के सामने झुकना उसने जाना नहीं था किंतु आज वह दया, क्षमा, शुभाशीष आदि के लिए नतमस्तक है। मां ने अपने पैरों को सत्यवान से अलग करके सावित्री को बहुत उलाहना देते हुए कहा, "तुम यहां बैठी बैठी क्या देख रही हो? अतिथि के लिए कुछ जलपान का प्रबंध करो। हमारे यहां

कोई पुरुष आतिथ्य स्वीकार करें, यह तो बड़े सौभाग्य की बात है। तुझे किसी को घर लाते हुए मैंने पहली बार देखा है।''

''मां, मैं अभी चाय बना कर लाती हूं, आप बैठ कर बातचीत करें,'' यह कह कर सावित्री चौके में चली गयी।

सत्यवान और मां बैठ कर बतियाते रहे। सत्यवान ने अपनी ओर से कुछ पूछताछ नहीं की, केवल मां ही उसके पारिवारिक जीवन की जानकारी लेती रहीं जिसे वह विस्तार से बतलाता रहा। इसी बीच सावित्री दो प्यालों में गर्म चाय और नमकीन ले कर आ गयी। मां ने इस सादे ढंग से इतने वरिष्ठ वैज्ञानिक की आवभगत करते देख सावित्री को पुनः प्रताड़ित किया, ''अरे, सूखा नमकीन ले कर आ गयी! कुछ मीठा लायी होती, पास में ही मिठाई की दुकान है। मंगवा लेती या थोड़ा सा हलवा बना लेती। लाओ, मैं खुद बना कर लाती हूं।''

''मां, तुम भी मुझे ही डांट रही हो? यह दिन भर कहीं न कहीं खा-पी कर आये हैं। तुम्हें पता नहीं है, मेवा-मिठाई, फल, ये सब इनके पीछे पीछे चलते हैं। हमारे घर जो रूखा-सूखा है, वह मैं ले आयी। अब तुम इनकी आवभगत विशेष करना चाहो तो तुम्हारी मर्ज़ी। मैं तो चली कपड़े बदलने,'' कह कर सावित्री अपने कमरे में चली आयी।

सत्यवान को लगा, वह मां से विदा ले कर लौट पड़े किंतु मां तब तक चौके की ओर जा चुकी थी। बैठक में कुछ देर बैठ कर वह ऊब गया और निःसंकोच सावित्री के कमरे में बिना पूछे घुस आया। सावित्री साड़ी पहन रही थी। शरमाते हुए बोली, ''दो मिनट धैर्य से बैठक में मेरा इंतज़ार करें, अभी आयी।''

''नहीं सवि, मैं एक क्षण भी तुमसे दूर नहीं रह सकता,'' कहते हुए सत्यवान ने सावित्री को अपने आलिंगनपाश में बांध लिया और गर्म श्वासों भरे चुंबन द्वारा उसे बेसुध करने लगा। सावित्री भी तृप्त धरा पर वर्षा की बरसती बूंदों सी उस स्नेह से सिक्त होती गयी। मां कड़ाही में हलवा भूने जा रही थी, देशी घी में बेसन के भूने जाने की महक घर में छायी हुई थी। अपने को किसी तरह मुक्त करके सावित्री सत्यवान को बैठक में बैठ जाने के लिए घसीट लायी, तब तक मां भी गर्म गर्म हलवे की प्लेट ले कर आ पहुंची। सत्यवान ने तृप्ति के साथ हलवा खाते समय भरपूर उसकी प्रशंसा की और मां और सावित्री से विदा ले एक नया विश्वास लिये चल पड़ा अपने होटल की ओर।

सत्यवान को विदा करके सावित्री ने बैठक से बरतन उठाये और चौके में जा कर उन्हें धोने लगी। मां ने बहुत दिनों बाद सावित्री को सहज रूप से गृहस्थी के किसी कामकाज में रुचि लेते देखा था। वह अपनी इस खुशी को दबा न सकी, ''सावित्री, काश! हमारे घर इस तरह का मेहमान रोज़ रोज़ आये। देखो, कितने वर्षों बाद नयी उमंग हमारे घर में आयी है!''

''पता नहीं मां, तुम जैसी घर-गृहस्थी में समायी महिलाओं को केवल पुरुष के आ जाने में घर घर सा लगता है। हमारी मिसेज़ दास भी तो हैं, वह तो अकसर आती जाती

रहती हैं।"

"हां, वह तो हमारी अपनी हैं। उनसे बड़ा हमारा हितैषी इस शहर में दूसरा कोई नहीं है। आज वह तुम्हारे साथ क्यों नहीं आयीं?"

"उन्हें कोई निजी काम था," कह कर सावित्री अपने कमरे में फ़ौरन चली गयी। उसे डर था कि कहीं सत्यवान के घर में आने की बात को सुन कर मिसेज़ दास नाराज़ न हो जायें। मां अवश्य ही मिसेज़ दास से भेंट होने पर सत्यवान के घर आने की चर्चा करेगी और मिसेज़ दास सावित्री को अवश्य इसके लिए माफ़ न कर पायेंगी। ख़ैर, तब का तब देखा जायेगा। आजकल सावित्री किसी बात को देर तक सोचने की मनःस्थिति में नहीं थी। केवल आंख मूंद वह सत्यवान की इस भेंट की तसवीर को अपने मस्तिष्क में संजो कर पुलकायमान हो जाना चाहती थी। सत्यवान के एकाएक उसके निजी कक्ष में निःसंकोच घुस आने का दृश्य आंखों के सामने आ उसकी अधेड़ अवस्था के शरीर में आज भी कुछ वैसी ही अनुभूतियां पैदा कर देता जो उसे सत्यवान के साथ प्रथम आलिंगन में हुई थीं। उसे जयशंकर प्रसाद जी की ये पंक्तियां याद आ गयीं, 'मौज बहार की एक घड़ी अच्छी है इस लंबे दुख भरे जीवन से, जिसकी खुमारी में रूखे दिन काटे जा सकते हैं।' सावित्री अपने दिवास्वप्नों में तिरोहित हो कर यह भी भूल गयी कि मां चौके में खाना तैयार किये हुए उसका इंतज़ार कर रही है।

मां ने एकाएक आ कर बल्ब जला कर उसके कमरे को रोशनी से भर दिया और उसे झकझोरते हुए कहा, "कितनी देर से तुम्हारा इंतज़ार कर रही हूं। खाना ठंडा हो रहा है। क्या आंख लग गयी थी कि तुम्हें समय का भी ख़याल न रहा? चलो चौके में।"

"हां मां, आंख लग गयी थी। पूरा दिन काफ़ी व्यस्त रहा है। अब मेरा शरीर जल्दी थक जाता है।"

"अभी से? मेरी उम्र तुमसे कितनी बड़ी है, मैं तो जल्दी नहीं थकती हूं, ये सब तुम्हारी अंग्रेज़ी दवाई खाने का नतीज़ा है। तुम्हारे डॉक्टर का क्या कहना-है, कब तक दवाई खानी पड़ेगी?" थाली परोसते हुए मां ने पूछा।

"लगातार तीन साल तक जब तक कोई और उन्माद-विषाद का दौरा नहीं पड़ता है," पीढ़े पर बैठते हुए सावित्री का उत्तर था।

"भगवान करे वह दिन भी आये जब तुझे इस भयंकर रोग से छुटकारा मिले। इसके लिए मैं तो प्रतिदिन इंतज़ार कर रही हूं। तेरे हाथ पीले करने के बाद मैं तीर्थयात्रा पर चली जाऊंगी," मां ने उत्साहित हो कर कहा।

"मां, मैंने कितनी बार आपसे कहा है कि ये सब बातें मुझसे मत किया करो। मेरा दिल इन सबको सुन कर घबराने लगता है, पर तुम हो कि अपनी रट लगाये रहती हो। बचपन से ये सुनते सुनते मेरे कान पक गये हैं, अब तो अपनी इच्छाओं को मुझ पर लादने की कोशिश न करो," क्रोधित हो सावित्री ग़ुस्से से थाली छोड़ पैर पटक कर अपने कमरे में चली गयी और अंदर से दरवाज़ा बंद कर लिया।

मां सावित्री के कोपभवन में चले जाने से डर से कांप उठी। मन ही मन वह भगवान का नाम लेने लगी, "हे ईश्वर! मेरी बेटी को सुबुद्धि दे! वह क्रोध में अपना कोई अनिष्ट न कर बैठे!" घबरा कर उसने मिसेज़ दास की याद की। कहीं से भगवान उसे ही यहां भेज दे। विनती करती हुई सावित्री की मां चौके में आ कर रसोई समेटने लगी। सावित्री के थाली छोड़ देने से उसे अन्न के इस अपमान से शंका हो उठी कि कहीं सावित्री का पागलपन उसकी नौकरी को न ले डूबे। परसी थाली को छोड़ कर जाना अन्न का अपमान करना है। ऐसा मनुष्य अन्न के एक दाने के लिए तरस कर रह जाता है। धार्मिक रीति-रिवाजों से बंधी सावित्री की विधवा मां में अनेक तरह की चिंताएं थीं लेकिन सावित्री के पागलपन से बड़ी और असहनीय उसकी कोई अन्य चिंता न थी। मां को इस रोग के विषय में कोई ज्ञान न था। जितना मिसेज़ दास बतला देती, उतना ही वह अपने आंचल में बांध कर रख लेती। डॉक्टरों का कहना था कि यह रोग पैतृक परंपरा के कारण हुआ है। सावित्री की मां को अपने ससुराल एवं अपने पिता के वंश की दो-तीन पीढ़ियों की ही जानकारी थी। अतएव उसे यही मान कर संतोष करना पड़ा कि शायद उसके किसी पूर्वज को यह बीमारी हो। मिसेज़ दास डॉक्टर की इस राय से असहमत थी और मन ही मन सावित्री के रोग को सत्यवान के कठोर व्यवहार और नारी हृदय को तिलतिल कर जलाने की परिणति मानती थी। किंतु मां को इस विषय में कैसे बतला देती। मां ने अपना लंबा वैधव्य जीवन रो रो कर काटा था, केवल अपनी एकमात्र संतान सावित्री के सहारे। बेचारी सावित्री सधवा होते हुए भी रो रो कर विरहिणी का जीवन काट रही थी। उसके पास कोई संतान भी न थी जिसके लिए वह अपना जीवन अर्पण कर देती। डॉक्टर ने मिसेज़ दास से यह पूछा कि सावित्री ने विवाह क्यों नहीं किया? किस बात की कमी थी कि इतनी अधिक पढ़ी-लिखी, सुंदर, संस्कारी लड़की का हाथ थामने कोई भी वर सामने नहीं आया? मिसेज़ दास ने इस प्रश्न का उत्तर देना उचित नहीं समझा। डॉक्टर से यही कहा, "कृपया आप अपने रोगी का विश्वास प्राप्त करके उससे स्वयं पूछ लीजिए। मैं तो इस परिवार को सावित्री की नौकरी के बाद से जानती हूं। मेरी समझ में इसका उत्तर सावित्री के पास अवश्य होगा जिसको वह आपको भी नहीं बतलाना चाहती।"

पाठकगण, कदाचित् आप भी मानसिक रोगों के कारणों से अवगत न होंगे।

सावित्री की विचारतंद्रा टूटी। बाहर किसी ने घंटी बजायी थी। अपना दरवाज़ा खोल कर वह तुरंत बाहर देखने गयी। किंतु वहां वह नहीं था, जिसकी देखने की लालसा में वह आयी थी। उसके पीछे पीछे मां भी दौड़ कर आयी थी। बाहर मिसेज़ दास को खड़ी देख वह मुस्करा कर बोली, "अरे, इस समय तो भगवान से मुझे किसी अन्य चीज़ की प्रार्थना करनी चाहिए थी। तुम्हें अभी याद किया और तुम आ गयीं बिटिया।" सावित्री की मां ने मिसेज़ दास को हृदय से लगा लिया और भगवान को मन ही मन कोटिशः धन्यवाद दिये।

"क्यों मेरी याद हो रही थी? सावित्री को देख कर तो लगता नहीं कि वह मेरे लिए यहां पलक-पावड़े बिछाये बैठी थी।" मिसेज़ दास ने मां के आलिंगन से अपने को अलग करते हुए सावित्री के चेहरे पर छायी निराशा को परखते हुए पूछा।

"मैं तो पूरे दिन आपके साथ काम करती हूं। खाना भी साथ साथ खाती हूं। दफ़्तर में सब लोग हमारी दोस्ती पर छींटे कसते रहते हैं। मुझे आपके कमरे में जाते हुए देख कर हंसने लगते हैं। सुना है, लोगों ने मुझे टाइटिल दिया है, सखि बिन पग न धरूं," सावित्री ने झेंपते हुए सफाई दी।

"सो तो है कि हमारी दोस्ती को देख अन्य लोग कुछ न कुछ अवश्य कहेंगे। ज़्यादातर दुनिया वालों के पास दूसरे की निजी बातों में ताकने-झांकने के सिवाय दूसरा काम जो नहीं होता? आज दफ़्तर से निकलते समय…"

सावित्री ने मिसेज़ दास का हाथ दबा कर मिसेज़ दास को आगे कुछ कहने से रोक दिया। वह सत्यवान की अनायास भेंट के विषय में मां के सामने कुछ कहना-सुनना नहीं पसंद करती थी। मिसेज़ दास उसका इशारा फ़ौरन समझ गयी। बात का रुख़ पलट कर उसने सावित्री की मां से पूछा, "मां, तुम मुझे याद कर रही थीं, क्या कोई विशेष बात थी, बतलाओ?"

"तुम आ गयीं तो वह काम अपने आप पूरा हो गया है, अकेलेपन का सूनापन मुझे बेहद असहनीय लगने लगा है। न जाने कैसे दुष्ट विचार मस्तिष्क में आने लगते हैं और मेरे चित्त को व्याकुल कर देते हैं। बेटी, अभी से मेरा यह हाल है तो मेरा बुढ़ापा कैसे कटेगा?" मां ने दुखी हो कर पूछा।

"अरे मां, दिमाग़ ख़ाली होने पर शैतान बन जाता है। आप अपनी दिनचर्या को व्यस्त रखा करें। क्यों न सावित्री के वापस आ जाने के बाद आप सत्संग में जाने लगें। खाना शाम को ही बना कर रख दिया करें," मिसेज़ दास ने सुझाव दिया।

सावित्री ने रुचि लेते हुए कहा, "हां मां, तुम सत्संग जाना शुरू करो। मैं शाम का खाना खुद बना दिया करूंगी। कब तक तुम सारी गृहस्थी का भार अपने कंधों पर ढोती रहोगी?"

"मुझे गृहस्थी के काम-काज को ले कर परेशानी नहीं है, काम ही कितना है? गृहस्थी के काम-काज को करते रहने में शरीर भी हलका रहता है। मुझे तो तेरे भविष्य की चिंता लगी रहती है," कहते हुए मां की पथरायी हुई आंखों से आंसू टपकने लगे।

मिसेज़ दास मां के आंसू पोंछने लगी लेकिन उसे पता था कि सावित्री इन आंसुओं को देख मन ही मन अति व्याकुल हो उठेगी। फिर अपनी कोमल भावनाओं को दबा कर कुछ ऐसी कठोर बात कह उठेगी जिससे मां का हृदय चकनाचूर हो जायेगा। जैसी शंका थी, वैसा ही हुआ। सावित्री एकाएक रोष में आ कर मां को धिक्कारने लगी, "आपके साथ दो मिनट बैठना भी असंभव हो गया है। आये-गये मेहमान के सामने भी अपना रोना ले कर टेसुए बहाने की आदत जो पड़ी हुई है आपको।"

मिसेज़ दास ने सावित्री को शांत हो जाने का इशारा किया लेकिन मां ने कातर स्वर में सावित्री से कहा, "तुमसे मेरे आंसू नहीं देखे जाते हैं तो अपने कमरे में चली जाओ। अपना दुख-दर्द नहीं बांट सकूंगी तो मैं भी तुम्हारी तरह···" मां बोलते बोलते रुक गयी।

"क्यों नहीं कहतीं, पागल हो जाऊंगी?" सावित्री खीजती हुई उठ कर अपने कमरे में चली गयी और दरवाज़ा अंदर से बंद कर लिया।

मां ने सिसकते हुए मिसेज़ दास को बतलाया, "एक नया रूप सामने आ रहा है। बात बात पर मुझे झिड़कने लगती है। आज थाली छोड़ कर चली गयी और अंदर से दरवाजा बंद कर लिया। मैं तो डर रही थी कि कहीं यह कुछ कर न बैठे। दरवाज़ा खुलवाने का साहस मेरे में नहीं है। गुस्से में यह आपे में नहीं रहती है। मुझे भी मानो कच्चा ही खा जायेगी। ऐसे दांत पीस पीस कर देखने लगती है।"

"मां, इतना भयभीत होने की आवश्यकता नहीं। आपकी ही सुरक्षा उसे केवल मिली हुई है लेकिन वह जिस डाल पर बैठी है, उसी को काट देने का पागलपन कर रही है। जब उसे अपने शरीर के प्रति कोई ममता नहीं है तो आपसे कहां से हो सकती है? अच्छा है, अपने मन की भड़ास आप पर उतार लेती है," मिसेज़ दास ने स्नेह से समझाया।

"इसे पहले तो कभी क्रोध नहीं आता था। इसकी ज़बान न जाने आजकल क्यों इतनी अधिक कड़वी हो गयी है? यह अपने कमरे में अकेले रहना ज़्यादा पसंद करती है। वहां पर ज़ोर ज़ोर से रेडियो चलता रहता है या यह कुछ गाती रहती है। एक ही लाइन बार बार सुनते सुनते मेरे कान पक जाते हैं। सोती कम है, नहाती घंटों और चाय बेहद पीने लगी है। मुझे लगता है, इसे डॉक्टर के पास ले जाना चाहिए," मां ने सलाह दी।

"ठीक है, समझा-बुझा कर डॉक्टर के पास ले जाऊंगी लेकिन आपके भयभीत हो जाने से उसका विपरीत प्रभाव पड़ेगा। मेरी समझ में इसके दरवाज़े के अंदर की कुंडी को आप कल ही किसी को बुला कर अलग करवा दें। अंदर से बंद करने का सिलसिला अवश्य हट जाना चाहिए। अकेले कुछ करे तो उसकी ख़बर अवश्य आपको रखनी होगी।" मिसेज़ दास ने समझदारी से परिस्थिति का हल ढूंढ़ सकने में मां को अपनी सलाह दी और स्वयं सावित्री के कमरे के सामने खड़े हो कान लगा कर अंदर से आते गाने को सुन लेने की चेष्टा की। सावित्री एक ही लाइन गा रही थी, 'चुपके चुपके आंसू बहाना याद है'। मिसेज़ दास ने बाहर खड़े रह कर सावित्री का गाना सुनना उचित नहीं समझा। दरवाज़े को थपथपाते हुए वह बोली, "सवि, क्या मैं जाऊं? मां से मेरी बातचीत ख़त्म हो गयी है। बाहर निकलो, थोड़ी देर तुम्हारे साथ टहलने के बाद मैं घर वापस जाना चाहूंगी।"

"आई अभी, ज़रा रुको," सावित्री के इस धीरे से जवाब के बाद गाना बिलकुल बंद हो गया। वह बाथरूम में देर तक नहाने के बाद शांत चित्त से बाहर निकली। मिसेज़ दास ने इस लंबे इंतज़ार के प्रति कुछ कहा-सुना नहीं और मां से विदा ले कर सावित्री

के साथ टहलने निकल पड़ी।

नवंबर की ठंडी शीतल हवा से मिसेज़ दास के शरीर में कंपकंपी आने लगी, लेकिन सावित्री को अवश्य ही ठंड नहीं लग रही थी। दोनों महिलाएं चुपचाप काफ़ी दूर तक चल चुकी थीं। चौराहे पर खड़े साइकल रिक्शा को देख मिसेज़ दास ने कहा, "सवि, मुझे इतनी दूर चल लेने के बाद भी जाड़ा लग रहा है। इसलिए मैं इस रिक्शे को ले कर घर जाना चाहूंगी।"

"लेकिन आप तो सैर करने का बहाना बना कर मुझसे कुछ पूछने का इरादा ले कर आयी थीं। वह बात आपने मुझसे अभी तक नहीं पूछी है," तपाक से कहे सावित्री के इस चुनौती भरे कथन ने मिसेज़ दास को अवाक् कर दिया।

अपने को संयमित करके वह बोली, "शायद तुम्हारा इशारा आज शाम दफ़्तर से बाहर निकलते ही सत्यवान का तुम्हारे साथ मिलन देख मेरा वहां से एकाएक चले जाने की ओर है।"

"शायद हां, आपका एकाएक चला जाना समझ में आया लेकिन आपने इस भेंट के बारे में पूछताछ नहीं की है। मुझे पता है कि आप सत्यवान से मुझे मिलने-जुलने की अनुमति नहीं देंगी। इसी बात को जानने के लिए आप मुझे सैर पर ले कर आयी थीं, किंतु पूछ नहीं रही हैं। शायद डरती हैं कि मैं मां की तरह आपका भी अपमान न कर बैठूं। आपको अधिकार है पूछने का कि सत्यवान इतने अरसे बाद आज एकाएक क्यों आ गये।"

"यह पूछने का विचार मेरे मस्तिष्क में अवश्य आया, किंतु तुम्हारी प्रतिक्रिया क्या होगी, मैंने इसका अनुमान लगा लिया। फिर अपनी जिज्ञासा को दबा सकने का सामर्थ्य मुझमें है।"

"वह तो दिख ही रहा है, किंतु आप अन्यथा कुछ सोचें-विचारें नहीं इसलिए मैं खुद ही बतला देती हूं। वह काफ़ी परेशानी में है, दफ़्तर से निलंबित है और क़ानूनी फंदे में फंसा हुआ है इसी भटकाव में उसके पैर मेरी ओर चल पड़े," कह कर सावित्री सावधान हो कर मिसेज़ दास की भाव-भंगिमा पढ़ने की चेष्टा करने लगी।

"मुझे इस विषय में जानकारी है कि आजकल सत्यवान काफ़ी मुश्किलों के घेरे में फंसा हुआ है। ऐसे में एक सच्चे मित्र की ज़रूरत सबको होती है। दुर्दिन में जो काम आये, वही सच्चा मित्र कहलाने का हक़ रखता है," मिसेज़ दास ने तटस्थ भाव से कहा।

"लेकिन मां को यह सब कहां समझ में आयेगा? उससे मुझे झूठ बोलना पड़ा कि वह हमारे दफ़्तर में आमंत्रित एक वरिष्ठ अतिथि थे जिन्हें जलपान कराने घर लाना पड़ा।"

"मां के पास घर में जलपान कराने की क्या ज़रूरत थी? सत्यवान के साथ तुम्हारी भेंट हमेशा बाहर ही होती आयी है, तब आज···" मिसेज़ दास सहसा कहते कहते रुक गयीं।

"मुझे भी सत्यवान के आज के व्यवहार को देख हैरानी हुई है। वह तो मेरी मां के

आशीर्वाद के लिए अति विनीत हो झुक कर मां के पैर भी छू गया है, मानो उससे कोई जघन्य पाप हो गया है। मुक्ति के लिए उसे बड़ों के शुभाशीष की हृदय से इच्छा है। मेरे प्रति भी उसमें पहला जैसा स्वामित्व भाव न था, केवल क्षमाप्रार्थी याचक की तरह आया और मुझे अंदर तक झकझोर कर उलटे पैर चला गया। ऐसे निष्ठुर व्यक्ति से अपनी व्यथा के लिए क्या कहा जा सकता है, जो केवल अपनी वेदना से कराह रहा हो और दूसरों को पकड़ कर अपने समीप बिठा ले?''

''सवि, तुमने ठीक पहचाना, सत्यवान केवल अपनी कोमल भावनाओं की टीस को समझ पाता है, इसीलिए एक छोटे बालक की तरह अधीर हो, जो उसके सामने आता उसे पकड़ कर वह सहारा और प्रेम देने के लिए मचल पड़ता है।''

''काश, मैं आपकी तरह उसकी इस बचकानी आदत को पहले समझ पाती!'' सावित्री ने ठंडी सांस लेते हुए कहा।

''अभी भी देर नहीं हुई है। कहते हैं सुबह का भूला यदि शाम को वापस आ जाता है तो भटका नहीं कहलाता। सवि, तुम्हें अपनी मां के लिए कटिबद्ध होना होगा, उन सबके लिए, जो तुम्हें हृदय से प्यार करते हैं। इस नाटक का परदा अब गिरा दो। सत्यवान की अपनी पत्नी, बच्चे, गृहस्थी है। तुम उसे बिगाड़ कर कभी सुखी नहीं हो सकतीं। तुम यह जघन्य पाप कभी नहीं कर सकतीं,'' कहते हुए मिसेज़ दास का गला रुंध गया।

''आपकी सीख सिर माथे पर। मैंने भी उसकी पत्नी उमा का हित हमेशा अपने आगे सर्वोपरि रखा है। मुझे सत्यवान के शरीर से उमा की गंध इतनी अधिक आ कर व्याकुल कर देती है कि मैं इतने वर्षों के बाद भी उस गंध से अपने को मुक्त नहीं कर सकी हूं। पता नहीं विधाता ने मुझे इस ओर क्यों जाने से रोक नहीं लिया? उसने तो मुझे इतना अधिक विवेक दिया है, बुद्धि दी, विद्या दी किंतु सत्यवान की कामवासना के सामने मुझे इतना अशक्त क्यों कर दिया है? आज भी ऐसा ही मन कर रहा था कि मैं सत्यवान के साथ आंख मूंद कर पीछे पीछे चल दूं। देखा जायेगा, जो भी होगा।''

''क्या इसीलिए मां पर इतना ग़ुस्सा आ रहा था? क्योंकि उस परिधि को लांघ कर जाना तुम्हारे लिए असंभव रहा होगा,'' मिसेज़ दास ने उत्साहित हो कर पूछा।

''हां, शायद मां का ख़याल ही मुझे रोक लेता है। जैसे बालक को लाल लाल आग की लपटें उसे छू लेने के लिए लालायित करती हैं परंतु उसकी मां तत्काल आ कर उसे जलने से बचा लेती है, वैसा ही मां ने आज किया है। कृपया आप मां से कुछ न कहना।'' वह सिंहनी बन सत्यवान पर टूट पड़ेंगी, कातर स्वर में सावित्री ने विनय की।

''प्रेम तो अंधा होता है और मनुष्य को पंगु बना देता है। सवि, इसमें तुम्हारा क्या दोष? बड़े बड़े योगी, संन्यासी इसके चक्कर में पड़ अपना पथ छोड़ देने को तत्पर हो जाते हैं। इस दोष भावना से अपने को उबारने की कोशिश करो। जीवन हमें ऐसे ही कटु अनुभवों द्वारा जो शिक्षा देता है, वही असली ज्ञान है। बाक़ी तो किताबी ज्ञान होता

है।" मिसेज़ दास ने भावुकता से सावित्री को अपनी बांहों में पकड़ा, किंतु सावित्री ने अपने को छुड़ाते हुए झुंझला कर कहा, "आप भी विश्वास नहीं करती हैं कि मैंने प्रेम नहीं किया है? प्रेम सत्यवान ने मुझसे किया और मुझ पर अपना रिश्ता क़ायम रखने के लिए सदैव बाध्य किया। मुझे इमोशनली ब्लैकमेल किया है। जीवन में प्रथम बार मैंने अपने से भी अधिक किसी पर यदि विश्वास किया है तो वह सत्यवान है।"

"जिस पर विश्वास किया हो उसी को नारी हृदय जीवनपर्यंत अपना सब कुछ देती है। पुरुष हृदय में आ जाने पर प्रेम करता है। नारी हृदय प्रेम में देती आयी है," कह कर मिसेज़ दास अपनी घड़ी देखने लगी, क्योंकि उसे देर हो रही थी। रिक्शा वाला चला गया तो दूसरा रिक्शा ढूंढ़ने में देर लगने की संभावना थी।

सावित्री ने उसकी बेचैनी देख कर कहा, "कभी इस विषय पर बातचीत होगी। अभी तो आपको देर हो रही है, किंतु इतना याद रखिएगा, सत्यवान और सावित्री दोनों समय की नदिया पर दो अलग-थलग तट बने खड़े हुए हैं। दोनों का मिलन इस जीवन में असंभव है। दोनों एक दिन अगाध सागर में अवश्य एक साथ तिरोहित हो जायेंगे," शून्य में देखते हुए खिन्न चित्त से सावित्री ने अपनी बात दृढ़ता से कही और मिसेज़ दास को निरुत्तर कर दिया।

रिक्शे में बैठ जाने के बाद मिसेज़ दास ने अपने गंतव्य स्थान का पता बता कर रिक्शे वाले से मोल-तोल किया, "आपको जगह मालूम है न, वहां तक पहुंचाने के कितने पैसे लेंगे?"

"मैडम, मैं इस शहर में नया हूं, दूरी देखने के बाद ही बता सकूंगा कि मेरी कितनी मज़दूरी हुई। आप ज़रा चौराहा और भीड़ आने पर रास्ता बतलाती रहें," रिक्शे वाला कह कर फुर्ती से साइकल रिक्शा भगाने लगा।

एक रिक्शे वाला भी सवारी पर विश्वास के कारण अपनी कड़ी मेहनत को दांव पर लगा कर इस महानगरी में जीवनोपार्जन कर सकता है। उसे डर नहीं है कि सवारी उसका शोषण कर सकती है, लेकिन सत्यवान ने प्रेम किया है या सावित्री के भोलेपन और संवेगों का ब्लैकमेल हुआ है। यह सोच सोच कर मिसेज़ दास का मन उचाट हो उठा। प्रेम में धोखा सुनते आये हैं और साहित्य में सच्चे प्रेम की परिणति दुखांत में ही ज्यादातर होती है, किंतु यहां तो सावित्री की आस्था, विश्वास पर तुषारापात हुआ है। कदाचित् यही कारण है कि वह अपना मानसिक संतुलन खो बैठी है। बेचारी जीवन भर के लिए हर्ट (घायल) हो गयी है, ऐसी चोट का निदान मनोचिकित्सक केवल दवा दे कर कैसे ठीक कर सकते हैं? सावित्री के थिर जीवन में सत्यवान की यह अनायास भेंट अवश्य हलचल मचा कर रखेगी, मिसेज़ दास यह सोच कर कर्त्तव्यविमूढ़ थी। वह अच्छी तरह से जानती थी कि वह सावित्री को सत्यवान से ऐसे आड़े समय में मिलने से नहीं रोक पायेगी। सावित्री बाढ़ की नदिया सी सत्यवान के एक बुलावे पर दौड़ी जायेगी। इस समय सत्यवान को भी सावित्री की सहायता एवं मनोबल ऊंचा रखने की आवश्यकता

है किंतु सत्यवान को सहारा देने में सावित्री स्वयं को खंडित होने से नहीं रोक सकेगी। इस समय चक्कर में फंस कर इस प्रेम प्रसंग की चर्चा यदि दफ़्तर तक पहुंच गयी तो सावित्री की जगहंसाई ही होगी। अभी तक तो सावित्री के बारे में किसी ने अंगुली तक नहीं उठायी है, सावित्री को इस बढ़ती आग की लपटों से कैसे बचाया जा सकता है। इसी सोच में डूबी मिसेज़ दास रिक्शे वाले को मोड़ आने पर रास्ता बताना चूक गयी, उसका ध्यान अनजाने पथ की दुकानों के बोर्ड को पढ़ कर सहसा टूट पड़ा। घबराते हुए उसने रिक्शे वाले से पीछे मुड़ने के लिए कहा। रिक्शे वाला भी चौंक पड़ा, "मैडम, पहले कहतीं, अब तो यह रास्ता पार करके मोड़ आने पर दूसरी ओर जा सकते हैं। पीछे जाने के लिए चौराहे की बत्ती के मोड़ तक जा कर उस पार जाना होगा।"

मिसेज़ दास अपनी इस भूल के लिए अपने को माफ़ करने में असमर्थ थी। देर वैसे भी हो गयी थी। क्यों बेचारे रिक्शे वाले से इतनी दूर की मेहनत करवायी? थोड़ी देर में एक लालबत्ती वाला चौराहा आता दिखा, रिक्शे वाले ने फुर्ती से मुड़ कर पीछे मुड़ जाने का रास्ता पकड़ लिया। घर पहुंच कर मिसेज़ दास ने रिक्शे वाले ने जितनी मज़दूरी मांगी उससे पांच रुपये बढ़ा कर पैसे देने चाहे, लेकिन रिक्शे वाला भी अपनी बात का धनी निकला। वह पांच रुपये वापस करते हुए बोला, "मैडम, मैं तो यह साइकल रिक्शा दिन भर चलाता रहता हूं। आपकी छोटी सी असावधानी के कारण कुछ पैडल अधिक चलाने के लिए मुझे पांच रुपये नहीं लेने। वैसे ही आपने मुंहमांगी मज़दूरी दी है।" तुरंत वहां से साइकल रिक्शा वाला पैडल घुमा कर चल पड़ा। मिसेज़ दास हैरान थी कि एक रिक्शे वाले में इतनी ईमानदारी है और कहां हम हैं? इतने अधिक पढ़े-लिखे वरिष्ठ वैज्ञानिक होते हुए भी सत्यवान ने समाज की मान्यताओं की अवहेलना अपने स्वार्थ के लिए की है। आज नियति ने उसे नौकरी से निलंबित करके अच्छा सबक़ सिखलाया है, लेकिन उस यातना को बेचारी भोली-भाली सावित्री क्यों सहे? सावित्री के प्रति उपजी सहृदयता एवं ममत्व भाव से मिसेज़ दास उस रात घर आ कर खाना खा-पी कर शांति से सो न सकी। क्या इस प्रतिशोध का कारण उसकी अपने नारी जीवन की विषम परिस्थिति की यातनाएं थीं जिसकी चोट से वह सहसा आज पुनः कराह उठी थी। इसका अनुमान पाठकगण लगाने के लिए स्वतंत्र हैं। अवचेतन मन से उपजी मिसेज़ दास की इस प्रत्यांघातक हिंसा को कदाचित् मनोविश्लेषण द्वारा मीमांसा करके ज्ञात किया जाना संभव नहीं। क्या लेखिका के लिए इस विषय में अटकलबाज़ी लगाना उचित होगा? किंतु इतना अवश्य कहा जा सकता है कि भावनाप्रधान नारी हृदय को अपनी कामुकता के आवेश में विवाहित पुरुष ने अपने सच्चा प्रेम करने के प्रलोभन से सहज ही भ्रमित रखा है। आज भी ऐसी अनेक कुमारी अधेड़ उम्र की आधुनिक युवतियां हैं जो ऐसे कामुक पुरुषों के इस प्रेमजाल में फंस जाती हैं और अपना तन-मन-धन सब अर्पित कर इसी प्रतीक्षा में बैठी रहती हैं कि एक दिन उनका प्रेमी वरमाला ले कर अपनी वचनबद्धता को निभाने विवाह वेदि पर अवश्य आयेगा।

छह

आजकल सावित्री मां की इस हठ को देख हैरान हो रही थी कि उत्तर भारत की तीर्थयात्रा करने के लिए मां रट लगाये हुए है। सावित्री कई वर्षों से उत्तर भारत नहीं गयी है। यहां पर आ कर नौकरी कर लेने के बाद से सावित्री का मन ही नहीं हुआ कि वह अपने जन्मस्थान जाये और वहां अपने परिवार के निकट के रिश्तेदारों से मिले। इसके अतिरिक्त उसे पता था कि उत्तर भारत जा कर वह सत्यवान से संपर्क स्थापित नहीं कर सकती। साथ में यह भय मन में रेंगने लगता कि वहां गयी तो उसके पैर अनायास ही सत्यवान से संपर्क करने के लिए दौड़ पड़ेंगे। गत कई वर्षों से वह सत्यवान का एक चित्र मन में बनाये रखना चाहती थी कि वह अपनी अच्छी नौकरी, सुंदर पत्नी और सुयोग्य संतान के साथ सामान्य लोगों से अधिक सुखी जीवन व्यतीत कर रहा है। किंतु सत्यवान की अचानक इस भेंट ने उसके दिवास्वप्न को तोड़ दिया। उसका मन चिंताओं से घिर गया। सत्यवान को उसने इतना अधिक टूटा पहले कभी नहीं देखा था। इस नयी परिकल्पना ने उसके मन में बेहद अशांति पैदा करके रख दी। माना वह उसके रिश्ते-नाते में कोई नहीं थी, फिर भी उसने उसे तन-मन-धन से सदैव अपना माना है और कुछ समय के लिए ही सही, सत्यवान ने भी उसे पत्नी से अधिक बड़ा प्रेमिका का पद दिया है। अतएव उसकी दुर्दशा से परिचित हो जाने के बाद वह कैसे असंबद्ध हो कर दक्षिण के इस शहर में नौकरी कर सकती है?

सावित्री ने मां से एकाएक कहा, "चलो मां, तुम्हें तीर्थाटन करवा लाऊं। कहां कहां जाने का विचार है? मुझे पहले से रेलवे में बुकिंग करवानी होगी और अपनी छुट्टी के लिए मंज़ूरी लेनी होगी।"

मां ने तत्क्षण निर्णय ले लिया। तीर्थाटन के लिए बद्रीनाथ, केदारनाथ का प्रोग्राम बना, रास्ते में हरिद्वार और ऋषिकेश के दर्शन तो सहज ही मिल जाते, किंतु इलाहाबाद जाना भी ज़रूरी समझा गया। वहां मां के मैयके वाले रहते हैं। प्रयागराज में नहाये बिना मां अपने को क्षमा नहीं कर पायेगी। मां को सावित्री की वर्तमान आर्थिक बचत का अंदाज़ न था, सावित्री भी निश्चित रूप से नहीं जानती थी कि उसके बैंक में इस समय कितने पैसे हैं जिन्हें वह इस यात्रा में ख़र्च कर पायेगी, लेकिन फिर भी कहा, "आप ख़र्चे

हताश हो मां ने सफ़ाई दी।

"सावित्री को झिड़कना या उससे तर्क करना व्यर्थ है, वह अपने उतावलेपन में जो एकाएक निर्णय ले लेती है, उसी को कार्यान्वित करने लगती है। कोई रोकटोक करने की कोशिश करे तो क्रोध से बरस पड़ती है।" मिसेज़ दास ने मां को समझाया और उत्साहपूर्वक पूछा, "कहां कहां की यात्रा करने का प्रोग्राम निश्चित हुआ है।"

"बद्रीनाथ, केदारनाथ और बीच में जितने और तीर्थस्थान देखने का सौभाग्य मिल पावेगा, वह सब।"

"ओह, हिमालय के तीर्थाटन के लिए जा रही हैं! मैंने भी ऋषिकेश के दर्शन किये हैं। ओह! आप लोग तो बद्रीनाथ और केदारनाथ जा रही हैं, आप लोग भाग्यवान हैं जो वहां जा रहे हैं। एक सलाह दूं, गंगा के विभिन्न स्वरूपों को ज़रा ध्यान से देखना, आप तो प्रयागराज की विशाल गंगा से बचपन से परिचित हैं। ऋषिकेश की गंगा को देख मैं मंत्रमुग्ध हो गयी, कैसी वह सुखद यात्रा होगी जहां से गंगा उद्गम देखने की छवि मिले! हिमालय और गंगा, कितना अनुपम वह दृश्य होगा, कल्पना करके ही मेरे मन-प्राण में स्फूर्ति आ गयी है। चलती हूं मां, सावित्री नहीं दिख रही है? उससे कई दिनों से भेंट नहीं हो सकी है। लगता है, मानो वर्षों बीत गये हों, आप दोनों के एकसाथ चले जाने से मेरा जीवन यहां नीरस हो जायेगा," कहते हुए मिसेज़ दास की आंखें छलक उठीं। मां को अपनी कमज़ोरी छिपाने के विफल प्रयास में देख मिसेज़ दास बाथरूम में जा कर अपना मुंह धोने लगी।

पीछे से मां बाथरूम में आ मिसेज़ दास को प्रेमपूर्वक हृदय से लगा कर बोली, "मेरे लिए बिटिया, तुम सावित्री की तरह हो, तुम्हें अकेले छोड़ते समय मैं भी बड़े भारी मन से यहां से जाऊंगी। बिटिया, मैं तुम्हारी तरह पढ़ी-लिखी तो नहीं हूं लेकिन नारी जीवन को सरिता के जीवन सा बताया गया है। नदियां सतत बहती हैं क्योंकि उनके जनक अटल-अडिग हैं। तुम हमारे इतने दिनों के साथ को नदियों में बहती कटी लकड़ी के लट्ठों जैसा समझो। लिपट कर कुछ दूर चल, कौन किस किनारे छूट गया या फिर आ मिला, ईश्वर ही जाने, अपने मन को छोटा न करो।" मां मिसेज़ दास को दरवाज़े पर पहुंचा प्रेमपूर्वक विदा दे कर पुनः सामान बांधने के कार्यक्रम में व्यस्त हो गयी।

संध्या हो चली थी लेकिन सावित्री का कुछ अता-पता न था। मां सामान बांध कर उठी तबसे सावित्री की चिंता सताने लगी। इधर यात्रा के लिए पैसों के, टिकट के और न जाने अन्य कितने कार्यों में सावित्री दौड़-भाग अकेली कर रही थी। थक कर चकनाचूर हो जाने के कारण उसकी भूख और नींद कम होने लगी थी, चिड़चिड़ापन भी बढ़ गया था। इधर वह अपनी प्रिय सहेली से कतराने लगी है, यह सुन कर मां का चिंतित हो जाना स्वभाविक था। ऐसे में मां को ईश्वर स्मरण के अतिरिक्त अन्य कोई सहारा देने वाला इस संसार में साधन नहीं दिखलायी देता। वह घी का दीपक जला कर तुलसी के पौधे की आरती करने लगी और नतमस्तक हो ईश्वर से प्रार्थना करने लगी

कि सावित्री पर उनकी कृपादृष्टि सदैव बनी रहे, कोई भी उसका बाल-बांका न कर सके। प्रार्थना करते करते मां की आंख कब लग गयी, उन्हें पता न चला।

घर वापस आ सावित्री ने कई बार घंटी बजायी किंतु मां दरवाज़े खोलने न आ पायी। झुंझला कर उसने घंटी बजाते हुए दरवाज़ा पीटना शुरू कर दिया। आसपास के लोग भी यह आवाज़ सुन कर ताकने लगे। कुछ देर के लिए शोर बढ़ता रहा, एकाएक मां की आंख खुली, दौड़ कर उसने दरवाज़ा खोला, ''अरे, तुम कब से दरवाज़े पर खड़ी घंटी बजा रही हो? मेरी इंतज़ार करते करते आंख लग गयी थी, इसीलिए तुम्हें परेशानी हुई।''

''सारा मुहल्ला आ कर खड़ा हो गया। इस समय तो रात कहां हुई है कि आप सो रही थीं? क्या मुसीबत है, पूरे दिन पागल कुत्ते की तरह मैं एक जगह से दूसरी जगह भटकती रही हूं, और अपने घर आ कर एक घंटे से घंटी बजा रही हूं, मेरी सहनशक्ति का बांध टूट गया है। कुछ देर दरवाज़ा न खुलता तो मैं इसे तोड़ कर रख देती।''

''बेटी, बुढ़ापे का शरीर है, दिन भर सामान बटोरती-रखती रही हूं, तुम्हारे आने के इंतज़ार में आंख लग गयी। क्या एक घंटे तक इंतज़ार करना पड़ा दरवाज़े को खुलवाने में?'' मां ने आश्चर्यचकित हो कर पूछा।

''मुझे इस इंतज़ार में एक घंटा लगा। आप अंदर सो रही होंगी यह अंदाज़ा नहीं लगा सकी, मुझे तो कुछ अनहोनी की चिंता लगने लगी थी।''

''मुझे क्या हो सकता था? नाहक़ तू मेरी चिंता में अपने चित्त को भारी करती है। चल, कपड़े बदल कर कुछ खा-पी ले, दिन में कहां खाया-पिया होगा!'' मां सावित्री को धैर्य से अंदर ले कर आयी।

सावित्री ने बाथरूम में जा कर कपड़े बदले और पैरों, हाथों पर ठंडा पानी डाल कर अपने शरीर के तापमान को ख़त्म करने की कोशिश की। क्रोध उसे उबल उबल कर आने लगा था, मां ही सदैव उसके कोप का भाजन बन जाती है और वही थी जो सुरक्षा प्रदान कर उसके क्रोध को ठंडा कर देती। सावित्री को अपने इस दुर्व्यवहार के प्रति मन में कोई ग्लानि न थी, मां तो उसकी ढाल थी, उसकी सुरक्षा कवच। मां के तीर्थाटन का प्रबंध करने में सावित्री को शारीरिक कष्ट अवश्य रहा होगा, किंतु मानसिक रूप से वह संतुष्ट थी। मां की इस इच्छा को पूर्ण कर देने में उसे शांति मिल रही थी। इसके अतिरिक्त उत्तर भारत की ओर जाने के विचार ने सावित्री के हृदय में एक नयी उमंग का संचार कर दिया था। वहां जा कर उसे सत्यवान से भेंट करने का सुअवसर मिल सकता है, शायद यही कारण रहा होगा कि सावित्री ने मिसेज़ दास से अपनी इस यात्रा की चर्चा करना उचित नहीं समझा। काफ़ी दिनों से इधर अपनी प्रिय सहेली से कटी कटी रही। डर था, कहीं मिसेज़ दास सत्यवान के विषय में अपनी गुप्त जानकारी से उसे चिंता में न डाल दे। सावित्री का भीरु चित्त यथार्थ की सत्यता से दूर भाग जाना चाहता था। वह अपने कल्पनालोक में रहने के लिए सब कुछ दांव पर लगा सकती थी।

सत्यवान ने अपनी अंतिम भेंट द्वारा सावित्री के मन में सूखे वृक्ष पर वर्षा की धार की तरह बरस कर पुनः लहलहा दिया था, कुछ नयी कोपलें भी उपजने लगी थीं। सावित्री को लगा ही नहीं, विश्वास हो गया कि सत्यवान को उसकी इस समय बेहद ज़रूरत है। जिस याचक भाव से प्रेम और सांत्वना पाने सत्यवान सावित्री के पास दौड़ा आया था, उसने सावित्री के अतीत के समस्त कटु अनुभवों को दबा कर रख दिया। सावित्री के मन में ईश्वर से सत्यवान के कल्याण की प्रार्थना सर्वोपरि कर्तव्य बन गयी थी।

सावित्री ने यात्रा का प्रबंध जिस तत्परता से किया था, उसके कारण समय आने पर कोई विघ्न-बाधा नहीं खड़ी हुई। मां को ले कर सावित्री का उत्तर भारत में ट्रेन का पहला पड़ाव दिल्ली शहर होना पूर्व निर्धारित था, वहीं से पाणिकर ट्रैवल्स द्वारा हरिद्वार, ऋषिकेश, बद्रीनाथ और केदारनाथ की यात्रा बस द्वारा करनी थी जो केवल छह दिनों में पूरी करने के लिए दो टिकटों का पहले से प्रबंध किया जा चुका था। मां तीर्थाटन करने के बाद इलाहाबाद कुछ दिनों रुक कर संगम में स्नान एवं परिवार के सब ही सदस्यों से मिल-भेंट कर वापस जाना चाहती थी। सावित्री इतने दिनों तक इलाहाबाद रहने की इच्छुक न थी। यही समय वह दिल्ली में रह कर सत्यवान से भेंट करने में व्यतीत करना चाहती थी किंतु उसे आशंका थी, कहीं सत्यवान उसकी योजना को असफल न कर दे। सत्यवान को कैसे पता लगे कि सावित्री भेंट करने के लिए आतुर है? दोनों में पत्र व्यवहार करने की क़तई मनाही थी ही केवल दिल्ली पहुंच कर टेलीफ़ोन द्वारा संपर्क स्थापित किया जा सकता था लेकिन वह भी संभव न था क्योंकि सत्यवान निलंबित चल रहा था, ऑफ़िस में ही टेलीफोन किया जा सकता था। घर टेलीफ़ोन पहुंच जाने पर यदि किसी अन्य ने उसे रिसीव किया तो सावित्री अपना परिचय देने में असमर्थ थी। इसी पसोपेश में सावित्री का चित्त अकसर उचाट हो जाता। पपीहे सी वह मन ही मन कूकने लगी थी--'पी कहां, पी कहां' किंतु वर्षा ऋतु के बादल दूर दूर तक उसे नज़र नहीं आते दिख रहे थे।

ट्रेन की लंबी यात्रा करने के बाद महानगरी दिल्ली पहुंच 'पाणिकर ट्रैवल्स' तक पहुंचने में देर न लगी। वातावरण में ठंडक के साथ चहल-पहल की गर्माहट भी थी। लंबी रेल यात्रा पार कर पाणिकर के दफ्तर तक सकुशल पहुंच जाने पर मां-बेटी के चेहरों पर प्रसन्नता बिखर आयी। सावित्री की भावभंगिमा से उत्साह झलक रहा था। मां गंभीरता से सामान गिन कर संजो रही थी। पाणिकर के दफ़्तर से उन्हें आदरसहित एक अतिथिगृह में ले जाया गया। दिख रहा था कि इस गेस्ट हाउस में केवल एक बड़ा सा शयनकक्ष था जिसमें छह पलंग पड़े थे। यह देख मां-बेटी सकपका गयीं। इतनी अड़चनों में यहां सावित्री का सो पाना असंभव था, मां ने कहा, "आप लोग कष्ट न उठायें, हम कहीं और जा कर रह लेंगे, केवल एक रात और एक दिन का सवाल है, ट्रेन की यात्रा के बाद हम दिल्ली में शांति से आराम करना पसंद करेंगे।"

प्रबंधक ने नम्र स्वर में कहा, "आप चिंता न करें। यहां पलंग छह हैं किंतु दक्षिण

भारत से आप ही दो व्यक्ति इस तीर्थयात्रा के लिए बुक हैं, अन्य सब यात्री दिल्ली निवासी हैं। मैडम, आप चिंता न करें, यहां सब प्रबंध उपलब्ध हैं। फिर यात्रा के दौरान इसी तरह के शयनकक्ष में आपको ठहराया जायेगा। आशा है, आप लोग ऐसा कष्ट उठाने के लिए दिल्ली से ही अभ्यस्त होने की कोशिश कर लेंगे। यहां पर आप लोगों को गर्म पानी की सुविधा है, शयनकक्ष से जुड़ा हुआ बाथरूम है। नहा-धो कर नीचे आने पर हमारी ओर से आपको नाश्ता तैयार मिलेगा। गर्म गर्म इडली, सांभर और शुद्ध दक्षिणी कॉफी, लेकिन लगता है, आप दक्षिण भारत के रहने वाले नहीं हैं?'' सकुचा कर प्रबंधक ने पूछा।

''आपका अनुमान सही है, हम उत्तर प्रदेश के निवासी हैं किंतु नौकरी के लिए मेरी बेटी गत कई वर्षों से दक्षिण में है,'' मां ने स्पष्ट किया।

सावित्री ने केवल उच्च वर्ग के होटलों के प्रबंधकों को ऐसा सत्कार करते सुन रखा था, यह सब देख उसने सोचा, भारत में भ्रमण करने की सुख-सुविधाएं जुटाने के लिए हमारे प्रबंधक लोग काफ़ी जागरूक हो गये हैं।

मां दिल्ली पहुंच वहां के वातावरण की ठंडक से अधिक प्रभावित लग रही थी। बक्सा खोल कर कई तरह के ऊनी वस्त्रों को मां ने पलंग पर रख दिया और नहाने के कार्यक्रम में जुट गयी। सावित्री पास पड़े पलंग पर लेट आराम करने लगी। थोड़ी देर में मां नहा-धो कर लौटी तो सावित्री को पलंग पर औंधी लेटे सोच-विचार में मगन पाया। उसे थका-मांदा देख मां ने उत्साहपूर्वक कहा, ''झटपट गर्म पानी से तुम भी स्नान कर लो, बदन में फुर्ती आ जायेगी, मुझे तो नहा-धो कर बड़ा अच्छा लग रहा है। बाहर धूप में बैठ कर मैं पूजा-पाठ करके आती हूं तब तक तुम नहा-धो कर तैयार रहो, नीचे वे लोग नाश्ते के लिए इंतज़ार कर रहे होंगे।''

यह सुन अनमने मन से उठ कर सावित्री ने स्नान कर लेना उचित समझा। जल्दी से मां के साथ नाश्ता करके वह सत्यवान की खोज-ख़बर लेने तीर्थाटन पर दिल्ली से रवाना होने से पहले कर लेना चाहती थी। लौट कर आते वक़्त मां इलाहाबाद साथ चलने की ज़िद करेंगी और निश्चित कार्यक्रम न बना होने के कारण उसे वही करना होगा जो मां कहेंगी।

सावित्री मां को सुव्यवस्थित करके सत्यवान की खोज में निकल पड़ी। दिल्ली शहर उसके लिए अनजाना था। समझ में नहीं आया, क्या करे? इधर-उधर टहलने के बाद वह पाणिकर के ऑफ़िस पहुंच गयी और वहां बैठे कर्मचारी से टेलीफ़ोन डाइरेक्टरी ले सत्यवान के घर का पता ढूंढ़ने लगी। भाग्यवश ऑफ़िस के टेलीफ़ोन के साथ साथ निवास स्थान के टेलीफ़ोन का नंबर मिल गया। उसने कर्मचारी से प्रार्थना की कि वह सत्यवान के घर का नंबर मिला कर दे दे। प्रबंधकर्त्ता ने तत्परता से टेलीफ़ोन मिला दिया और सत्यवान की आवाज़ की ध्वनि सावित्री के कानों में गूंज उठी। सावित्री ने संयत हो कर रिसीवर अपने हाथों में लिया, ''हलो, मैं दिल्ली से बोल रही हूं, क्या अभी आप

मुझसे भेंट करना पसंद करेंगे? मैं मां के सहित कल शाम पाणिकर ट्रैवल्स द्वारा अपनी नियोजित तीर्थयात्रा पर जा रही हूं।"

"इतनी छोटी उम्र में तीर्थयात्रा करने की तुम्हें क्या आवश्यकता आ पड़ी? क्या इसलिए कि मैं पाप करता आ रहा हूं और तुम्हें मेरे लिए ढेर से पुण्य कमा कर रखने चाहिए?"

"मां की इच्छापूर्ति के लिए जाना पड़ा," छोटा सा उत्तर दे सावित्री चुप हो गयी।

"इस समय कहां मिलोगी, ज़रा टेलीफ़ोन उस व्यक्ति को दे दो जिसने अभी मिलाया था, उससे पता पूछ। मैं तुमसे मिलने वहीं आ रहा हूं, मेरा इंतज़ार करना।"

सत्यवान के आदेशानुसार सावित्री ने टेलीफ़ोन प्रबंधक कर्मचारी को दे दिया।

ऑफ़िस में बैठ कर सावित्री के लिए इंतज़ार करना अति कठिन था। उसका मन बांसों ऊंचा मचल रहा था। सत्यवान से इतनी सरलता से संपर्क होने की उसे कोई आशा न थी। उसे लगने लगा, यह सब उसकी मां की कृपा से सहज उपलब्ध हुआ है। मां की इच्छापूर्ति कर देने का ही यह फल है जो सत्यवान के साथ इस दिल्ली महानगरी में वह संपर्क स्थापित कर सकी, और वह तुरंत मिलने आ रहा है। बाहर आ कर वह दुकान में कुछ आवश्यक सामग्री ख़रीदने लगी जिनकी तीर्थयात्रा में उसे आवश्यकता हो सकती थी। सामान ख़रीदने में दुकान में भीड़ होने से उसका वहां काफ़ी समय व्यतीत हो गया, जिसका सावित्री को पता न लगा। बाहर आते ही उसने पाणिकर के ऑफिस के सामने सत्यवान को पैदल टहलते देखा, लज्जित हो कहने लगी, "मैं क्षमाप्रार्थी हूं, आपको मेरा इंतज़ार करना पड़ा।"

"आपने मेरी प्रतीक्षा हमेशा की है। मैं ही देर से आता रहा हूं। आज पता चला कि इंतज़ार की घड़ियां कितनी कठिन होती हैं," हंसते हुए सत्यवान ने सावित्री का हाथ स्वागत में पकड़ना चाहा।

अपने हाथ को द्रुतगति से सावित्री ने मुक्त किया, "यहां से तुरंत चल देना चाहिए, मां पास के अतिथिगृह में ठहरी हुई हैं, उन्हें हमारी भेंट के विषय में कुछ पता नहीं लगना चाहिए।"

"लगता है, तुम समय के साथ काफ़ी समझदार होती जा रही हो, लेकिन बैठ कर हम बातचीत कहां कर सकते हैं इस भीड़भाड़ वाली जगह में? चलो, मैं तुम्हें किसी अच्छी जगह ले चलूं, मेरी कई संस्थाओं, क्लब आदि में मेंबरशिप है लेकिन ऐसे आड़े समय में मेरा तुम्हारे साथ घूमना-फिरना दिख जाने पर कोई अन्य पचड़ा खड़ा हो सकता है। किसी होटल में कमरा कुछ देर के लिए बुक करवाना उचित न होगा।"

सत्यवान की पसोपेश को समझ सावित्री ने शांत चित्त से कहा, "तीर्थ स्थानों की यात्रा से लौट आने के बाद मैं किसी सरकारी गेस्ट हाउस में कुछ दिनों तक ठहरने का प्रबंध कर लूंगी, आज तो किसी पार्क में बैठ कर बातचीत कर लेना पर्याप्त रहेगा।"

"जैसा तुम चाहोगी वैसा ही होगा," अति मंद स्वर में अपनी स्वीकृति देते हुए

सत्यवान ने कहा।

दोनों बाज़ार की भीड़ से निकल कर किसी शांत पार्क की खोज में पैदल चलते चलते थक गये थे। सत्यवान को पैदल चलने का अभ्यास न रहा था। वह तो सरकारी गाड़ी या स्वयं की मारुति कार में बैठ कर चलने का आदी था। दिल्ली शहर में जाड़े की धूप भी दोपहर होते ही तेज़ होने लगती है। सत्यवान ने सावित्री से अनुग्रह किया, "चलो, किसी रेस्ट्रां में बैठ कर कॉफ़ी पी जाये। तुमने नाश्ता किया है या नहीं, मैं तो पूछना ही भूल गया। तुम्हें चल कर नाश्ता करा दूं।"

"मैंने और मां ने पेट भर कर इडली-सांभर और बड़े का नाश्ता किया है, वहां हमें फिल्टर कॉफ़ी भी शुद्ध दक्षिणीय ढंग से बनी मिली, लेकिन आपका मन है तो रेस्ट्रां चलिए किंतु आपको मेरे साथ किसी परिचित व्यक्ति ने देख लिया तो····" कहते हुए सावित्री रुक गयी।

सत्यवान ने सावित्री को झिड़का, "वह तो रास्ते में एक साथ चलते हुए भी देखा जा सकता है।"

सत्यवान मन में यह सोच कर सिहर उठा, 'उफ़, मुझे कैसा पागलनपन सवार हो गया था! मैंने अपनी पत्नी का विश्वास खो दिया, नारी तन के आकर्षण में। आज प्रिया सावित्री विशालहृदया न होती तो क्या क्षमा कर मुझे अपना सब कुछ सौंप साथ देने को तत्पर हो जाती? मुझ जैसे उत्तरदायित्वों से कोसों दूर भागने वाले व्यक्ति को ईश्वर ने चोट पहुंचा कर अच्छा किया है, इस कटु अनुभव के बाद मुझे जीवन से जो मिलेगा, उसी में संतुष्ट रहना सीखूंगा। अपनी उच्च महत्त्वाकांक्षाओं को प्राप्त करने के लिए मैं दूसरों को अपनी सीढ़ियां नहीं बनने दूंगा।'

"क्या विचार कर रहे हैं? मैंने पहले कभी आपको इतना गंभीर होते नहीं देखा। सब कुछ ईश्वर पर छोड़ दीजिए, समय आने पर दूध का दूध, पानी का पानी हो जायेगा।"

सावित्री का यह अटूट विश्वास सत्यवान के थके-मांदे शरीर में स्फूर्ति ले आया। "सवि, तुम तो मेरे बारे में सब कुछ जानती हो! तुमसे छिपाने से क्या लाभ! न जाने क्यों लगता रहा कि तुम मेरे हृदय की इच्छा को भी जानती हो और उसे पूर्ण कर देने में नहीं चूकतीं। दिन पर दिन साधारण की श्रेणी से तुम ऊपर उठती जा रही हो। एक दिन गर्वित हो कर जो तुम्हें अपनी पत्नी बनाने का वायदा किया था, वह आज तक पूरा न कर सका। तुम बिनब्याही पत्नी, मेरी सच्ची सखी, प्रेमिका, साथिन जो चाहूं उस रिश्ते में पिरो कर, खरी निकली हो। अब मुझे तुम्हें किसी रिश्ते में पिरो कर नहीं रखना है, तुम जिस रूप में मुझे स्वीकार करो, उसी में मैं संतुष्ट रहूंगा और तुम्हारी प्रतीक्षा करूंगा।" स्नेह से सत्यवान ने सावित्री का हाथ दबाते हुए अपने विचारों से अवगत कराया।

हाथ को छुड़ाते हुए सावित्री ने सचेत किया, "लोकाचार के लिए एक दूरी बना कर

चलना ज़रूरी है। मेरे कारण आपको लोगों के सामने लज्जित होना पड़े, यह मैं सहन न कर सकूंगी। क्या आप बिना प्रयत्न किये प्रतीक्षा कर सकेंगे?''

''सावित्री, यही प्रतीक्षा मेरा प्रयत्न रहेगा भविष्य में,'' सत्यवान ने दृढ़ता से वचन दिया और मन में एक नयी शक्ति ने जन्म लिया। मन की शक्ति और शरीर की क्लांति सत्यवान को निद्रालोक में जाने का निमंत्रण दे रही थी। अतएव उसने सुझाव दिया, ''सवि, तुम तीर्थयात्रा करने के बाद दिल्ली शहर में कुछ दिनों क्यों न ठहर जाओ, मैं तुम्हारे लिए किसी अच्छे गेस्ट हाउस में रूम बुक करवा सकता हूं किंतु···''

''आप चिंता न करें, मैं स्वयं भी रूम बुक करवा सकती हूं। मेरे पास कुछ पते हैं डायरी में, शायद टेलीफ़ोन से ही यह कार्य हो सकता है।''

''यह दिल्ली शहर है, यहां रोज़मर्रा उतने ही लोग कामकाज के लिए आते हैं जितने शायद यहां के निवासी होंगे। तुम्हें आज ही, मेरी समझ में तुरंत ही, अपने रहने का प्रबंध कर लेना चाहिए। मैं तुम्हें वहां के स्थान तक पहुंचा दूंगा। यदि वहां तुम्हें कोई रूम मिल ज़ाता है तो उसकी आज से बुकिंग करवा लो, मैं बाहर तुम्हारा इंतज़ार करता रहूंगा। कनॉट प्लेस से पैदल चल कर कई दिशाओं में जाने की बसें आसानी से मिलती हैं। नयी दिल्ली रेलवे स्टेशन पास में है, बस स्टैंड काफ़ी दूर है।''

''बस अड्डे जाने की आवश्यकता नहीं होगी, बस हमें पाणिकर ऑफ़िस से मिल जायेगी और यहीं छोड़ेगी भी। मुझे उसके आसपास रहने की सुविधा मिले तो अच्छा रहेगा।''

''तुम फ़िक्र मत करो, यह मेरा काम है कि तुम्हें लौटते वक़्त कहां ठहराया जाये। मैं तुम्हें जहां ले चलूंगा वहां शायद कुछ देर विश्राम करने के लिए इस समय भी हमें कमरा मिल जायेगा, शाम को तुम्हें छोड़ कर मैं वापस लौट जाऊंगा। लेकिन इस समय मुझे नींद आ रही है। काश, बिस्तर सामने होता और तुम्हारे सीने से चिपक कर मैं एक अबोध बालक की तरह सो पाता।''

यह बात सुन कर सावित्री के गाल और कान लाल हो गये। सत्यवान उसकी लजायी हुई भंगिमा को देख मुस्करा उठा, ''जानती हो, मैंने एक मौखिक परीक्षा लेते समय एक लड़की से यह प्रश्न किया कि महिलाओं के शरीर में लज्जा आते समय कौन कौन सी क्रियाएं होती हैं? बेचारी छात्रा लजा कर रह गयी और मेरे प्रश्न का जवाब देने में असमर्थ रही, फिर भी मैंने उसे सबसे ज़्यादा नंबर दिये, क्योंकि उसकी लजीली अदा मुझे भा गयी थी। वैसे वह होशियार लड़की थी—वैसी, जैसी तुम मुझे लगती हो।''

अपनी तुलना किसी अन्य लड़की के साथ सुन सावित्री उत्तेजित हो उठी, ''आप पुरुषों की लार कहीं भी टपक पड़ती है।''

''भई, इसमें क़ुसूर पुरुषों का कहां है, गुड़ सामने हो तो मक्खियां पास आयेंगी अवश्य। आप चीज़ लाजवाब हैं, मेरी क्या, रास्ता चलता कोई भी लड़का आप पर सीटी बजा देता होगा।''

का भी प्रबंध है। मैं तो थोड़ी देर सोना चाहूंगा, पैर पसार कर, जल्दी बाहर निकलो।"

"मुझे तो मां के पास जाना है, वह मेरे इंतज़ार में होंगी, आप यहीं विश्राम करें, मुझे चाबी दे दें, मां को खिला-पिला कर मैं शीघ्र लौट आऊंगी, शांति से तब तक आप सो भी लेंगे।"

"अब तुम मुझे अधिक···मां का तो बहाना है, वे जहां इतनी देर तुम्हारा इंतज़ार करती रही हैं, कुछ देर और कर लेंगी," सावित्री को टैक्सी से बरबस बाहर निकालते हुए सत्यवान झुंझला पड़ा।

टैक्सी वाले के सामने व्यर्थ में तमाशा खड़ा न हो, इस डर से सावित्री को चुपचाप सत्यवान की आज्ञानुसार उतरना पड़ा। टैक्सी को पैसा चुका कमरा देखने के बहाने सत्यवान बेयरा सहित सावित्री को एक भव्य गेस्ट हाउस में ले आया था। कमरा बहुत बड़ा नहीं था किंतु दो छोटे छोटे पलंग और बीच में एक टेबल और बैठने के लिए दो कुर्सियां पड़ी थीं। बाथरूम के जाने के मार्ग में प्रसाधन के लिए एक बड़ा सा आइना लगा हुआ था तथा दीवार से सटी छोटी सी चेयर भी थी, पढ़ने के लिए एक कोने में मेज़, कुर्सी और टेबल लैंप रखा हुआ था, पास में बड़ी सी खिड़की थी जिसका द्वार खोलते ही कमरे में बाहर का सुंदर दृश्य दिख रहा था। कमरे की स्वच्छ एवं सुंदर सज्जा देखते ही सावित्री का मन खिल उठा। उसे प्रसन्नचित्त देख सत्यवान ने बेयरे को कुछ ठंडा पेय पदार्थ लाने की आज्ञा दे दी और कमरे को बंद करके सावित्री को अपने आलिंगनपाश में ले लिया लेकिन आज उसने अपने अगणित चुंबनों से बेसुध सा नहीं किया, केवल सावित्री के बालों को सहलाता रहा और उसकी सूनी आंखों की पीड़ा को पी जाने की चेष्टा करता रहा। सावित्री ने घबरा कर अपने को मुक्त करने की कोशिश की तो हंस कर बोला, "घबराओ नहीं, मैंने यह छेड़छाड़ तुम्हें सम्मान देने के लिए की है, कहीं मेरे से तुम्हारी नारी देह की उपेक्षा न हो जाये, मुझे इसमें अब मज़ा नहीं आता।"

"बस करिए, आप कुछ नहीं, मूर्ख हैं। मैं अपना पुराना सब भूल कर आयी हूं।"

"पुराना सब भूलना नहीं चाहिए। पुरानी बातों का विचार-विमर्श वर्तमान को सुनियोजित करने में सहायक होता है और भविष्य हमारी बनायी गयी सोची-समझी निर्धारित योजना द्वारा," सत्यवान ने बेयरे के आने की आहट सुन जाने के कारण कमरे को खोल दिया।

"चलो, तुम्हें तुम्हारी मां के पास पहुंचा दूं," कहते हुए टैक्सी ले कर सत्यवान सावित्री को पाणिकर गेस्ट हाउस में छोड़ते समय शाम को पुनः आने का वायदा करके चला गया।

कमरे में आ कर सावित्री ने मां को गहरी निद्रा में सोया देख चैन की सांस ली। रेल की लंबी यात्रा के बाद मां मानो अपनी भावी तीर्थयात्रा के मधुर स्वप्नों में खोयी हुई थीं। सुधबुध नहीं रही कि उनकी प्यारी बेटी सावित्री कहां भटक रही है। काश, वह मां

की तरह खुली और मुंदी आंखों से अपने बांके बिहारी सत्यवान की छवि निहार निहार कर आनंदित हो पाती! वास्तविकता में सत्यवान के आंखों से ओझल होते ही सावित्री अपने को अकेली और अत्यधिक असुरक्षित एवं उपेक्षित अनुभव करने लगी थी।

मां को हिला-डुला कर जगाना पड़ा। दोपहर का खाना दो बजे तक इस गेस्ट हाउस में मिलता था, फिर शाम के नाश्ते की तैयारियां शुरू हो जाती थीं। चाव से शाम को गर्म गर्म डोसे खाने वाले उत्तर भारती काफ़ी लोग इस रेस्ट्रां में आते थे। दोपहर का खाना शुद्ध दक्षिण भारतीय स्वाद का मिला। रास्ते में पूरियां खाते खाते मन ऊब गया था, चावल-सांभर और दही के साथ खाने में मां ने आपत्ति न की। उनका कहना था, तीर्थयात्रा करते समय कच्ची-पक्की रसोई का ख़याल नहीं किया जाता। पेट भर खाना खा दोनों मां-बेटी पलंग पर लेटते ही सो गयीं। क़रीब पांच बजे सावित्री की आंख खुली, वह तेज़ी से उठ कर तैयार हुई और सत्यवान की सड़क पर खड़े हो कर प्रतीक्षा करने लगी। सड़क पर आते-जाते लोगों की काफ़ी भीड़ थी। सावित्री अकेली वहां कितनी देर तक इंतज़ार कर सकती थी, उसे लगता कि आता-जाता हर व्यक्ति उसे घूर रहा है। अपनी खिसियाहट को छिपाने के लिए उसने पास की दुकानों में घुस कर व्यर्थ की पूछताछ करने में समय व्यतीत करना चाहा किंतु उसे लगा कि दिल्ली शहर के व्यस्त दुकानदार ग्राहक की मनोवृत्ति जल्दी से जान जाते हैं। इस अजनबी शहर में कोई इज़्ज़तदार उसका अपमान न कर दे, इस भय से छह बजते ही उसने सत्यवान से टेलीफ़ोन संपर्क स्थापित करना उचित समझा। गेस्ट हाउस के दफ़्तर आ कर उसने देखा कि दोपहर वाला कर्मचारी चला गया है। कुर्सी पर चश्मा लगाये जो रोबीला व्यक्ति बैठा है शायद पाणिकर ट्रैवल्स का अधिकारी है। उससे तो सत्यवान के घर का टेलीफ़ोन मिला देने की प्रार्थना नहीं की जा सकती। केवल टेलीफ़ोन करने की अनुमति ही मांगी जा सकती है। कांपती हुई धीमी आवाज़ में सावित्री ने टेलीफ़ोन करने की अनुमति मांगी, लेकिन उस व्यक्ति के जवाब ने उसे डरा कर रख दिया। यहां टेलीफ़ोन लगातार इस समय आते हैं। यह हमारे धंधे का ठीक समय है। आपको केवल दो मिनट बातें करनी हों तो यहां तीन रुपये जमा करके यह सुविधा मिल सकती है, नहीं तो एक रुपये में किसी भी जन-संचार के केंद्र में आपको यह सुविधा मिल सकती है। वहां आपको बातचीत करने की स्वतंत्रता भी मिल सकेगी।"

"हम लोग आपके गेस्ट हाउस में ठहरे हुए हैं, आपके द्वारा आयोजित तीर्थाटन के लिए बस की हमारी बुकिंग है," सहमे हुए सावित्री ने बतलाया।

"धन्यवाद, यह जानकारी देने के लिए, लेकिन इस समय हमारा टेलीफ़ोन अत्यधिक व्यस्त है, कभी भी कोई जानकारी हासिल करने के लिए हमसे संपर्क कर सकता है। ख़ैर, आप कम से कम समय टेलीफ़ोन इंगेज करने की कृपा करें।"

"धन्यवाद," कह कर सावित्री ने सत्यवान के घर टेलीफ़ोन का नंबर मिला दिया, उधर से किसी ने फ़ोन उठाया, हलो कहा सावित्री ने और तुरंत आवाज़ पहचान लेने के

कारण विनीत स्वर में पूछा, "आप मुझसे मिलने आने वाले थे, एक घंटे से ज़्यादा समय हो चुका है, कब तक आयेंगे?"

"मैं सत्यवान ही बोल रहा हूं। मैंने आपसे भेंट करने के लिए कब कहा है? कृपया मेरा इंतजार न करें," कह कर रिसीवर फ़ौरन रख दिया गया था। सावित्री के शरीर में मानो सहस्र बिच्छुओं ने डंस लिया हो। दर्द और अपमान से वह कांप उठी। टेबल पर तीन रुपये रख कर वह तेज़ी से अपने कमरे में आ कर बिसूर बिसूर कर रोने लगी। भाग्य से उसकी मां सो कर बाथरूम में हाथ-पैर धो रही थीं। जी भर कर रो लेने के बाद सावित्री का मन हलका हुआ लेकिन बाथरूम से निकलते ही उसकी सूजी हुई लाल आंखों को देख मां ने शंकित हो पूछा, "बेटी, क्या बात हुई, क्या तुम आराम नहीं कर पायीं, आंखें क्यों सूज आयी हैं?"

"बाहर कुछ मेरी आंख में पड़ गया है। तुम बाथरूम में थीं, न धो सकने के कारण बराबर मसलती रही हूं इसीलिए लाली आ गयी होगी, तुम चिंता न करो।" अपने को मां से छिपाने के लिए सावित्री बाथरूम में घुस गयी।

बाथरूम में घुसते ही उसे फिर से रोना आने लगा। आवाज़ को छिपाने के लिए उसने नल खोल दिया और कई घंटों तक नहाने का कार्यक्रम जारी रखा। यह सब देख मां का माथा ठनका, शायद सावित्री का मानसिक संतुलन बिगड़ गया है, उसे उन्माद-विषाद का दौरा आ गया है। इस दयनीय अवस्था में मां के पास ईश्वर से बराबर प्रार्थना करने के अतिरिक्त अन्य कोई विकल्प न था। मन ही मन ईश्वर-प्रार्थना करते रहने का प्रभाव था या संयोग, गेस्ट हाउस के एक कर्मचारी ने दस्तक दी, "माता जी, यहां पानी की बेहद किल्लत है, बहन जी से कहें, बाथरूम का नल बंद कर दें, हमारी टंकी ख़त्म होने को आ गयी है।"

मां ने यह बात जा कर सावित्री को दुहरा दी, नल बंद कर दिया गया लेकिन सावित्री बाथरूम से बाहर तब भी नहीं निकली। खीज कर मां ने अपनी भावनाओं को दबाते हुए बाथरूम का दरवाज़ा खटखटा कर कहा, "बाहर काफ़ी रोशनी और चहल-पहल है, चलो कहीं बाहर चल कर भोजन करके आयें, सुबह से चावल खाते खाते मन ऊब गया है।"

"ठीक है, कपड़े पहन कर निकलती हूं।"

"ज़रा जल्दी करो, इतनी देर से बाथरूम में अभी तक पानी ही डालती रही हो, तभी तो टंकी ख़ाली करके रख दी है। हम लोग तो रात्रि को ही यहां से चल देंगे किंतु अन्य यात्री ठहरने अवश्य आयेंगे, उन्हें पानी की असुविधा होगी।"

बाथरूम से निकलते ही सावित्री मां पर बरस पड़ी, "आपको हमेशा दूसरों की ज़्यादा फ़िक्र है। यहां हम पैसे दे कर रह रहे हैं, जितना चाहेंगे उतना पानी ख़र्च करेंगे, चाहें तो ये लोग पानी के लिए भी पैसे ले लें।"

मां ने प्रतिवाद करना व्यर्थ समझा, सबसे बड़ा अस्त्र मौन है, केवल वही सावित्री

की क्रोधाग्नि को शांत कर पाता रहा है।

बाहर जा कर शुद्ध वैष्णवी थाली का भोजन कर लेने के बाद सावित्री ने मां की चुप्पी को तोड़ने के लिए पूछा, "यहां से बस कितने बजे रवाना होगी? आपने किसी से पूछताछ की है कि हमें कमरे से सामान ले कर कब तक बस पर पहुंचना है?"

"मैंने तो नहीं पूछा है, लेकिन निर्धारित कार्यक्रम के अनुसार दस बजे तक बस में पहुंच जाना चाहिए, सीट के नंबर निर्धारित हैं। बस पहले एक हनुमान मंदिर के पास के दक्षिण मंदिर में नौग्रह पूजा के लिए जायेगी, पूजा के बाद आरती होगी, तब वहां से रवाना हो कर हरिद्वार की ओर रात भर चलेगी।"

"ओह!" यह तो पूरी रात का प्रोग्राम है! दिल्ली से हरिद्वार की यात्रा केवल तीन या चार घंटे की होती है, फिर पूरी रात बस क्यों चलती रहेगी? मेरी आज नींद हराम हो जायेगी।"

"बेटी, तीर्थयात्रा में घर जैसा आराम कहां मिल सकता है? हम तो भाग्यवान हैं जो बस में बैठे हुए जा रहे हैं, पहले के लोग तो पैदल तीर्थयात्रा करते थे और बिरले ही इस यात्रा से सकुशल लौट पाते थे।"

"आप तो बैठ कर अपने भाग्य को सराहें, मुझे तो पूरी रात बस में गुज़ारनी है, यह विचार ही बेचैन किये हुए है," खीज कर सावित्री ने प्रतिवाद में कहा।

"चलो, अभी कुछ देर कमरे में पलंग पर लेट कर आराम कर लो, मैं तब तक सामान बटोर कर रख लूंगी," कह कर मां तत्परता से गेस्ट हाउस की ओर चल दीं।

बिल को चुका कर सावित्री मां के पीछे पीछे चलती रही किंतु रास्ते में उसने कहा, "आराम तो हराम है आपकी इस तीर्थयात्रा में।" अंतरमन की व्याकुलता से बोझिल चित्त और शरीर के कारण सावित्री कमरे में जा कर बिछे पलंग पर लेट कर भी एक क्षण आराम न कर सकी। मां ने अकेले ही सामान को बांध सुनियोजित किया जिसे आंखों की कोरों से सावित्री निर्लज्ज हो देखती रही पर कुछ कर सकने की मानो अब उसमें शक्ति नहीं रही।

पूर्वक्रम के अनुसार पूजा होने के उपरांत बस यात्रियों से खचाखच भरी हुई हरिद्वार की ओर चल पड़ी। रात्रि के सघन अंधकार में राजधानी की सड़कों पर बिजली की तेज़ रोशनी के कारण प्रकाश चारों ओर फैला हुआ था, इसके अतिरिक्त बराबर मोटरों, बसों और अन्य भारी वाहनों के आने-जाने के कारण ध्वनि और प्रकाश की तेज़ रोशनी सावित्री की बंद आंखों पर पड़ चित्त को अत्यधिक उद्विग्न कर जाती। मां भी इस शोरगुल में सो नहीं पा रही थी। बस में अन्य यात्रीगण उत्साहपूर्वक बातें कर रहे थे या रात्रि का भोजन सीट पर बैठे बैठे खाने में मगन थे। बस के अंदर अवश्य नीली मद्धिम रोशनी का प्रकाश था जो बाहर आती-जाती रोशनी की चकाचौंध की तरह कष्टदायक न था, उसकी गति थिर थी, और सावित्री को अपनी व्यथा सी चारों ओर से सिक्त किये हुए थी।

शहर की सीमा से कुछ दूरी पार करके बस एक ऐसे अज्ञात पड़ाव पर आ कर रुक गयी जहां चारों ओर पेट्रोल की दुर्गंध और बसों का धुआं फैला हुआ था। सावित्री ने खिड़की से झांक कर पीछे-आगे देखा, रात्रि के अंधकार में भी बसों की क़तारें खड़ी हुई दिखलायी दीं। सड़कों के किनारे दुकानों की जगमगाहट और खाने के ढाबे की चहल-पहल में लगता न था कि यह मध्य रात्रि का पहर है। बस के अंदर जो यात्री सो गये थे वे उठ कर औंघने लगे, कुछ बाहर निकल कर लघुशंका के लिए दौड़ पड़े। ड्राइवर ने कड़क शब्दों में कहा, "यहां बस एक घंटे रुकेगी। जो यात्री चाहे उतर सकते हैं पर बस ठीक एक घंटे बाद चल देगी। सीट पर बैठ कर इंतज़ार करें तो अच्छा है, इतनी रात में यदि कहीं भटक गये तो भटकते रहें, बस तो चल देगी।"

यह सुन सावित्री ने बाहर जाने की मां से अनुमति मांगी, किंतु मां ने चुपचाप बस के अंदर बैठा रहना उचित समझा। वह ड्राइवर की चेतावनी सुन भयभीत हो गयी थी। कुछ देर तक अनमने मन से सावित्री बैठी रही किंतु ताज़ी हवा के लिए वह लालायित हो उठी। मां को झकझोरते हुए उसने कहा, "आपको तो पेशाब करने की ज़रूरत कई बार रात में पड़ती थी। चलिए, नीचे चल कर करवा लाऊं। मुझे भी करने की आवश्यकता लग रही है। यहां हमारे काफ़ी यात्री भी उतर कर चाय-पानी ले रहे हैं।" यह सुन कर मां को उतरना पड़ा।

मां को निजी कार्यों से निवृत्त करा कर सावित्री खाने के ढाबे के सामने एक क़तार से पड़ी खाटों को देख मां से बोली, "ये लोग राहगीरों को पेट भर स्वादिस्ट खाना खिलाने के बाद सो जाने के लिए खाट भी देते हैं, मुझे तो यहां एक खाट मिल जाये, मैं भी सो जाती हूं इस सड़क के किनारे।"

मां ने बेटी की नींद की आवश्यकता पहचान उसे लेट जाने के लिए प्रेरित किया और स्वयं खाट के एक ओर बैठ कर उसकी संरक्षता करने लगी। बांस के खंभे में लटकी ट्यूब लाइट की तेज़ रोशनी सावित्री के मुख पर पड़ रही थी। मां ने अपनी धोती का आंचल पसार कर रोशनी को सीधे मुख पर पड़ने से रोक दिया। सावित्री को कुछ देर में ही गहरी नींद आ गयी, लेकिन बस का टाइम हो जाने के कारण मां को जगाना पड़ा। बस के चलते ही मां-बेटी एक दूसरे को सहारा देते हुए सो गयीं। उनकी आंख तब ही खुली जब प्रातःकाल की बेला में बस हरिद्वार पहुंच चुकी थी। बस के रुकते ही कुलियों का शोरगुल, रिक्शे, तांगे वालों की पुकार सुबह के शुद्ध वातावरण को ध्वनि प्रदूषण से आक्रांत करने लगी। पाणिकर के पूर्व निर्धारित प्रोग्राम के अनुसार यात्रियों को गंगा के समीप ठहरने की व्यवस्था की गयी थी। थोड़ा सा निजी कार्य का सामान साथ में ले कर, शेष बस के पीछे सामान को सुरक्षित रख देने की व्यवस्था उपलब्ध थी। दोनों नित्यकर्म से निवृत्त हो कर गंगा स्नान के लिए निकल पड़ीं।

गंगा तट आते ही सितंबर माह की सर्दी से शरीर में हलकी ठंडक व्याप्त हो गयी। शायद काफ़ी दिनों से दक्षिण में रहने के कारण मां के वृद्ध शरीर में सर्दी जल्दी भी लगने

लगी थी। पिछले दिनों की बरसात ने गंगा को सिंदूर दिशा तक पानी से लबालब भर दिया जिसकी शीतल उछल तरंगों को देख सावित्री का उदास मन उत्साह से भर उठा, काश, सत्यवान भी साथ में आता! इस स्थान पर आ कर उसको बेहद्द शांति मिलती। इस तीर्थयात्रा के लिए इससे अच्छा कोई समय नहीं हो सकता था। गंगा स्नान का अति आनंद उस जीवनसाथी के साथ मिल सकता है जो धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष में हमारा सहायक हो सके। इस विश्वास को संजोती सावित्री ने पतित पावनी गंगा में 'त्राहि माम्, त्राहि माम्' उच्चारण करते हुए डुबकी लगायी। मां यह शब्द सुन मातृत्व भाव से विह्वल हो सावित्री को अंक में ले कर गंगा मां से प्रार्थना करने लगीं, "हे मां, अपनी इस नादान संतान को पाप से मुक्त करो, इसे अच्छा वर दो, मुझे इसके कन्यादान के भार से मुक्त करो, मां!"

मां की रुदन भरी विनती सावित्री के हृदय को चीरे दे रही थी। अपने को मां के अंक से मुक्त करने के लिए वह आगे बढ़ने लगी। गंगा जल से लबालब भरी हुई थी। वैसे भी संगम की गंगा और हरिद्वार की गंगा जी में बहुत भिन्नता है। मां ने सावित्री को चेतावनी दी, "बहुत आगे अकेले मत जाना, गंगा जी तुम्हें बहा कर ले जायेंगी, तुम्हें पता भी नहीं चल पायेगा, कब पैर फिसल गया।"

थोड़ी देर में सावित्री पानी को छपछपाती हुई लौट आयी। दोनों को गंगा स्नान करके शीघ्र लौट जाना था। बस के यात्रियों का सुझाव था कि नाश्ता ऋषिकेश पहुंच कर चोटी वाले रेस्ट्रां में किया जाये। गंगा स्नान के आनंद के साथ साथ वह शुद्ध घी की पूरी-आलू खाने के लिए लालायित थे। मां ने श्रद्धाभाव से गंगा जी का पूजन पंडे से करवाया। गोत्र आदि बताते वक़्त उनकी आंखों में आंसू आ गये। पति को मरे कितने वर्ष हो गये थे किंतु उस महान व्यक्ति की स्मृति के सहारे ही उन्हें यहां उनकी धरोहर सावित्री सहित यह सुअवसर मिला था।

ऋषिकेश पहुंच, निजी सामान ले कर बस छोड़ कर यात्री लक्ष्मण झूला पार कर पैदल घूमने के लिए दोपहर तक स्वतंत्र थे। यह भी घोषणा की गयी कि जो यात्री अपने साथ यात्रा की आवश्यक वस्तुएं—छाता, छड़ी, पानी की बोतल, किरमिच के जूते, बरसाती और सिर एवं माथा ढंकने वाला मंकी टोपा—न लाये हों वे ऋषिकेश में अवश्य ख़रीद लें। बद्रीनाथ, केदारनाथ में इन वस्तुओं की आवश्यकता पड़ेगी।

ऋषिकेश की यात्रा अधूरी है यदि लोग लक्ष्मण झूला पार कर स्वर्गाश्रम वाले तट पर निकल नहीं आते। 'लक्ष्मण झूला' कहलाने वाला यह पुल लोहे के तारों पर लटका हुआ है। यहां यात्री बीच में आ कर बच्चों की तरह कूदने लगते हैं और झूले का आनंद उन्हें सहज प्राप्त हो जाता है। मां के साथ धीरे धीरे चलने में सावित्री के साथ के अन्य बस यात्री आगे निकल जाते थे, किंतु लगभग झूले पर पहुंच एक गुजराती परिवार ने सावित्री को जल्दी से आने का निमंत्रण दिया, "बहन, बा को धीरे धीरे आने दो। यहां वह गिरेंगी नहीं, बीच में बड़ा सरस दृश्य है, झूलने में बड़ा मज़ा आयेगा, बधा एक साथ

झूलना गमे छे।'' उनकी टूटी-फूटी हिंदी सुन कर सावित्री को ख़ुशी हुई, उससे अधिक आत्मीयता भरे मित्रता के इस आग्रह के कारण। बच्चे जैसे एक दूसरे के साथ खेलने के लिए दौड़ पड़ते हैं, सावित्री ने मां का हाथ छोड़ कर लक्ष्मण झूले को कूद कूद कर हिला देने की कोशिश में उस परिवार का पूरा साथ दिया। पुल पार करने के बाद इस गुजराती परिवार ने स्वर्गाश्रम, गीता भवन देखने तक सावित्री और उसकी मां को अपने साथ रखा। उस गुजराती परिवार के सदस्यों ने गंगा के दर्शन प्रथम बार किये थे, किंतु इस वातावरण में आ कर वे गंगा को केवल एक नदी मात्र के रूप में नहीं देख रहे थे। उनके पूर्वजों ने ऐसे संस्कार दिये हुए थे जिनके कारण उनके लिए भी गंगा जी पूजा की वस्तु थीं, नदी नहीं। मन में बसे हुए संस्कार इसमें सहायक होते हैं और विभिन्न भाषाओं और प्रांतों में विभाजित हमारा विशाल भारत देश एक संस्कृति में बंध जाता है। गंगातट पर खड़े हो कर केवल शोभा नहीं निहारी जा सकती, मन अनायास ही श्रद्धाभाव से नतमस्तक हो झुक जाता है।

लक्ष्मण झूले को पार कर बाबा काली कमली वाले का आश्रम पहले मिला, उसके बाद तो छोटे-मोटे अनेक मंदिर और आश्रम मिले, जो लगता था वहां के संन्यासी और स्थानीय लोगों के निवास स्थान थे। जगह जगह पूजा की सामग्री बिक रही थी, उसके साथ साथ स्त्री के प्रसाधन के सामानों की भी भरमार थी। उसके बाद गीता भवन, स्वर्गाश्रम, परमार्थ आश्रम आये जहां सत्संग चल रहा था। कुछ संन्यासी, वृद्ध, स्त्री-पुरुष और भिखारी कतार में बैठे हुए नाश्ता परोसे जाने की प्रतीक्षा में दिखलायी पड़े, जिनकी दयनीयता को देख हृदय पसीज उठा। धन्य हैं कलकत्ते, मुंबई आदि के धनाढ्य व्यापारी जो नित यहां खाने-पीने की व्यवस्था जुटाने हेतु नियमित पैसे भेजते रहते हैं। सबसे अंत में श्री महेश योगी का आश्रम आया जहां से उतरते ही चंचल वेगवती लहरों भरी गंगा बह रही थी, मानो उस आश्रम के चरण धो रही हो। इसी आश्रम से श्री महेश योगी ने भावातीत ध्यान-योग की सरल पद्धति को सारे विश्व में फैला दिया है और हमारे वेदों का ज्ञान विश्व में व्याप्त हो गया है।

सौभाग्य से महेश योगी के आश्रम के दर्शन की आज्ञा मिल गयी। महेश योगी आश्रम की भूमिगत गुफाएं काफ़ी चर्चित रही हैं। सुनते हैं, वहां एकांत में अति आधुनिक सुख-सुविधाएं उपलब्ध हैं और वहां के शांत वातावरण में अनायास ही समाधि लग जाती है। कई विदेशी पाश्चात्य जगत की कोलाहल से दूर यहां एकांतवास एवं योग साधना करने आते रहते हैं जिनमें पॉप संगीत के युवाओं का नाम सुर्खियों में रहा है। महेश योगी आश्रम और वहां चलते हुए शिविर, वैदिक पाठशाला को देखने के बाद गुजराती परिवार पुनः गंगा तट की ओर निकल गया। सावित्री का मन भी गंगा तट पर जाने के लिए नदी के जल सा उछलने लगा, लेकिन मां ने शारीरिक थकान के कारण गीता भवन में विश्राम करने की इच्छा प्रकट की। सौभाग्य से वहां आराम करने के लिए एक अच्छा कमरा मिल गया। वहां खिड़की खोलते ही गंगा जी का सुंदर दृश्य दिखलायी देने लगा। दोनों ने बैठ

कर पूड़ी-सब्ज़ी खायी और मां ने कुछ देर आराम किया, किंतु गीता भवन के इस कमरे में मानो जादू था, सावित्री को थकान बिलकुल नहीं महसूस हो रही थी। हॉल में प्रवचन चल रहा था, वह मां को ले कर उस ओर चल दी। एक युवा संन्यासी माइक के सामने बोल रहा था और चारों ओर बैठे लोग टकटकी लगाये सुन रहे थे। वह निस्पृह हो कह रहा था, "जो नहीं है, उसको ले कर मन की भटकन व्यर्थ है, संसार माया जाल है। जैसे प्यासा मृग मरीचिका के लिए सतत दौड़ा करता है किंतु कभी तृप्त हो कर प्यास नहीं बुझा पाता, वैसे ही इस संसार में हमें शांति नहीं मिल सकती। जीवात्मा चौरासी कोटि योनियों में भटकने के बाद मनुष्य योनि में जन्म ले पाती है। इस जन्म-मरण के चक्र से बाहर आने के लिए मनुष्य योनि में ईश्वर की उपासना करना अति आवश्यक है। संसार को केवल अपनी कर्मभूमि समझो, हृदय में सदैव ईश्वर का नाम जपते रहो। प्रेम से बोलो, एक स्वर में बोलो, 'हरे राम, हरे राम, राम राम हरे हरे, हरे कृष्ण, हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण हरे हरे।' संकीर्तन की ध्वनि कुछ देर के लिए शांत हो गयी। गीता भवन के प्रांगण में गेरुआ वस्त्र पहने संन्यासी के समूह एकत्रित हो रहे थे, वे पंक्तिबद्ध हो कर आगे बढ़ रहे थे और वेदमंत्रों का उच्चारण मधुर स्वर में करते जा रहे थे। ऐसे सुंदर वातावरण में आ कर सावित्री का मन सहज पुलकित हो उठा। संन्यासी वृंद उस युवा संन्यासी को, जो संकीर्तन करवा रहा था, अपने साथ ले कर आगे चलने लगे, भक्तगणों ने खड़े हो कर नतमस्तक हो उन्हें विदा दी। सावित्री के वैज्ञानिक मस्तिष्क में जिज्ञासा उत्पन्न हुई कि क्यों यह संन्यासी युवावस्था में ही संसार से विरक्त हो गया है? आश्रमवासियों ने बतलाया कि वह युवा संन्यासी एक कुशल डॉक्टर था जिसकी पत्नी प्रसव के समय नवजात बच्चे सहित मर गयी। उस विछोह में वह ऋषिकेश आया और गुरु जी की कृपा से उसे सच्चे ज्ञान की प्राप्ति हुई। ज्ञान वह नहीं है जो वेद-पुराणों को पढ़ने के बाद आता है, असली ज्ञान तो वह है जो ज्ञान-चक्षु खोल दे, प्रभु के मार्ग की ओर अग्रसर करवा दे। गुरु कृपा हो जाने से जन्म जन्म के बंधन सहज खुल जाते हैं। सावित्री की प्रबल इच्छा हुई कि ऐसे सतगुरु के दर्शन करे किंतु मां ने उसे बलपूर्वक उस ओर जाने से रोका, "पता है, क्या बज रहा है? दोपहर तक हमें बस तक पहुंच जाना है। तुम्हारी उम्र ऐसे सतगुरु की खोज करने की नहीं है, हमारे यहां पढ़-लिख कर पहले गृहस्थ आश्रम जाना होता है फिर वानप्रस्थ और संन्यास। हिमालय आने पर अनेक सिद्ध पुरुषों के दर्शन दुर्लभ नहीं, मेरी अवश्य उम्र है ऐसे सतगुरु की खोज करने की, किंतु वह तेरे विवाह करने के बाद ही सोचा जा सकता है," मां ने सावित्री का हाथ पकड़ कर कातर दृष्टि से देखते हुए कहा। इसके उपरांत, गीता भवन के प्रागंण में बने विष्णु-लक्ष्मी मंदिर में शीश नवा कर मां-बेटी वहां से चल दीं। रास्ते भर सावित्री मौन रही, यहां भी विवाह की चर्चा मां ने शुरू कर दी, इस विषय पर बहस घर में जब भी छिड़ी, कलह, कलेश द्वारा समाप्ति हुई। अतएव तीर्थाटन करते समय मां की इस हठ पर क्यों विवाद बढ़ाया जाये? लक्ष्मण झुला पार करते समय सावित्री ने अपने चित्त के समस्त विकार को मां

गंगा की लहरों की उच्छल तरंगों में तिरोहित कर दिया। मां-बेटी चुपचाप बस में आ कर बैठ गयीं और अन्य यात्रियों की प्रतीक्षा करने लगीं।

समयानुसार बस ऋषिकेश से चलने पर हिमालय पर्वतों को लांघती हुई बढ़ती गयी। शाम के ढलते सूरज की आभा पर्वतों के बीच, शिखर पर और घाटियों पर से ऊपर उठती हुई निराली थी। कभी बस चढ़ते समय ऊंचे ऊंचे पहाड़ों पर बनी वीथियों पर गोलाकार घूमती हुई रेंगती नज़र आती तो वही बस उतरते समय पहाड़ों पर तीव्र गति से दौड़ती हुई। सावित्री हैरान थी कि इस बस का चालक कितना चतुर ड्राइवर है, इतने संकरे, टेढ़े-मेढ़े दुर्गम रास्ते में बिना कोई असंतुलन पैदा किये ये दूरियां पार किये जा रहा है! उसे क्या पता था कि रात के अंधियारे में जंगली जानवरों का भय होने के कारण ड्राइवर को अपने अगले पड़ाव श्रीनगर पहुंचने की जल्दी थी। ड्राइवर के अलावा श्रीनगर शीघ्र पहुंचने की जल्दी यात्रियों को नहीं थी। यात्री बस में बैठे बैठे सो गये थे या सावित्री की तरह रास्ते की कुछ प्राकृतिक छटा को निहार रहे थे। शुद्ध जलवायु में वृद्ध लोग भी थकान महसूस नहीं कर रहे थे।

श्रीनगर पहुंच कर एक स्थानीय स्कूल में रात्रि के रहने की सामूहिक व्यवस्था देख सावित्री को बड़ा अटपटा लगा। उसने पाणिकर ट्रैवल्स के कर्मचारी से सोने के लिए अलग कमरे की अतिरिक्त पैसे दे कर व्यवस्था कर ली। जिस होटल में यात्रिगण खाना खाने गये थे, वहीं ऊपर एक कमरा मिल गया, जो बेहद छोटा था लेकिन वहां ज़रूरत की चीज़ें उपलब्ध थीं, जैसे—दो खाट, गद्दा, तकिया, रजाई, पीने का पानी एवं नहाने के लिए स्नानघर व शौचालय आदि।

रात्रि का भोजन करने के बाद घोषणा की गयी कि तीन बजे ही सो कर उठ जाना है, नहाने के लिए गर्म पानी उपलब्ध होगा। जो पहले आयेगा, उसको उतना ही गर्म पानी मिल जायेगा। देर से उठने वालों को ठंडे पानी से नहाना-धोना होगा। सूरज निकलने से पहले श्रीनगर छोड़ देना है जिससे रात्रि होने से पहले रामनगर तक पहुंच सकें।

यह घोषणा सुन कर सारे यात्री बेचैन हो उठे, तीन बजे उठ सकना कैसे संभव होगा? कल रात किसी तरह हरिद्वार पहुंचने के लिए बस में ही सोया गया है और आज रात जब पलंग आदि की व्यवस्था मिली तब तीन बजे उठना है, आपस में इस बात की चर्चा करते हुए कुछ यात्री सोने चले गये, कुछ श्रीनगर शहर की चहल-पहल देखने। मां को साथ ले कर सावित्री अपने कमरे में आ गयी। पलंग पर लेटते ही मां गहरी नींद में सो गयी। दिन भर की यात्रा से उनकी हड्डी-पसली हिल गयी थीं। मां को ख़र्राटे लेते देख सावित्री खिड़की खोल कर बाहर का दृश्य देखने लगी।

चमोली जिले का श्रीनगर, जो कि पहले गढ़वाल की राजधानी था, आजकल की एक लंबी घाटी में घनी बस्ती वाला शहर है। वहां रात्रि में इस समय बिजली से जगमगाती खुली दुकानें और ख़रीदारों की चहल-पहल थी। सड़कों पर रुकी यात्री बसों

की भीड़, यात्रिगण एवं और स्थानीय लोगों के ख़रीदारी करते हुए जनसमूह थे। कपड़े, घरेलू बरतन के अतिरिक्त फल, मिठाई, भोजन, चाय, डबल रोटी और यहां तक कि मांस, मछली व अंडे की भरमार थी जिन्हें चाव से कुछ यात्री लोग ख़रीद रहे थे। पहाड़ी क्षेत्र में व्यापारियों की व्यस्तता देख सावित्री चकित थी। कुछ ही देर में नीचे सड़क से युवा पर्यटकों की एक टोली निकली, और उनकी बातचीत, अट्टहास और कर्णभेदी पॉप संगीत से इस पहाड़ी के शांत वातावरण में ध्वनि-प्रदूषण व्याप्त हो गया। थोड़ी देर के लिए मानो गंगा की लहरों की तेज़ गति में व्यतिक्रम डाल दिया गया हो। सावित्री ने नीचे झुक कर सड़क पर घूमते इन आवारा पर्यटकों को देखने की कोशिश की तो निश्चित करना कठिन हो गया कि ये लोग स्थानीय श्रीनगर विश्वविद्यालय के छात्र हैं या पर्यटक, जो बद्रीनाथ की यात्रा पर यहां कुछ देर के लिए रुके हुए हैं। उनकी वेशभूषा से स्त्री-पुरुष वर्ग में उन्हें विभाजित करना असंभव था। बड़े बड़े बाल, जींस, टॉप, गले और कान में एक समान दिखने वाले आभूषण, बेफ़िक्री से चलते और कुछ एक को धूम्रपान करते हुए देख इन नवयुवक-नवयुवतियों को कौन कह सकता था कि इनमें से श्रद्धालु पर्यटक कौन था, कौन नयी पीढ़ी की छात्र-छात्राएं, जो जागरूक युवा सैलानी बने घूम रहे हैं? आज की नवयुवक पीढ़ी पाश्चात्य देश की संस्कृति को अपनाकर भारतीयता से कितनी दूर चली गयी है! इन नवयुवक-नवयुवतियों में प्रेम प्रसंग होने और टूट जाने में क्या आत्मग्लानि, वेदना जैसी भावनाएं नहीं उठती होंगी? सावित्री का मन सहसा श्रीनगर के इस छोटे से कमरे की खिड़की से दूर भाग राजधानी दिल्ली के जनपथ पर जा कर शोक-मग्न हो उठा। सत्यवान के साथ कल दोपहरी में पैदल मीलों दूरी को पार करने में कोई थकान न लगी थी बल्कि उत्साह और आनंद मिला था, लेकिन सत्यवान का वायदा करके शाम को न आने पर कितनी कड़वाहट और विरह वेदना हुई थी! क्या इस तरह की भावनात्मक उठा-पटक ये आधुनिक प्रेमी नहीं करते होंगे? काश, वह सत्यवान से तिलतिल कर उसे जलाने के लिए प्रतिशोध ले पाती! स्वाभिमान जाग्रत हो जाने के कारण सावित्री का मन उचट गया। पलंग पर लेट कर वह मां की तरह सो न सकी, काफ़ी देर करवटें बदलती रही। सघन अंधकार में मच्छरों ने आ कर उसके बदन को काट काट कर आक्रांत कर दिया। रात्रि में निश्चित हुआ था कि सुबह तीन बजे ही उठ कर नहा-धो कर प्रातः होने से पहले ही चल देना है। इस दुश्चिंता में कब उसकी आंख लग गयी, पता न चला।

मां ने नित्यकर्म से निवृत्त हो कर सावित्री को जगाया, "कोई मुझे अंधेरे ही ख़ूब सारा गर्म पानी दे गया था, उसी में से बचा कर मैंने तुम्हारे लिए छोड़ दिया है। जा कर तुरंत काम ख़त्म करो, तब तक मैं भी पूजा-पाठ कर लेती हूं। हमें समय से अन्य यात्रियों के स्थान पर पहुंच जाना है, शायद उनसे बिछुड़ कर हम यहां ही न रह जायें?"

"क्या मां, सुबह सुबह न राम न श्याम, लगीं चिंता करने!" झुंझला कर सावित्री ने पलंग छोड़ा और फ़ौरन ग़ुसल करने चली गयी, शायद चार बजे का समय हो गया था।

सावित्री ने नित्यकर्म से निवृत्त हो कर पलंग ठीक किया और सामान उठा मां को सुरक्षित बस की सीट पर समय से पहले बिठला दिया, "देखो, अभी तो कितने यात्री आने बाक़ी हैं, मुझे तो नहीं लगता कि यह बस कुछ देर ही में यहां से चलने वाली है।" मां का ध्यान कैसेट में बजती हुई प्रातः गणेश आरती की ओर था, जो बस चलने से पहले नित्य की जाती थी। अतएव मां ने मौन रह कर केवल सिर हिला कर सहमति प्रकट की। पांच मिनट की प्रतीक्षा के बाद बस के ड्राइवर ने हॉर्न दिया। बिछड़े यात्रिगण भागते हुए लपके, कुछ एक हाथ हिला कर रुकने के लिए प्रार्थना करने लगे, लेकिन सबको शीघ्र ही अपनी अपनी सीटों पर आने के लिए बाध्य होना पड़ा।

बस समयानुसार चल पड़ी। ऐसी तत्परता समय सारणी का अनुपालन करते अन्य किसी स्थान में नहीं देखा-सुना था। अकसर विदेशी भारतीय समय के बारे में मज़ाक़ उड़ाते हैं, क्योंकि वैज्ञानिक सेमिनार तक में एक घंटे पीछे चलना साधारणतया उन्हें देखने को मिलता है।

प्रातःकालीन बेला में बस तीव्रगति से चलने लगी। जो यात्रिगण देर से आये, उनका चेहरा निष्प्रभ हो गया था और वे ड्राइवर की इस कठोरता पर आक्रोश प्रकट करने लगे, "ऐसी भी सुबह सुबह क्या जल्दी है, यह तो हमारी अपनी बस है, इसमें हमारा क्या दोष है? सुबह तीन बजे उठा दिया गया लेकिन नहाने को गये तो पानी तक नहीं मिला। किसी तरह नित्यकर्म करने के लिए बर्फ़ सा ठंडा पानी मिला, जिसे छूने की हिम्मत न पड़ी। पीने के लिए जब गर्म चाय मिली तब एकाएक बस का हॉर्न बज गया, आधी पी और पैसे पटके, भागते-पड़ते बस छूटते छूटते मिल सकी।"

सावित्री ने बस में यात्रियों की चर्चा सुन कर अपने ध्यान को बाहर लगाने की कोशिश की, बाहर का वातावरण अत्यधिक मनमोहक था। एक ओर इतनी अधिक पहाड़ी प्राकृतिक छटा थी, दूसरी ओर बस के अंदर मानवीय कोलाहल। यात्रा में यदि कुसंगत मिल जाये तो आनंद ही समाप्त हो जाता है। शायद उसे मां ने समय से उठा नहीं दिया होता और गर्म पानी देने की व्यवस्था न कर ली होती तो वह भी बस यात्रियों की भांति अपने चित्त को अशांत होने से न रोक पाती। मनुष्य अपनी आदतों का दास जो ठहरा। रुद्रप्रयाग पहुंच बस कुछ दूरी चल कर केदारनाथ से आती मंदाकिनी नदी और बद्रीनाथ से आती अलकनंदा के उल्लास भरे मिलन का दृश्य दिखलाने के लिए रुकी। कुछ देर उस दृश्य को देख कर एक सहयात्री ने पीछे से आ कर हिंदी में कहा, "लोग कह रहे हैं कि नीचे जलधारा इतनी तीव्र वेग से है कि वहां कोई स्नान नहीं कर सकता, यहां के स्थानीय लोग नदी में नहाते नहीं हैं, केवल लकड़ी काट काट कर बहाते हैं या मृत्यु होने पर शव को बहा देते हैं। यहां की नदी के तट पर खड़े हो कर देखने से सिर चकरा जाता है।"

सावित्री ने भी हिंदी में उत्तर दिया, "जलधारा के बिलकुल समीप खड़े होने में इसका अनोखा अनुभव होगा, वेग भरे प्रवाह का एक दूसरे से मिलन हो, एक दूसरे से

टकरा कर उछलने का अद्‌भुत दृश्य, वहां की फुहारों से भीग जाने की रोमांचकारी अनुभव की केवल यहां से परिकल्पना ही की जा सकती है। काश, हम लोग भी नीचे जा कर इस दृश्य को देख पाते! यहां तक चारों ओर जलधारा की घरघराती ध्वनि फैली हुई है, वह गर्जन तट के समीप अवश्य कर्णभेदी होगा।''

''क्या आप कविता लिखती हैं या साहित्य की टीचर हैं?''

''नहीं, मैं तो वैज्ञानिक हूं—एक नीरस व्यक्ति, जो साहित्य, कला, संगीत आदि से कोसों दूर,'' सावित्री ने झेंप कर कहा।

एक यात्री कह रहा था, ''मैं इतना भ्रमण कर आया पर इतना सुंदर नदियों के मिलन का, ऐसा दृश्य मैंने पहले कभी नहीं देखा। हां, अमेरिका का नियाग्रा जलप्रपात जब देखा तो अवश्य उसे देख कर ऐसा ही मैं आश्चर्यचकित हो उठा था। मुझे ऋषिकेश में किसी ने बतलाया था कि तीर्थयात्रा के संपूर्ण रोमांच का प्रमाण रूप अंश इसी स्थल पर मिल जाता है। रुद्रप्रयाग की महिमा इसलिए भी अधिक है कि यहां से जी चाहे तो केदारनाथ चले जाओ, चाहे तो बद्रीनाथ। रुद्रप्रयाग के बाद से हमें बीहड़ जंगलों और ऊंचे भयानक काले पहाड़ों के बीच से यात्रा करनी होगी, इसीलिए श्रीनगर में बस जल्दी चलने के लिए तैयार खड़ी मिली थी। यहां जहां जहां नदियों का संगम स्थल होता है, उस स्थान को हम प्रयाग कहते हैं।''

सहमति में मां ने कहा, ''मैंने तो केवल प्रयागराज के अब तक दर्शन किये थे मुझे गंगा, यमुना, सरस्वती के संगम स्थल पर स्नान करने का कई बार सौभाग्य मिला है, किंतु इस क्षेत्र में आ कर लगता है—भक्ति, धर्म, तपस्या चारों ओर बिखरी हुई है।''

''आपकी आस्था देख कर मेरा मन चमत्कृत हो उठा।''

''नहीं, मैंने गृहस्थी के सीमित क्षेत्र के अतिरिक्त कुछ नहीं जाना है, मेरी पहुंच केवल चौके-चूल्हे तक सीमित है।''

''अच्छा है, माता जी, आपने सीमित क्षेत्र के अतिरिक्त कुछ नहीं जाना-सुना। जितना मनुष्य अधिक जानता है, उतना ही अधिक अशांत रहता है। आप जैसे लोगों के लिए 'कठौती' में गंगा जी उतर आती हैं। मन चंगा तो कठौती में गंगा, सुना होगा आप लोगों ने?''

सावित्री ने उस सहयात्री को उत्सुक आंखों से देखा, लेकिन मां को जल्दी चलने को कहा और वहां से उन्हें उठा कर बस में ला सीट पर बिठा दिया।

पाठकगण अनुमान लगा सकते हैं कि सावित्री स्वभाव से अत्यधिक भीरु और लजीली होने के कारण किसी परपुरुष का खुल कर बातचीत करना सहन न कर पायी।

सहयात्री के मन में उत्सुकता थी, भला ये दोनों सास-बहू हैं या मां-बेटी? इस लड़की की वेशभूषा से लगता है कि यह विधवा है लेकिन कुछ स्पष्ट नहीं कहा जा सकता।

रुद्रप्रयाग से बस कर्णप्रयाग की ओर चल पड़ी। सघन पर्वतीय परिवेश के बीच बस

बराबर आगे बढ़ रही थी। पर्वतों को काट काट कर सड़कें बनायी गयी थीं। ऊंचाई पर चढ़ कर ऐसा प्रतीत होता था कि यहां पर्वतों पर सड़कों की मालाएं चढ़ायी गयी हों। सौंदर्य के साथ साथ उसकी भयानकता को निहारते समय विचार आया, कहीं यह बस नीचे गिर पड़े तो? यह काल्पनिक छवि आते ही सावित्री के भीरु मन में भय का ऐसा संचार हुआ कि वह मां का मज़बूती से हाथ पकड़ कर चुपचाप बैठ गयी। थोड़ी देर शांत रहने के बाद बोली, "मां, बहुत देर तक खिड़की से झांकते न रहना, कहीं उलटी न आ जाये। हम लोगों ने कुछ खाया-पीया नहीं है, थैले में कुछ खाने-पीने का सामान अवश्य होगा, कुछ खा पी लें, नहीं तो उलटी अवश्य आ जायेगी। यहां यदि ड्राइवर ज़रा सी चूक कर दे तो यह बस नीचे गड्ढे में गिर सकती है, जहां चकनाचूर हुई हमारी हड्डी-पसली का ढेर ही मिल पायेगा।"

"बेटी, शुभ शुभ बोलो। लो, बेसन के लड्डू और मठरी खाओ। मेरे पास नाश्ते का काफ़ी सामान है, क्यों न उस यात्री को कुछ दे दो जो कुछ देर पहले बातचीत कर रहा था?" नाश्ता देते हुए मां ने सुझाव दिया।

"मां, अभी हमारी यात्रा शुरू हुई है, हमें बहुत दूरी पार करनी है कई दिनों तक, कई लोगों से मिलना-जुलना होगा, किस किसको तुम नाश्ता-पानी कराती फिरोगी? मुझे अपरिचित पुरुष से बातचीत करना, मित्रता बढ़ाना बिलकुल पसंद नहीं है।"

"हमें जानकारी के लिए किसी न किसी से बोलना पड़ेगा। इस बस में बोलचाल करने से समय अच्छी तरह कट जायेगा।"

"सो तो है, हमें जानकारी के लिए किसी परिवार वाले से मित्रता करनी होगी, जैसे ऋषिकेश में हमारे साथ साथ जो गुजराती लोग रहे, वे हमारे साथ इस बस में हैं, उनसे पूछा जा सकता है।"

"वे तो अपने में मस्त हो जाते हैं, हमारे साथ मित्रता के लिए दुबारा वे लोग फिर कहां मिल सके हैं?"

"हम लोगों ने अकेले कमरा श्रीनगर में ले लिया था, शायद यही कारण रहा होगा कि उन लोगों ने दुबारा हमारी सुध-बुध नहीं ली। चलो, दुबारा बस रुकने पर उनसे बातचीत करने का अवसर मिल जायेगा। हममें से किसी एक को पहल करनी होगी," कह कर सावित्री चुप हो गयी। उसकी आंखें भारी हो रही थीं। रात्रि में वह ठीक से सो नहीं पायी थी, खिड़की के पास सिर रख कर ठंडी हवा के झोंकों में वह सो गयी।

थोड़ी ही देर में उसे किसी पुरुष की चेतावनी सुनायी दी, "मैडम, सिर खिड़की से बाहर मत करिए, पहाड़ के किसी कोने से टक्कर लग गयी तो आपको चोट आ सकती है।"

मां ने तुरंत सावित्री का सिर अपनी गोद में रख लिया। विश्वस्त हो कर सावित्री मां की गोद में सोती रही। रुद्रप्रयाग से कर्णप्रयाग ज़्यादा दूर नहीं है, केवल बत्तीस किलोमीटर की दूरी है, लेकिन बस गोलाइयों में घूमती सड़कों पर काफ़ी मंद गति से चल

रही थी, इसीलिए समय काफ़ी लगा।

कर्णप्रयाग आ कर बस छोटी सी बस्ती में आ कर रुक गयी। आसपास दोनों किनारे कई बसें, कारें आदि रुकी हुई थीं, यात्रिगण चाय-पानी की लालसा में उतरने लगे। बस वाले ने घोषणा की, "कर्णप्रयाग में यहां पिंडरी ग्लेशियर से आने वाली पिंडर नदी अलकनंदा से मिलती है इसीलिए इसे प्रयाग का नाम दिया गया है। समयाभाव के कारण उस सुंदर दृश्य को देखने का सौभाग्य दूर से केवल चलती बस द्वारा ही मिल सकता है। यहां पिंडर नदी का पानी बर्फ़ के अपने स्वरूप को पूरी तरह से नहीं छोड़ पाया है। इस तरह से सफेद बर्फ़ीली पिंडर नदी के अलकनंदा के स्फटिक से स्वच्छ निर्मल जल से मिलने पर दोनों नदियां काफ़ी चौड़े फैलाव को बनाती हुई आगे बढ़ जाती हैं। उनका मिलन रुद्रप्रयाग की मंदाकिनी और अलकनंदा से भिन्न है। यहां की पर्वत श्रेणी बहुत ऊंची नहीं है। यहां पर हम लोग समुद्रतल से दो हज़ार छह सौ फ़ीट की ऊंचाई पर हैं।"

बस कुछ देर बाद ही चल पड़ी। यात्री सुबह का ताज़ा बनता हुआ गरम नाश्ता देख कर नाश्ता करने के उत्सुक थे किंतु उन्हें बस में बजते हुए अर्चना संगीत को सुन कर संयम करना पड़ा। लहरियादार सड़कों पर सतत घूमती हुई बस को देख कई यात्री ऊंघने लगे थे, कई प्राकृतिक दृश्य की नवीनता से अभिभूत हो मौन बैठ जाप कर रहे थे। कर्णप्रयाग से नंदप्रयाग पहुंचने तक ऊंचाई लगभग 3,000 फ़ीट हो गयी थी। यात्रिगण थक कर केवल गंतव्य स्थान पहुंचने के इच्छुक हो उठे थे, लेकिन चमोली पहुंच कर बस रुक गयी। घोषणा की गयी कि "ड्राइवर कुछ देर विश्राम और यहां से चाय-पानी के बाद फिर आगे बढ़ेंगे, यात्रिगण यहां पर नाश्ता करने के लिए आधे घंटे के बाद लौट आयें।" यह सुन कर उत्साह की लहर यात्रियों में छा गयी। सावित्री ने मां को नीचे उतरने के लिए प्रेरित किया, "मां, इसके बाद शायद जोशी मठ पहुंच कर ही उतरना पड़ेगा, क्यों न उतर कर आप हाथ-पैर सीधे कर लें, मैं भी आसपास की दुकानों को देख खाने के लिए कुछ ताज़ा बना ख़रीद लाती हूं। यहां काफ़ी ताज़े फल भी दिखलायी पड़ रहे हैं, आपका मन हो तो फलाहार करें, चाहे पूड़ी-सब्ज़ी।"

मां-बेटी ने पेट भर खा कर गर्म चाय पी, बस घोषणानुसार आधे घंटे के बाद चल पड़ी। चमोली से चलने के बाद रास्ते में पीपलकोटी पड़ा। बस वहां देर तक न रुकी। यहां यात्री बसों की भरमार दिखलायी पड़ी। सुनने में आया कि 'पीपलकोटी में अधिकतर विश्राम लेते हैं, अतः यहां बेहद भीड़ रहती है, इसीलिए हमारी बस ने चमोली रुकना पसंद किया था।'

पीपलकोटी में बस केवल पांच मिनट रुकी। वहां से पहाड़ों की ऊंचाई बढ़ती जा रही थी, इसीलिए घुमाव भी बढ़ते जा रहे थे। घुमावदार पथ पर बस के कई लोगों को वमन होना साधारण सी बात हो गयी। जिसे देखो, वह सिर बाहर निकाले हुए वमन करता दिखलायी देने लगा। यह दृश्य सावित्री के लिए असहनीय बन गया। बेचैनी दूर

करने के लिए उसने दवा ले ली। मां शांतचित्त से अपना जाप करती रहीं। उन्होंने साधारण भोजन और फल खाये थे, अतएव उनको कष्ट नहीं हुआ। यात्रियों में अधिकतर ने पूड़ी-छोले और दही खाया था, जो वमन में निकलता हुआ दिखलायी पड़ रहा था। कभी कभी इतनी बड़ी साइज की होने पर भी बस फिसलती सी नज़र आने लगती लेकिन चतुराई के साथ ड्राइवर स्पीड और गेयर का तारतम्य बना स्थिति को संभाल लेने में सक्षम हो जाता। ठंडी बर्फ़ीली हवा का झोंका आ कर बदन में सर्दी का आभास पैदा करने लगा, लेकिन सावधानी से बस चलाने के कठिन परिश्रम के कारण ड्राइवर के माथे पर पसीने की झलक नज़र आ रही थी। यदि वह सावधानी से बस न चलाता तो बस क़रीबन तीन सौ फीट गहराई में जा कर गिर सकती थी। रास्ते में कई स्थान ऐसे दिखे जहां टूटी हुई बस का ढेर सड़क के कोने में पड़ा दिखलायी दे रहा था। कितने यात्रियों की इस दुर्घटना में मृत्यु हुई होगी, उसका केवल अनुमान ही लगाया जा सकता था। निस्संदेह यहां ड्राइविंग करना एक चुनौती था। सावित्री इस विचार से आश्वस्त हुई कि उसका बसचालक पहाड़ी यात्रा में अभ्यस्त एक कुशल ड्राइवर था, फिर मां के साथ तीर्थयात्रा करते समय दोनों की किसी दुर्घटना में एक साथ यदि मृत्यु हुई, तो फिर चिंता क्यों हो? दोनों में से कोई जीवित न होगा। सत्यवान का क्या है, वह कुछ समय रो-धो कर इस बंधन से मुक्त हो कर स्वतंत्र''''

एकाएक बस में धमाका हुआ, जिसके कारण सावित्री की विचार तंद्रा टूट पड़ी। बस की ऊपरी छत का हिस्सा शायद एक बड़े पहाड़ के निकट आ जाने से टकरा कर टूट पड़ा था। ड्राइवर सीट के पास बैठी महिला की चीख़ बस में गूंज पड़ी। यात्री पुरुष वर्ग उस महिला की कुशल-क्षेम पूछने दौड़ पड़े। देखा तो वह महिला मूर्च्छित हो गयी थी। उसके सिर और कान के पास चोट लगी थी। ड्राइवर अवाक् हो गया था। पहले तो उसकी सीट के बगल में एक पुरुष बैठा करता था जो अकसर नींद के झोंके में गिरता हुआ उसका ध्यान आकर्षित कर देता था, कई बार उसे चेतावनी दी गयी थी कि ड्राइवर के बग़ल में बैठ कर वह इस तरह न ऊंघे, कब यह महिला इस सीट पर आ कर बैठी?

भयभीत हुआ उस महिला का पति अपनी गोद में उसे लिटा कर पानी के छींटे मारने लगा। थोड़ी ही देर में महिला ने आंखें खोल दीं, सबके प्राण में प्राण आये, किंतु महिला को तात्कालिक उपचार की आवश्यकता थी, ख़ून लगातार बह रहा था। उसका उपचार कर देने के लिए बस में फ़र्स्ट-एड की आवश्यक सामग्री उपलब्ध थी। भाग्य से बस में एक डॉक्टर भी यात्रा कर रहा था। उसने परामर्श दिया कि महिला को कोई अंदरूनी चोट तो कहीं न लग गयी है, यह मूर्च्छित क्यों हो गयी? इसका निदान हो जाना चाहिए। महिला अपने पति की गोद में शांत भाव से लेटी रही, पति ने अवश्य अपने आसपास खड़े व्यक्तियों को बतलाया, "मेरी धर्मपत्नी मुझे नींद में गिरता-पड़ता देख पीछे की सीट पर बैठ जाने की मुझसे हठ करने लगी। मैं जैसे ही उसकी सीट पर जा कर बैठा, मैंने देखा कि बस की छत किसी बड़े नुकीले पत्थर से टकरा गयी है। मेरी पत्नी

बैठने ही वाली थी कि कुछ भारी चीज़ उनके सिर और कान के पास आ लगी, रुधिर की धार निकल पड़ी, और मैंने पत्नी को सीट पर सुधबुध खो गिरते हुए देखा। एकाएक आ कर कुछ पत्थर अंदर गिरे, और ड्राइवर साहब ने बस रोक दी। आप लोग जो हादसा मेरी पत्नी के साथ देख रहे हैं, वह मेरे साथ होने वाला था, लेकिन मेरी धर्मपत्नी ने आपदा अपने ऊपर ले ली और मुझे इस संकट से बचा लिया। मैं तो दिल का मरीज़ हूं, इस शॉक को बरदाश्त न कर पाता। बेचारी मेरी पत्नी तो कुछ मिनट ही मूर्च्छित हुई है, पट्टी बंध जाने से ख़ून बंद हो गया है, भगवान की कृपा से बड़ी भारी आपदा आ कर टल गयी।''

ड्राइवर गंभीरता से बोला, ''पास के किसी गांव में जा कर हमें फ़ौरन बस की छत ठीक करवानी होगी, बस ठीक होने पर आगे की यात्रा करना संभव होगा।''

इस घोषणा को सुन कर यात्रियों में भय की लहर फैल गयी। इस बियाबान जंगल में ऐसा सुरक्षित स्थान कैसे मिलेगा, जहां बस की मरम्मत हो सके और इस महिला का उचित निदान एवं उपचार? इस हादसे पर प्रभु अनुकंपा से ही विजय प्राप्त की जा सकती है। अतएव यात्रिगण एकजुट हो कर उस महिला की कुशलक्षेम और अपनी सुरक्षा हेतु प्रार्थना करने लगे। केवल ड्राइवर और पाणिकर ट्रैवल्स के कर्मचारी सलाह-मशविरा करके धीमी गति से बस को एक छोटे से गांव के पास ले आये। बस के पहुंचते ही उस गांव के वृद्ध, बच्चे, नर-नारी पास आने लगे। बस की उड़ी हुई छत के टुकड़े को देख कर बच्चे अति उत्साहित हो उठे, ग्रामीण भाषा में एक दूसरे से बतियाते हुए वह ताली बजा बजा कर हंस देते। वयस्क लोगों ने महिला के उपचार के लिए स्थानीय डॉक्टर से परामर्श लेने का तुरंत प्रबंध कर दिया। बस के कुछ यात्री, महिला और उसके पति को ले कर उपचार कराने चले गये। बस में बैठी महिलाएं एवं वृद्धजन नीचे उतर कर आपस में पतिव्रता महिला यात्री की भूरि भूरि प्रशंसा करने लगे। वास्तव में, यदि वह स्त्री अपने पति को इस हादसे से चंद मिनट पहले हटा न लेती तो आज अनर्थ हो जाता। अपने पर यह आपदा ले कर उसने अपने पति की जान बचा ली। ऐसा कार्य एक पतिव्रता स्त्री ही कर सकती है। सावित्री इन बातों को सुन कर चुप रही, किंतु उसके मन में एक विचार कौंध गया, क्यों एक पत्नीव्रता पति ऐसा नहीं कर सकता? क्या यह केवल संयोग न था कि यह महिला नींद में हिलते हुए अपने पति को सुरक्षित करने के लिए (उसे अपनी पीछे की सीट पर बिठा देने के प्रयास में) अनायास चोट खा गयी? क्यों हम भारतीय नारी को बलिदान के लिए प्रेरित करने के लिए पतिव्रता धर्म की शिक्षा देते रहते हैं? पति को क्यों नहीं ऐसे धर्म बंधनों में बांध कर रखा जाता? सावित्री की विचार शृंखला टूटी क्योंकि बस सामान सहित टूटी छत की मरम्मत करवाने चली गयी, यात्रियों के लिए इस छोटे गांव में पड़ाव लेना आवश्यक था।

ग्रामीणवासियों के अनुरोध पर यात्रियों ने रात्रि को सादे भोजन एवं घरों में सोने के उनके प्रबंध को सहर्ष स्वीकार किया। सुबह चलते समय हृदय से आभार प्रकट करते

समय यात्रियों ने खाने और ठहरने की सुविधाओं के लिए उन्हें पैसे दिये जिन्हें उन भोले ग्रामीणवासियों ने स्वीकार किया। इस पहाड़ी जंगल में यात्रियों के अतिरिक्त अन्य कोई पैसा कमाने का साधन उन्हें उपलब्ध न था। शायद इसलिए हर घर में एक छोटा सा कमरा नियुक्त था जहां यात्रियों के रात्रि में ठहरने और भोजन करने की व्यवस्था सहज उपलब्ध की जा सकती थी।

भोजन समापन के बाद यात्रिगण उस महिला की कुशलक्षेम जानने के लिए आतुर हो उठे, मानो परिवार के किसी सदस्य पर आपदा आ गयी हो। सब ही उस मकान में गये जहां डॉक्टरी जांच के बाद उसे ठहराया गया था, पट्टी दुबारा कर दी गयी थी और एक इंजेक्शन भी लगाया गया था। शायद वह एंटी-टिटनस का होगा। सावित्री को यह जान कर आश्चर्य हुआ कि इस सुदूर पहाड़ी इलाके में एम.बी.बी.एस. डिग्री वाला एक डॉक्टर उपलब्ध था जो हर तरह की बीमारियों और सर्जरी करने के लिए केवल दस रुपये की फ़ीस मरीज़ से लेता था। दवाई आदि के लिए अतिरिक्त रुपये देने होते थे। उसके अनुसार महिला को ऊपरी चोट आयी है जो चंद दिनों में ठीक हो जायेगी, उसने इसके लिए एक्स-रे तक की आवश्यकता नहीं बतलायी।

सुबह बस में सब ही यात्रियों ने आते ही पहले उस महिला का आदरपूर्वक अभिनंदन किया और ईश्वर का कोटिशः धन्यवाद। गणेश-पूजा, आरती के उपरांत बस उस ग्रामीण क्षेत्र को छोड़ चल दी, मानो छोटी सी दुर्घटना के पीछे भगवान ने हमारी बड़ी कोई आपदा टाल दी हो! भगवान जो भी करता है, हमारे अच्छे के लिए करता है, बद्रीनाथ में पहुंच कर कोई न कोई ज्ञानी पुरुष, महात्मा अवश्य मिलेगा, तब इस दुर्घटना के विषय में पूछताछ होगी।

ऊषाकाल की लाली भरा उजाला चारों ओर से आ रहा था। यात्रा आरंभ होते ही टेपरिकॉर्डर पर बजता हुआ विष्णु सहस्र नाम का मधुर गान सुनायी देने लगा। रात भर के विश्राम कर लेने से सब ही यात्री प्रफुल्लित थे। ड्राइवर के सधे हाथों में जादू आ गया था, उसकी क्षतिग्रस्त बस की मरम्मत संतोषजनक रही। एक कर्मचारी बता रहा था, "जोशी मठ ठहरना अब संभव न होगा। आते समय श्री शंकराचार्य के मठ के दर्शन एवं मंदिर आदि देखे जायेंगे। जोशी मठ से पंद्रह किलोमीटर चलेंगे तब विष्णुप्रयाग पड़ेगा, जहां धौली गंगा का संगम है, फिर गोविंद घाट पड़ेगा। गोविंद घाट में बहुत प्रसिद्ध गुरुद्वारा है, उनके दर्शन करने श्रद्धालु सिक्खों का तांता लगा रहता है। वहां से उन्नीस किलोमीटर पैदल यात्रा करने के बाद विश्वविख्यात फूलों की घाटी पहुंचा जा सकता है।"

यह सुन कर सावित्री का मन चहक उठा। उसने मां को झकझोरते हुए कहा, "मां, यदि हम लोगों ने फूलों की घाटी नहीं देखी तो फिर क्या देखा?"

मां का उत्तर था, "बेटी, हम लोग तीर्थाटन करने निकले हैं, भगवान ने चाहा तो भविष्य में फूलों की सैर करने तुम अपने जीवनसाथी के साथ आना, अभी तो इस कर्मचारी की घोषणा ध्यान से सुनो।"

अपनी मचलती इच्छा को दबा कर सावित्री ने सुना, "रास्ते में पांडुकेश्वर का पड़ाव आयेगा। पहले बद्रीनाथ जाने की पक्की सड़क नहीं बनी थी, अतएव इस पड़ाव पर आ कर यात्री आराम करके आगे बढ़ते हैं। इसके अलावा हनुमान चेट्टी तक एकदम सीधी चढ़ाई है। पहले के लोग कहा करते थे कि पिछली पूरी यात्रा और यह ग्यारह किलोमीटर की यात्रा, परिश्रम की दृष्टि से बराबर की है। बस की यात्रा सुलभ हो जाने के बाद से आप लोगों को कोई कष्ट नहीं होगा। आपको बस के इंजन की थोड़ी अधिक घरघराहट अवश्य सुनायी देगी, किंतु हनुमान चेट्टी पर पहुंच कर आपको बद्रीनाथ घाटी का अतिसुंदर विहंगम दृश्य दिखलायी देगा, जहां पहुंच आप इस यात्रा की सारी तन-मन की थकावट को भूल जायेंगे, कृपया हमसे कोई भूल-चूक हुई हो अब तक इस यात्रा में, तो क्षमा करें।"

सावित्री की मां इस क्षमायाचना को सुन द्रवित हो उठीं, "अरे भाई, तुम्हारे सहारे हमें यहां बद्रीनाथ पहुंचने का सौभाग्य मिला। यहां की हवा में कुछ ज़रूर है। आज मेरे वृद्ध शरीर में नयी शक्ति आ गयी है।"

सावित्री ने टोका, "बात तो विपरीत है। यहां की हवा में ऑक्सीजन कम है, आप मां कुछ ज़्यादा ही उत्साहित हैं।"

मां सावित्री के इस वैज्ञानिक तर्क पर ध्यान कहां देने वाली थीं। हनुमान चेट्टी की मधुर कल्पना में वह मौन रह कर जाप करने लगीं। मंदिर के दर्शन एवं हनुमान जी को नमस्कार करने के लिए थोड़े समय के लिए भी बस न रुकी, केवल बस अड्डे पर पहुंच कर ही रुकी। बस अड्डे पर काफ़ी भीड़भाड़ थी, लेकिन जलवायु की ठंडक के कारण वहां की चहल-पहल अच्छी लगने लगी। सब यात्रियों के लिए रहने का सुचारु प्रबंध पहले से सुनियोजित था। अतएव यात्रियों को कोई असुविधा नहीं हुई। अन्य बसों से उतरे यात्री अपने अपने निवास स्थान की खोज में व्यस्त दिखलायी पड़े किंतु इतने लंबे दुर्गम पथ की सकुशल यात्रा को पार करने की प्रसन्नता प्रत्येक के चेहरे पर झलक रही थी। बद्रीनाथ के मंदिर का कलश देखते ही शरीर की क्लांति वहां की शुद्ध ठंडी हवा में विलीन हो गयी।

अतिथिगृह के कमरे में व्यवस्था कर लेने के बीच मां मंदिर के समीप स्थित तप्तकुंड में स्नान करने के लिए बेचैन हो उठीं। साथ आये कई अन्य यात्री उनकी इच्छा सुन साथ जाने को तैयार हो उठे। सावित्री ने वातावरण की ठंडक के कारण मां को इतनी शाम स्नान करने से रोका किंतु उन्होंने किसी की नहीं सुनी। एकाएक तैयार हो कर वह तप्तकुंड तक पहुंच जाने के लिए दस-पंद्रह सीढ़ियां ऐसी तेज़ी से लांघती गयीं जैसे वह कोई नवयौवना हों! सावित्री मां में यह उत्साह देख कर चकित थी।

बद्रीनाथ क्षेत्र में बिजली का प्रबंध है, तप्तकुंड की सीढ़ियों के पास भी प्रकाश की व्यवस्था थी और वहां काफ़ी संख्या में शाम के समय भी स्नानार्थियों की भीड़ जमा थी। महिला एवं पुरुषों के लिए अलग अलग कुंड थे एवं भीड़ जमा हो जाने पर भी सुविधा

के लिए उचित प्रबंध किया हुआ था। वातावरण में चारों ओर से बर्फ़ीली ठंडक का आक्रमण जारी हो, उस समय तप्तकुंड से गर्मगर्म पानी की भाप को देखना मात्र अति सुखदायी लगने लगा। यहां आ कर सावित्री को लगा, इस क्षेत्र को तथा श्रद्धालु यात्रिगण भक्तों को तप्तकुंड प्रकृति का अनोखा उपहार है। हिम्मत करके सावित्री मां को ले कर कुंड में उतर गयी, फिर बाहर निकल कर आने का मन न किया। पास में खड़ी एक सहयात्रिणी कह रही थी, "सुबह दर्शन के पूर्व अलकनंदा में स्नान करके फिर तप्तकुंड में स्नान करना चाहिए। उसी से यहां के स्नान का पूरा फल मिलता है, वही वास्तविक स्नान कहलाता है।"

काफ़ी सुबह उठ कर मां अवश्य अलकनंदा का स्नान करके तप्तकुंड में वापस नहाना चाहेंगी, तब ही बद्रीनाथ के दर्शन करना चाहेंगी, यह विचार आते ही सावित्री तप्तकुंड के स्नान से निवृत्त हो अलकनंदा के तट की खोज में निकल पड़ी। क़रीब पंद्रह फ़ीट की दूरी पर अलकनंदा का तट था, दूर से ही अलकनंदा के तीव्र प्रवाह की अनवरत ध्वनि सुनायी दे रही थी किंतु उसके पास आते ही सावित्री ठंड से कांप उठी। इस अधपिघली बर्फ़ की वेगवती जलधारा में कैसे नहाना संभव होगा? कल्पना मात्र से सावित्री कांप उठी। उसे लगा, ऐसी नदी में स्नान की बात सही नहीं हो सकती, किसी तरह मां को इसमें स्नान करने से बचाना होगा। पीछे मुड़ कर देखा तो मां को दूर से पुकारते हुए सुना, "अब अंधेरा हो गया है, आगे मत जाओ, तट के समीप फिसलन होगी, कहीं फिसल न जाना, तुम्हें चोट लग जायेगी।"

सावित्री के मन में आया, वह मां को यहां आने के लिए धिक्कारे, 'अरे तुम ही तो बच्चों की तरह इस अंधेरे में नहाने के लिए मचल उठी थीं,' किंतु उसके मन में कहीं से आवाज़ उठी, 'क्रोध से मनुष्य को दूर रहना चाहिए।' ये विचार आते ही क्रोध टिक न सका। मां का हाथ पकड़ सावित्री वहां से उन्हें सुरक्षित लौटा मंदिर की ओर ले चली। रास्ते में काफ़ी दुकानें एवं रेस्ट्रां आदि दिखलायी पड़े जहां यात्री लोग बड़े चाव से खा-पी रहे थे। मां ने सावित्री को कुछ खा-पी लेने का सुझाव दिया, दोनों एक साथ खायें तब ही आनंद आयेगा। इस विचार से सावित्री ने मां को साथ देने को बाध्य किया। "मां, तुम मंदिर के दर्शन कल नहा-धो कर करना, मैं तुम्हें सुबह ब्रह्ममुहूर्त में ही स्नान करवाने ले आऊंगी, इस समय हम दोनों पेट पूजा एक साथ कर लें और कमरे में जा कर विश्राम करें।"

इस दुर्गम सुदूर यात्रा के साथी की अवहेलना स्नेहमयी मां कैसे कर सकती थी? एक स्वच्छ रेस्ट्रां में दोनों ने बैठ कर दक्षिण भारतीय भोजन ग्रहण किया और बाज़ार से थोड़े से कच्चे चावल ख़रीद कर मां-बेटी अपने कमरे में सकुशल लौट आयीं। मां तप्तकुंड में चावल पका कर खाने की रीति से परिचित हैं।

सुबह मां को उठाने की आवश्यकता नहीं पड़ी। सावित्री उन्हें ब्रह्ममुहूर्त में अलकनंदा के तट की ओर कंपकंपाती हुई ले आयी। तट पर खड़े हो वह हिमानी धारा

को देखने लगी। साहस बटोर कर उसने दृढ़ता से अपना निश्चय बतलाया, "मां, मैं तुम्हें इस बर्फ़ीली धारा में नहाने की अनुमति नहीं दे सकती किंतु तुम्हारी इच्छापूर्ति के लिए मैं स्वयं नहा आती हूं, मैं इसके कुप्रभाव को झेल सकने में समर्थ हूं। क्योंकि मैं जवान हूं, तुम्हारा वृद्ध शरीर इसे नहीं झेल पायेगा। हमारी-आपकी तीर्थयात्रा संभव न हो पायेगी, तुम इसमें नहा कर अवश्य यहीं ढेर हो जाओगी।"

"अगर ऐसा हो जाने की संभावना है तब तुम भी नहीं इस बर्फ़ीली जलधारा में मेरे लिए नहाओगी। कहते हैं, 'शरीर माध्यं हि धर्म साधनं,' जब स्वस्थ शरीर ही नहीं होगा तब तीर्थाटन का कैसे सुख संभव है?"

यह सुन कर सावित्री अवाक् थी। मां के रूढ़िबद्ध धार्मिक विचार इतने अधिक लचीले और समय, स्थान, पात्र के अनुसार बदल सकते थे उसे मालूम न था, न ही उसने कभी उन्हें परख कर देखा था।

अलकनंदा के तट से तप्तकुंड तक आने में मां ने अपना पूरा ध्यान जाप को ज़ोर ज़ोर से करने में लगा लिया, लेकिन सावित्री का पूरा शरीर सर्दी से कांप रहा था मानो उसके साथ गर्म रुधिर जम गया हो, केवल शरीर एक हिम पिंड बन कर रह गया हो! तप्तकुंड में घुसते ही शरीर में जान में जान आ गयी, रुधिर संचार हुआ और स्फूर्ति की लहर मन-प्राण पर छा गयी। ऐसी दो विपरीत अवस्थाओं में जा कर मनुष्य स्वर्ग-नरक की परिकल्पना करने के लिए बाध्य हो जाता है।

बद्रीनाथ के संस्थापक आदि श्री शंकराचार्य जी सुदूर दक्षिण भारत केरल से पैदल यात्रा करके यहां कैसे आ पहुंचे होंगे? कितनी कुशलता और दूरदर्शिता से उन्होंने भारत के चार कोने में चार धाम स्थापित किये! प्रत्येक धाम के मुख्य पुजारी को अन्य दूर राज्य से बुला कर विधिवत पूजा करवाने की जो परंपरा डाली, उसने निस्संदेह भारत को एक सूत्र में बांध दिया है। बद्रीनाथ में मुख्य पुजारी केरल का होता है। सावित्री ने ये सारी सूचनाएं पहले से एकत्रित कर रखी थीं। केरल के नंबूदरि ब्राह्मण बालक को पूजा करवाने के कार्यभार का प्रशिक्षण बचपन से दिया जाता है। मुख्य पुजारी के अस्वस्थ या मर जाने पर उसे इस कार्यभार को सौंपा जाता है। वह पुजारी ब्रह्मचर्य का जीवनपर्यंत पालन करता है और हिमालय में भी नंगे पांव रहता है। उसको धन-संपदा इस प्रदेश के राजा से अधिक मिली होती है, उसकी वेशभूषा आदि इस प्रदेश के राजाओं की तरह होती है, वह सज-धज कर नीचे चलता है किंतु वैदिक शास्त्रों का सतत अध्ययन करते रहने से वह एक महान पंडित और आचार्य बन जाता है। यहां उसे आदर से 'रावल जी' कहते हैं।

स्नान के बाद मंदिर पहुंचने में ठंडक पुनः व्याप्त होने लगी। एक कर्मचारी ने बतलाया कि यहां पूजा विधिवत करवाने के लिए पहले रुपये जमा करवाये जाते हैं, उन्हीं के अनुसार मंदिर में गलीचे पर बैठाने की व्यवस्था की जाती है। जो जितने रुपये देता है, उसके अनुपात में पूजा करवायी जाती है। शेष आम जनता खड़े हो कर दर्शन मुफ़्त

में कर सकती है। सावित्री वहां आम जनता की धक्का-मुक्की देख कर रुपये जमा करने के लिए बाध्य थी। मां की इच्छापूर्ति के लिए पैसों का उसे लालच न था।

बद्रीनाथ मंदिर की कुछ सीढ़ियां शेष मंदिर की तुलना में नयी बनी लग रही थीं जिन्हें संगमरमर के पत्थर से बनवाया गया है। ऊंची सी देहरी पार कर प्रांगण आता है फिर मंदिर का द्वार। पत्थरों के खंभों पर मूर्तियां बनी हुई हैं जिन्हें पांडवों की मूर्तियां बतलाया गया। मां-बेटी जिस समय पहुंचीं, मंदिर में रावल जी के शीघ्र आने की सूचना मिली। वहीं आ कर मूर्ति का स्नान और शृंगार सबके सामने करवायेंगे, यह जान कर सावित्री को विशेष प्रसन्नता हुई।

प्रथानुसार किसी धनी सेठ ने महाभिषेक के लिए रुपये दिये थे जो सबसे आगे आसन पर बैठे हुए थे। शुद्ध घी, दही, शहद, दूध, जल से स्नान करवाते समय रावल जी मंत्रोच्चार करते जा रहे थे। उनका प्रतिभाशाली व्यक्तित्व देख सावित्री को रोमांच हो गया। उसे लगा, मानो साक्षात् कामदेव खड़े हों! ऐसा मनमोहक रूप अन्य किसी पुरुष का उसे आज तक नहीं लगा था। इतने सात्त्विक स्थान पर कामातुर हो जाने के कारण वह पूजा पर अपना ध्यान केंद्रित करने में असफल रही। चित्त में इस बात पर अत्यधिक ग्लानि हुई कि बेचारे रावल जी ब्रह्मचर्य का आजन्म व्रत लिये हुए हैं, वह अधम नारी उन्हें क्यों अपनी ओर आकर्षित कर लेने के लिए लालायित हो उठी है? सावित्री ने देखा, मां का ध्यान इस समय मूर्ति पर था जिस पर केसरयुक्त चंदन का लेप किया जा रहा था। सावित्री ने अपना ध्यान रावल जी से हटाने के लिए मंदिर की जानकारी को पुनः चेतना में लाने में लगाया। साफ़ दिख भी रहा था कि यहां की मूर्ति काफ़ी भव्य पत्थर की बनी है और भगवान पद्मासन पर बैठे हुए मुद्रा में हैं। प्रसिद्ध है कि पौराणिक काल में नारद मुनि ने इस मूर्ति की पूजा-अर्चना की किंतु बौद्धकाल में बौद्धों ने इस मूर्ति को अलकनंदा नदी में फेंक दिया। आठवीं शताब्दी में आदिगुरु शंकराचार्य को ईश्वरीय प्रेरणा हुई, इसीलिए वह दक्षिण भारत से यहां आये, नारद कुंड से इस मूर्ति को निकाल कर तप्तकुंड के पास गरुड़ कोटि गुफा में स्थापित किया। वर्तमान बद्रीनाथ मंदिर को गढ़वाल नरेश ने पंद्रहवीं शताब्दी में बनवाया और इस मंदिर के कलश, जिसे सोने की छतरी कहते हैं, उसे इन्दौर की अहल्याबाई रानी ने अर्पित किया।

पूजा काफ़ी विधि-विधान से संपन्न हो रही थी, कई तरह की आरतियां हुईं, फिर सूखे मेवा का प्रसाद बांटा गया और बारी बारी से उपस्थित सब लोगों ने नतमस्तक हो एक बार अच्छी तरह मूर्ति दर्शन कर बिदा ली। सावित्री का इस क्रियाकलाप को देखने में काफ़ी समय व्यतीत हो गया और उसके मन की कलुषिता समय के अंतराल के साथ धूमिल पड़ गयी, किंतु वह रावल जी के सामने जा कर बैठने या बातचीत कर सकने में असमर्थ रही। मां अन्य यात्रियों के साथ रावल जी के आवास में दर्शन करने गयीं। वहां पर सब ही अतिथियों का गर्म गर्म कॉफ़ी पिला कर सत्कार किया गया। सभी यात्री जल्दी से समीपवर्ती मंदिरों के दर्शन करना चाहते थे। अतएव सावित्री मंदिरों की ओर

मां का हाथ पकड़ चल पड़ी।

दक्षिण भारत की प्रथानुसार यहां भी लक्ष्मी जी मुख्य मंदिर से अलग मंदिर में स्थापित हैं। यहां विष्णु अवतार बद्रीनाथ तपस्या के आसन में हैं, अतः पत्नी से दूर रखे गये हैं, यह जान कर सावित्री को मन ही मन शांति मिली। भगवान की तपस्या भंग हो जाने के डर से पत्नी को दूर रखा जाता है। वह तो साधारण नारी है जिसे अकसर मानसिक रोग के दौरे पड़ जाते हैं और उचित मनोचिकित्सा के बाद केवल उनका शमन हुआ है, कभी पूर्ण उपचार नहीं। उसने बद्रीनाथ में अकेले जा कर माता-पिता के लिए विशेष कर्मकांडी पूजा की।

बद्रीनाथ को छोड़ते समय बस की खिड़की से हिममंडित नीलकंठ पर्वत को निहार सावित्री का मन भर आया, आह! क्या छवि है। इस तिकोने पर्वत पर आच्छादित बर्फ़ पर सूरज की किरणें बिखर अनेक नृत्यांगनाओं की भांति मुद्राएं बनाये थिरक रही हैं। उधर काले पहाड़ के सामने मंदिर का स्वर्ण कलश चमक रहा है, सावित्री यहां आ कर आत्मकेंद्रित होने के कारण इस नैसर्गिक प्राकृतिक अनुपम छवि का आनंद नहीं लूट सकी। बद्रीनाथ जी पुनः अपने दर्शन सुलभ करायें, इस हार्दिक आकांक्षा के साथ सावित्री ने मन ही मन नमन किया। बस में टेपरिकॉर्डर पर 'ओम जय जगदीश हरे···' वाली आरती बज रही थी। कुछ देर में घोषणा हुई कि "केदार घाटी के दृश्य बद्रीनाथ पथ के दृश्यों से काफ़ी भिन्न हैं, यद्यपि एक ही पर्वत क्षेत्र है, ध्यान से देखिएगा। हमारी बस पांडुकेश्वर, गोविंद घाट, विष्णुप्रयाग, जोशी मठ, चमोली, तुंगनाथ, ऊखी मठ होते हुए गौरीकुंड पहुंचेगी। जहां अंधेरा होने लगेगा, वहीं यात्रिगण के लिए विश्राम की व्यवस्था कर दी जायेगी। रात्रि का भोजन करके आप लोग कृपया जल्दी सो जायें, हमें गौरीकुंड पहुंच कर पैदल पहाड़ी क्षेत्र में यात्रा करनी होगी, तब ही केदारनाथ जी के दर्शन मिल सकेंगे। अभी हलका जाड़ा पड़ने लगा है। वर्षा होने की संभावना कम है। कृपया अपने अपने साथ एक छड़ी, गर्म कपड़े, किरमिच के जूते, छाता तथा निजी सामान लेना न भूलें। जो लोग इतनी लंबी पैदल यात्रा करने में असमर्थ हों, उनके लिए घोड़ों और पालकी का प्रबंध है जिन्हें यहां के स्थानीय अधिकारियों की मदद से उचित दर पर तय किया जा सकता है। गौरीकुंड में भी गरम पानी होता है परंतु वहां स्नान करके चलने में देरी हो जायेगी। जो यात्री स्नान करने के इच्छुक हों वे पहले से सोच लें और नहा-धो कर हमारे साथ केदारनाथ की चढ़ाई चढ़ने के लिए क़रीब छह बजे अवश्य उपस्थित रहें।"

यह घोषणा सुन कर यात्रियों में खलबली मच गयी। पहाड़ पर पैदल की यात्रा का आनंद सब ही लूटना चाहते थे। किसी को वास्तविकता का ज्ञान न था। अंत में यह तय हुआ कि सब एक साथ पैदल चलेंगे। केवल वृद्ध लोगों के लिए घोड़ा या पालकी ली जायेगी। यदि कोई रास्ते में बहुत थक गया तब घोड़ा या पालकी का प्रबंध कर लेगा।

बद्रीनाथ से चलने के बाद ज़्यादातर यात्री बस में ही सो गये। रास्ते में किस जगह

उन्हें ठहराया गया उसको जानने की जिज्ञासा न रही, सब ही थके होने के कारण खा-पी कर सो गये। उठने के बाद पैदल सुबह चलने का सबमें मनोबल था। सावित्री की मां ने गौरीकुंड के दूर से ही प्रणाम किये और शांतचित्त से पालकी में बैठ केदारनाथ की यात्रा सुबह छह बजे अन्य यात्रियों के साथ आरंभ की। चुस्त शरीर वाले चार पहाड़ी युवकों ने मां के वृद्ध शरीर को पालकी सहित सरलता से उठा लिया। मां को अपना भार किसी अन्य पर देते समय आत्मग्लानि हुई लेकिन दूसरा कोई चारा न था, फिर उन युवकों की यही आजीविका थी, सावित्री की इस सोच को सुन मां ने संतोष किया।

मां से बिछुड़ अकेले चलने में सावित्री को बड़ा अटपटा लगा, लेकिन अन्य बस के यात्री टोली बनाये तेज़ गति में चढ़ रहे थे, यह देख सावित्री भी उनके साथ हो ली। गौरीकुंड से आरंभ होने वाला यह पैदल पथ काफ़ी ऊबड़-खाबड़ था। गोल-चौकोर पत्थर उभरे हुए पथ पर पड़े हुए थे। ऐसी जगह नीचे देख कर चलने वाला ही बच सकता था, सावित्री ने जल्दी ही महसूस कर लिया कि यहां तेज़ गति से चलना अपने को जल्दी थका देना होगा। अतएव वह प्राकृतिक छटा देखने में और अपने पैर को सावधानी के साथ आगे बढ़ाने में व्यस्त रही। वह लगातार एक हलकी सी स्पीड से आगे बढ़ती गयी जिसके कारण अन्य यात्री आगे निकल गये।

लता, झाड़ियों से लिपटे चारों ओर देवदार के ऊंचे ऊंचे वृक्ष पर्वतश्रृंगों को मानो अंक में लिये हुए थे। यहां मंदाकिनी नदी पर्वतों, शिलाओं पर कभी कूदती सी, कभी विस्तार से फैली हुई सतत पथ के साथ साथ चल रही थी। चारों ओर फैली हरियाली देख प्रातःकाल की ऊषा का अभिनंदन करते हुए सावित्री को कविता की पंक्ति याद आ गयी जिसे उसने बचपन में पढ़ रखा था, *'राग रथी, अविराग पथी, अनुराग विनोद बसेरा, प्रकृति भवनों के सब भवनों से सुन्दर सरस सबेरा।'* निरंतर पानी झर झर बरसते रहने के कारण यहां के पहाड़ों में हरियाली अधिक थी, कई जगह तो पहाड़ों पर काई भी जमी हुई थी। एकाएक जल के प्रपात को गिरता देख सावित्री ठिठक कर खड़ी हो गयी, इतना सुंदर दृश्य उसने पहले कभी न देखा था। बस से बद्रीनाथ के रास्ते में प्रपात गिरते दिखे थे किंतु इतना विशाल प्रपात और उसको खड़े हो कर देखने का सौभाग्य उसे पहली बार मिला था। वह प्राकृतिक संपदा को निहारे या अपने आपको, बहुत सावधानी से चलते हुए भी कभी पैर ऊंचा पड़ता कभी नीचा, शायद इसीलिए छड़ी ले कर चलने के लिए चेतावनी दी गयी थी। थोड़ी देर शरीर के अंजर-पंजर हिलने लगे। चाय की दुकान देख सावित्री ने रुक कर अन्य साथियों की खोज की किंतु वहां कोई नहीं दिखा। वह चट्टान पर बैठ चाय की चुस्की लेने लगी, तब ही पालकी वाले मां के लिए चाय ख़रीद कर लाते हुए दिखे। सावित्री ने आवाज़ दी, "भइया, मां की पालकी कहां रखी है?"

"वह तो उधर बैठी आपका इंतज़ार क़रीबन आधे घंटे से कर रही हैं। बराबर हम रुकते आये हैं। आपको रास्ते में हर व्यक्ति से पूछने का उनका मन कर रहा था, आपसे मिलने को बेचैन हैं, यहां से चलने का नाम ही नहीं लेतीं। इतनी देर में हम रामबाण

पहुंच गये होते। हमारा यह रोज़ का काम है, एक सवारी के पीछे हर चेट्टी पर रुकते जायें तो हो ली कमाई। आप ही समझाइए, बूढ़ी महिला हैं इसीलिए हम आपको बतलाने यहां रुके हुए हैं," कहते हुए पालकी वाला सावित्री की बग़ल में बैठ गया। उसकी धृष्टता से ऊब कर सावित्री खड़ी हो गयी।

"चलो, चल कर मां को चाय पिलायें, फिर देखते हैं क्या प्रबंध किया जाये।"

"हमें पैसे चाय के लिए दें, आप यह चाय ले कर मां जी के पास जायें, तब तक चाय पी कर हम लोग पहुंचते हैं," पालकी वाले युवक ने संयत स्वर में कहा।

सावित्री ने इस अनजाने जंगल में पालकी वालों को मुंह लगाना उचित नहीं समझा, चाय के पैसे दे, वह मां को चाय पिलाने और धीरज देने चली गयी।

सावित्री को आते देख मां के प्राण में प्राण आये। मां की इस अधीरता को देख सावित्री का मन खीज उठा। पालकी वालों पर आया ग़ुस्सा अब बेबस मां पर उतरना स्वाभाविक था, "आपका जी मेरे बिना छोटे बच्चे की तरह घबराने लग जाता है। ये पालकी वाले रुक रुक कर आगे चलने वाले नहीं, आप रास्ते भर मेरी खोजबीन न करें, यही अच्छा होगा कि आप पालकी पर आराम से केदारनाथ पहुंच जायें। वहां जा कर जिस धर्मशाला में हमें ठहराया जा रहा है, वहां मेरा इंतज़ार करें। अब आप किसी आने-जाने वाले या अपने बस के साथी से मेरे बारे में पूछताछ नहीं करेंगी, चुपचाप पालकी में बैठें। यहां के प्राकृतिक सौंदर्य को निहारोगी या अपना जाप करोगी, मेरी चिंता करना छोड़ दोगी, आपको पालकी में बिठा कर मैंने अच्छी सिरदर्दी ले ली है।"

मां चुपचाप रहीं, क्या जवाब देतीं! उन्होंने चेट्टी पर इतनी देर बैठ कर लोगों से पालकी वालों की दुष्टता के कहानी-किस्से सुन लिये थे। अकसर ये पालकी वाले बड़े व्यक्ति को किसी गहरी खाई में जान कर गिरा देते हैं और उसका सामान और रुपये-पैसे लूट लेते हैं, इसीलिए सरकार ने पालकी वालों पर कड़ी निगरानी रखने के लिए कई क़दम उठाये हैं।

मां-बेटी दोनों ने चुप रह कर कुछ देर विश्राम किया। भाग्यवश वहां एक अधेड़ उम्र का व्यक्ति आ कर रुक गया। उसको नमस्ते कर मां ने पूछा, "भाई, आप केदारनाथ पैदल चल कर जा रहे हैं, कहां से आये हैं इस यात्रा पर?"

"बहन, मैं तो व्यापारी हूं, आज मेरी तबियत कुछ ढीली थी इसीलिए गौरीकुंड से इस पथ पर चल पड़ा। अगर केदारनाथ जी बुला रहे हैं तो धीमे धीमे दर्शन करने पहुंच जाऊंगा।"

"यह सुन कर तो बड़ी ख़ुशी हुई कि आपके लिए तीर्थाटन करना इतना अधिक सुलभ काम है। कृपया यह मेरी बेटी पैदल चल रही है, आप उसे यथास्थान तक पहुंचाने की कृपा करें। मैं तो पालकी में बैठी हूं, जिसे उठा कर वाहक बड़ी तेज़ी से पहाड़ों पर चढ़ जाते हैं जैसे हिरन कुलांचें मार रहा हो।"

"आप माता जी, चिंता न करें। यहां के रास्ते में यात्रिगण एक दूसरे की बिन मांगे

मदद करने के लिए तैयार रहते हैं।"

"रक्षा हेतु प्रभु तो हमारे साथ सदैव हैं, उसके भक्त एक दूसरे की मदद नहीं करेंगे तो तीर्थाटन करने का क्या फ़ायदा?"

"आजकल कलियुग है। यहां भक्त कम आते हैं, चोर-उचक्के ज़्यादा। हर चेट्टी पर आपको जो साधु धूनी लगाये मिलेंगे, वे किसी काले धंधे से जुड़े हैं, ऐसी बातों की आप धर्मात्मा लोगों को जानकारी न हो तो अच्छा है।"

सावित्री ने देखा, पालकी वाले चाय पी कर लौट रहे हैं। मां को उठने का इशारा करके वह आगे बढ़ कर बोली, "आप माता जी को केदारनाथ की संगम नामक धर्मशाला में अंदर ले जाइए। वहां पहुंच कर विश्राम करें या दूसरी सवारी के प्रबंध में लग जायें, आपको वापसी में लगना हो तो हम लोग कल सुबह दर्शन के बाद गौरीकुंड के लिए रवाना होंगे, अब रास्ते में मेरा इंतज़ार नहीं करना होगा।"

यह सुन कर पालकी वालों में जो सबसे फुर्तीला दिखने वाला नवजवान था, हंस कर बोला, "मैडम, आपने हमारी मजबूरी समझी, थैंक्स, आशा है, आप इसी प्रकार हमारा ख़याल करोगी। यह सीज़न का समय है, हमें इसी में कमाई करनी है साल भर के लिए। आप चिंता न करें, हम अपनी मां की तरह इन्हें केदारनाथ की धर्मशाला पहुंचा देंगे, सुबह वहीं आपसे मिलेंगे।"

सावित्री उसका उत्साह देख कर आश्वस्त हुई। चाय पिला देने मात्र से उसे इन नवयुवकों का सहयोग मिलने लगा था। हर व्यक्ति की कोई न कोई मजबूरी होती है जिसका ख़याल कर लेने से दूसरों का मन जीत लेना असंभव नहीं होता। कहते हैं, भूखा व्यक्ति कोई भी पाप कर सकता है। भरे पेट में धर्म, मर्यादा आदि का भाव मनुष्य में उपज पाता है। मां को पालकी में बिठा, सावित्री उस अधेड़ उम्र के अनजाने पुरुष के साथ आगे की यात्रा करने में प्रसन्नचित्त थी। उसने मां के विषय में चिंता छोड़, प्राकृतिक सौंदर्य को निहारने का प्रयत्न किया।

पहाड़ी रास्ते में अनेक जलप्रपात गिरते हुए मिले जिनका सौंदर्य निराला था। नीचे पास में ही नदी बह रही थी जिसके कारण दूर दूर तक हरियाली ही हरियाली दिखलायी पड़ रही थी। यहां के पहाड़ बद्रीनाथ की यात्रा जैसे वाले भयानक और दुर्गम दिखलायी नहीं पड़ रहे थे। लेकिन इन पहाड़ों के बड़े बड़े टुकड़े पथ पर बिखरे पड़े थे। उन पर मिट्टी डाल कर समतल करने का प्रयत्न किया गया होगा, लेकिन वर्षा ऋतु समाप्त हो जाने के कारण वह मिट्टी कीचड़ बन गयी थी। ऐसे पथ पर चलना काफ़ी मुश्किल था। सहयात्री की सांस ज़ोर ज़ोर से चलने लगी शायद पथ की कठिनाई से वह थक कर बैठ जाने को उत्सुक था। सावित्री ने एक चपटी शिला पर बैठ उसे कुछ देर विश्राम कर लेने का आग्रह किया, वह चुपचाप लेट गया। सावित्री सोच रही थी कि उसे रामबाण तक पहुंचने में शाम हो जायेगी, मां तो काफ़ी पहले पहुंच जायेंगी और उसकी प्रतीक्षा में चिंता करने लगेंगी।

कुछ देर विश्राम करने के बाद वह पुरुष चिंतित हो उठा, "बेटी, तुम मेरा कब तक साथ दोगी? इस तरह तुम केदारनाथ की यात्रा आज पूरी नहीं कर सकतीं। रामबाण पहुंचते तुम्हें रात हो जायेगी, फिर वहां से पहाड़ों की चढ़ाई बिलकुल सीधी है, बादल आ गये तो अंधेरा जल्दी छा जायेगा और वहां की कड़ाके की ठंड तुम सहन नहीं कर पाओगी।"

सावित्री यह सुन चुप रही। उसे यात्रा की कठिनाई के बारे में जानकारी न थी। मां ने कहा था कि वह इस पुरुष को 'मामा जी' समझ सहयोग दे। अतएव उसके मन में इस समय केवल इस अपरिचित के स्वास्थ्य की चिंता थी। उस पुरुष ने फिर चेतावनी दी, "मेरी मानो और जल्दी जल्दी रामबाण पहुंच जाओ, वहां जा कर पौनी (छोटा घोड़ा या खच्चर) कर लेना। मेरे को दिल की बीमारी है इसलिए सांस फूलने लगी है। ऊपर ऑक्सीजन की कमी बढ़ती जायेगी, तुम अपनी यात्रा को मेरे लिए मत बिगाड़ो।"

सावित्री का स्वभाव संकोची था, फिर किसी अपरिचित से अपनी चिंता के बारे में क्या कह सकती थी? "आपकी तबियत ख़राब हो गयी है अकस्मात्, ऐसे में आपको अकेला छोड़ देने का मैं विचार भी नहीं कर सकती, चलिए, हिम्मत करके उठिए।"

सावित्री ने देखा, वह व्यक्ति भरसक कोशिश करने पर भी पैदल चल सकने में असमर्थ है। सावित्री ने उसे गर्म गर्म चाय पिला देना उचित समझा। अतएव चाय की खोज में वहां से निकल पड़ी। चाय की दुकान पर बातचीत करते सुना कि रामबाण की ऊंचाई दस हज़ार फ़ीट के लगभग है, इसके बाद तीन हज़ार की सीधी ऊंचाई चढ़नी होती है। यह सब सुन कर सावित्री शरीर और मन दोनों से क्लांत हो उठी, लौट कर आयी तो देखा, वह अपरिचित व्यक्ति दूर दूर तक कहीं दिखलायी नहीं दे रहा था, शायद तबियत ख़राब हो जाने के भय से वह नीचे उतर कहीं विश्राम करने लगा है। इस तरह सावित्री भाग्यवश अपने कर्तव्य भार से मुक्त हो सकी और अकेली पैदल यात्रा करने लगी। रामबाण पहुंच कर वह थक कर चकनाचूर थी। उसे लगने लगा, आगे की यात्रा बिलकुल अकेले करना अब असंभव हो गया है। शाम होने को आयी, शीघ्र ही अंधेरा चारों ओर व्याप्त हो जायेगा। उसने साहस करके रामबाण में एक घोड़े वाले से सौदा तय किया और पौनी पर बैठते ही नयी स्फूर्ति उसके शरीर में व्याप्त हो गयी।

रामबाण से आगे बढ़ने पर परिवेश का रूप बदलने लगा। देवदार के ऊंचे ऊंचे वृक्ष अब कदाचित् ही दिखलायी पड़ते थे। छोटे काले पहाड़ों के बीच बीच में झाड़ियां, वनतुलसी आदि के पौधे नज़र आने लगे थे। कहीं कहीं शिलाओं के बीच बर्फ़ पिघलती नज़र आती जिसके पानी से पथ में काफ़ी कीचड़ बिछी नज़र आ रही थी। पौनी वाला उस कीचड़ के बीच से अपना रास्ता सहजता से काटता हुआ तीव्र गति से आगे बढ़ रहा था। सावित्री का मन भय से आक्रांत था, कहीं पौनी का पैर फिसल गया तो वह नीचे किसी खड्ड में पहुंच जायेगी, पौनी वाले को क्या फ़िक्र उसके जीवन की?

सावित्री को विचारमग्न देख घोड़े वाले ने कहा, "मैडम, आप पहली बार घोड़े पर

बैठी हैं इसलिए आप मेरी पौनी पर विश्वास नहीं कर रही हैं। यह रोज़ाना रामबाण से केदारनाथ की यात्रा, सीज़न के समय तो क़रीबन पंद्रह-बीस बार करती है। मैं गर्मियों की छुट्टियों के समय में सुबह सुबह इस पौनी को ले कर निकल पड़ता हूं। जैसी सवारी मिल जाती, उसके अनुसार मेरे ऊपर-नीचे के बराबर चक्कर लगते रहते हैं। हमारे लिए तो पहाड़ों पर, जीने पर चढ़ना-उतरना मामूली सा काम है। आप ज़रा इतना तनके न बैठें, न ही किसी दुर्घटना की चिंता करें।''

यह सुन कर सावित्री का भय कम हो गया, पुनः दुश्चिंताओं में न घिर जाने के लिए उसने बातचीत करना उचित समझा, ''क्या तुम आजकल छुट्टियों में हो? पढ़ने कहां जाते हो?''

''मैं तो रामबाण के पास के गांव का रहने वाला हूं, लेकिन पढ़ाई के लिए मुझे गौरीकुंड जाना पड़ता है। हम रोज़ाना पैदल स्कूल जाते हैं। मैंने हाई स्कूल की परीक्षा दी है। मैडम, आप कहां की रहने वाली हैं?''

सावित्री ने अपने परिचय को टालते हुए उत्तर दिया, ''दिल्ली की रहने वाली हूं, तुम्हारी तरह हमने भी ख़ूब मेहनत से पढ़ाई की है और आजकल सरकारी नौकरी में हूं। तुम पढ़-लिख कर क्या करना चाहोगे?''

''आपकी तरह सरकारी नौकरी मिल जाये तो क्या कहना! मैडम, क्या आप मुझे दिल्ली में नौकरी दिलवा सकती हैं? अपना पता दे दीजिए, मैं दिल्ली आ कर आपसे अवश्य भेंट करूंगा,'' अति उत्साहित हो वह बोला।

सावित्री उसकी निर्भीकता से बढ़े हाथ को कैसे थाम सकती थी? किंतु रूखेपन से किसी की अवहेलना करना उसके स्वभाव में न था। वह उस नौजवान को सुनहरे स्वप्न नहीं दिखलाना चाहती थी। अतएव उसने स्पष्ट शब्दों में सुझाव दिया, ''अभी तो तुम्हारा हाई स्कूल का रिजल्ट आयेगा, उसमें तुम किस श्रेणी में पास होते हो उस पर तुम्हारा भविष्य निर्भर है। यदि तुम पिछड़ी जाति के हो तो तुम्हें कम नंबर आने पर भी नौकरी मिल सकती है, लेकिन शहरों में छोटी-मोटी नौकरी पाने के लिए बीच के लोग आजकल काफ़ी रिश्वत लेते हैं। मुझे स्वयं इन बातों का कोई अनुभव नहीं है, जो सुनने में आया है वही बतला रही हूं। मेरी समझ में हाई स्कूल के बाद भी तुम्हें पढ़ाई जारी रखनी चाहिए, पेट भरने के लिए पैसा तुम सीजन में अपनी इस पौनी से कमा सकते हो। छोटी-मोटी नौकरी की तलाश में तुम शहर में भटक सकते हो।''

''मैडम जी, यह बात आपने ठीक कही। मैंने एक पिक्चर देखी थी, उसमें एक नौजवान नौकरी की तलाश में शहर जा कर भटक गया था, किसी काले धंधे के जाल में फंस गया, उसे अपने घर वालों के सामने आने में शर्म आने लगी, फिर वह लौट कर अपने गांव कभी नहीं आया।''

''तुम तो काफ़ी होशियार लग रहे हो। तुम्हें शहर में कोई गुमराह नहीं कर सकता है, लेकिन अपने गांव में रह कर उच्च शिक्षा प्राप्त करने की हिम्मत रखो, सफलता

अवश्य तुम्हारे जीवन में आयेगी,'' हाथ उठा कर अपना शुभाशीष देते हुए सावित्री ने कहा।

इस बातचीत के बाद बीहड़ पथ की चिंता की ओर सावित्री का ध्यान नहीं गया। यह सावित्री का सुसंयोग था कि उसे पढ़ा-लिखा और कुशल घोड़े वाला मिला। सुहावना संध्याकाल था। एक ओर पहाड़, दूसरी ओर खड्ड। रास्ते में कुछ छुटपुट गांव आये जहां की धीमी रोशनी देख वातावरण की वीरानी कम होती लगने लगी। हज़ारों फ़ीट की ऊंचाई पर पहुंच जाने के कारण हवा में बर्फ़ीली ठंडक व्याप्त थी। सावित्री ने अपने को गर्म शॉल से कान तक ढक लिया, घोड़े वाला उमंग और आशा से भरा सीधी चढ़ाई पर भी काफ़ी द्रुत गति से चढ़ता जा रहा था। रामबाण के बाद से मंदाकिनी नदी का दिखना दुर्लभ हो गया था। दोनों ओर कहीं पहाड़ खड़े हो जाते तो अंधेरा होता नज़र आता, कहीं दूर सूरज डूबते देख हिमाच्छादित पर्वतश्रृंगों पर तरह तरह के रंगों की प्याली लुढ़की हुई सी लगने लगती।

घोड़े वाले ने बतलाया, ''अब बस एक चढ़ाई है फिर समतल भूमि आ जायेगी, आपको दूर से केदारनाथ के मंदिर के आसपास की इमारतें नज़र आने लगेंगी। वहां की रौनक देख आपको लगने लगेगा कि आप किसी देवलोक में पहुंच गयी हैं।''

अंधेरा चारों ओर बढ़ता जा रहा था।

पंद्रह-बीस मिनट बीतते ही समतल केदारनाथ की घाटी में पहुंच गये। वाकई वहां का दृश्य देख लगा कि मानो स्वर्ग में आ गये हों। संगम धर्मशाला मंदिर के बिलकुल नज़दीक थी लेकिन वहां लालटेन की केवल प्रकाश की व्यवस्था थी, सोने के लिए एक बड़ा कमरा स्त्रियों को दिया गया था, एक पुरुष वर्ग को। नहाने-धोने के लिए गर्म पानी आग जला कर मिल सकता था किंतु इस कड़कड़ाती सर्दी में हाथ-पैर धोने तक की हिम्मत किस में थी! सावित्री काफ़ी पूछताछ करती हुई मां के बिस्तरों के पास जब पहुंची तो पता चला, मां आठ बजे की आरती के लिए मंदिर गयी हुई हैं लेकिन हर स्त्री ने उसका स्वागत इस भांति किया मानो वे सब चिंतातुर थीं। इतनी रात हो जाने पर भी सावित्री का अता-पता न था। इस पहाड़ी इलाके में उसे अकेली छोड़ आने के लिए सबमें आत्मग्लानि थी। मां ने हर आने वाले यात्री से सावित्री की पूछताछ करने की कोशिश की किंतु किसी ने भी उसे रास्ते में देखा-सुना न था। सबकी चुप्पी ने मां का हृदय दुश्चिंताओं से भर दिया था, वह बराबर ईश्वर से प्रार्थना करती रही थीं कि भगवान, तुम्हीं उसके रक्षक बन उसे यहां सकुशल पहुंचा कर लाओ। शायद केदारनाथ की रात्रि आरती में उनकी यह विनीत प्रार्थना होगी, नहीं तो वह अकेली मंदिर कदापि न जातीं।

अपनी आत्मग्लानि को धोने के लिए एक स्त्री ने भर्त्सना करते हुए पूछा, ''आप हमें तो दूर दूर तक कहीं दिखलायी नहीं पड़ी थीं, किस रास्ते से आयीं? आपको डर नहीं लगा, हम सबसे बिछुड़ कर अकेले चलने में?''

''मैं आप लोगों के पीछे पीछे धीमी गति से चलने के कारण बिछुड़ गयी, लेकिन

रामबाण पहुंच कर मैंने घोड़ा कर लिया था इसीलिए सकुशल पहुंच गयी हूं। इस समय मां के पास आरती में शामिल होने जा रही हूं,'' कह कर सावित्री चल दी।

मंदिर के प्रांगण में दर्शनार्थियों की पंक्तिबद्ध श्रद्धापूर्वक खड़ी भीड़ को देख सावित्री चकित थी। इन लोगों को इस कड़कड़ाती सर्दी में इस खुले आकाश के नीचे घंटों खड़े रहने में कोई असुविधा नहीं हो रही है? मां भी कहीं न कहीं खड़ी होंगी इसी किसी पंक्ति में, उसके पास जाते ही वह संवेगित हो उठेगी। अच्छा होगा कि शांत भाव से खड़े हो कर आरती सुनी जाये फिर मां को साथ ले कर दर्शन किये जायें। इतनी दूर आ कर केदारनाथ जी के दर्शन बिना तप किये सुलभ नहीं हो सकते। शायद इसी भाव से इतनी ठंड में यह भीड़ घंटों खड़ी रहने में समर्थ है। विशेषकर अपनी मां के इस श्रद्धाभाव से वह नतमस्तक थी। अपने गर्म कपड़ों में लिपटी रहने के बावजूद उसे चीरती ठंड की लहर शरीर को सुन्न करती हुई लगने लगी। नीचे से फ़र्श हिमवत शीतल था। पैर मानो गले जा रहे थे। मंदिर की दिशा से घंटा, नगाड़ा की तेज़ आवाज़ उसे खड़े रहने में सहारा देती लगी। मंदिर के भीतर की प्रतिमा इतनी दूर से दिखलायी नहीं पड़ रही थी, पंक्ति तोड़ कर आगे बढ़ने का प्रश्न ही न था। मौन श्रद्धासुमन चढ़ा कर सावित्री मां की बाट जोहती रही। आरती के बाद शयनदर्शन कर दर्शनार्थियों की भीड़ कम होने लगी।

पूजा समाप्त करा कर रावल जी जा चुके थे, मंदिर के पट बंद कर सहायक पुजारी बाहर आ रहे थे किंतु मां उसे कहीं आती-जाती नहीं दिखलायी दीं। वह धम्म से मूर्तिवत् मंदिर की सीढ़ियों पर बैठ गयी। एकाएक उसे मां की पुकार भरी आवाज़ सुनायी दी, उस ओर देखा तो मां हाथ में लालटेन लिये उसकी खोज-ख़बर करती हुई दिखीं। सावित्री लगभग दौड़ती हुई उनके पास पहुंची तो मां ने हृदय से उसके समस्त शरीर को लगाते हुए गद्गद शब्दों में कहा, ''भगवान को कोटिशः धन्यवाद जो तुम मुझे सकुशल मिल गयीं।''

सावित्री के चेहरे पर जो क्लांति थी, वह मां से लिपट कर दूर हो गयी। मां का चेहरा भी घंटों चिंतित रहने के कारण मलिन हो गया था। मंदिर बंद हो जाने से मां अति दुखित हो उठीं। सावित्री की खोज-ख़बर में वह केदारनाथ जी की आरती और शयन दर्शन नहीं कर पायी थीं, केवल मंदिर के चारों ओर घूम घूम कर सावित्री की बाट जोहती रहीं। तीर्थाटन में अपने ममत्व के भार से मुक्त न होने के कारण उन्होंने यह सुअवसर खो दिया। ख़ैर, पता चला, मंदिर में चार बजे अभिषेक आरंभ होगा, उसमें सम्मिलित होने के लिए तीन बजे उठ कर नहाना-धोना एवं मंदिर के प्रांगण में आ कर पंक्तिबद्ध खड़ा होना होगा। यहां तो तप्तकुंड न था, और बद्रीनाथ से अधिक ठंड का प्रकोप था। कैसे संभव होगा? जो हरि इच्छा होगी, वही होगा, मां ने बेटी को सांत्वना देते हुए शांत हो जाने का आग्रह किया। मां-बेटी धर्मशाला में आ कर अपने बिस्तर ढूंढ़ने लगीं लेकिन उनके गद्दे के पास रखे गर्म कंबल अब तक ग़ायब हो गये थे। अन्य यात्री रजाई-कंबल

ओढ़ कर भी ठंड से ठिठुर रहे थे, किसी ने बिस्तर के पास रखे कंबलों को ले लिया था। सावित्री ने अनुनय-विनय करके धर्मशाला के कर्मचारी से दो मोटी रजाई किराये पर लेने का प्रबंध किया, मां-बेटी उसी में लिपट कर अपने अपने शरीर को गर्मी देती हुई सो गयीं।

सुबह तीन बजे उठ कर मां को गर्म पानी से स्नान करवाना सावित्री ने अपना परम कर्तव्य समझा। सावित्री ने स्वयं नहाने की कोशिश नहीं की, क्योंकि हर श्रद्धालु यात्री इस समय शौचकार्य एवं स्नान करने के लिए आतुर था, स्त्री वर्ग में इसको ले कर तू तू मैं मैं चल रही थी। सुबह सुबह इस कलह कांड को सुन कर सावित्री की वैज्ञानिक बुद्धि में एक विचार आया, तीर्थ स्थान में भी मनुष्य अपने स्वार्थ के लिए दूसरे का अधिकार एवं माल हड़प करने की इच्छा नहीं छोड़ता है। यहां आ कर केवल मंदिर जा कर श्रद्धा से अपने पापों के लिए क्षमा मांगने से अच्छा है कि वह मां को श्री केदारनाथ के दर्शन करवा दे, स्वयं शुद्ध न होने के कारण (स्नान न करने के कारण सावित्री मां के हिसाब से अशुद्ध थी) उसे मंदिर के भीतर आने का अधिकार नहीं रहा है। कहते हैं, 'जाकी रही भावना जैसी प्रभु मूरत देखी तिन तैसी'। क्यों न वह तुलसीदास की इस उक्ति के अनुसार केवल मंदिर के बाहरी भाग से प्रणाम कर ले, श्रद्धाभाव से खड़ी हो नतमस्तक हो जाने पर उसे केदारनाथ के पूर्ण दर्शन अवश्य होंगे।

सावित्री मां को ले कर पहुंची तो रात्रि की तरह मंदिर में भीड़ अधिक जमा न थी। बद्रीनाथ की तरह यहां मंदिर के मुख्य कक्ष में प्रवेश निषिद्ध न था, किंतु स्नान न किया होने के कारण उसने मां को भीतर जा कर पूजा-अर्चना में शामिल होने का आग्रह किया। मां समझीं, सावित्री मासिक धर्म में आ गयी है। अतएव उन्होंने साथ देने के लिए आग्रह नहीं किया। दूर से दिख रहा था कि तिकोने आकार की बनी शिला के शिवलिंग के आसपास कुछ दानवीर संभ्रांत व्यक्ति अभिषेक करवाने को लालायित बैठे थे। यहां भी पैसे दे कर पूजा-अर्चना करवाने की परंपरा थी। मां के नाम से उसने पर्ची कटवा ली थी। पर्ची कटवाते समय उसने मंदिर की जानकारी भी इकट्ठी कर ली थी। केदारनाथ का शिवलिंग पुराणों में वर्णित बारह शिवलिंग में से जिसे ज्योतिर्लिंग कहते हैं, एक है। शिव पुराण की कथा के अनुसार युधिष्ठिर आदि पांडवों ने गोहत्या तथा गुरुहत्या के पाप से मुक्त होने के लिए व्यास जी से कोई उपाय बतलाने की प्रार्थना की। व्यास जी ने बतलाया कि ऐसे जघन्य पापों का प्रायश्चित नहीं किया जा सकता, केवल केदार खंड जा कर इस जघन्य पाप से छुटकारा मिल सकता है। इसलिए पांडव द्रौपदी सहित इस स्थान में केदारनाथ के दर्शन हेतु आये किंतु उस समय शिव ने भैंसे का रूप धारण कर लिया और वहां से भाग गये। पांडवों की अनेक विनती करने पर शिव जी पिछले धड़ से पधारे तथा वहां स्थापित हुए, इसीलिए स्वयंभू मूर्ति का आकार यहां पिछले धड़ की आकृति में है। यहां पांच महीने मंदिर बंद रहता है और बर्फ से ढंका रहता है, फिर भी यहां की ज्योति कभी नहीं बुझती। जब भी पुजारी पट खोल कर मंदिर

के भीतर प्रवेश करता है यहां की अखंड ज्योति को सदैव जलते हुए पाता है। मंदिर के आगे पत्थर का जगमोहन बना है। इसके चारों ओर द्रौपदी सहित पांचों पांडवों की मूर्तियां बनी हुई हैं। इसके अतिरिक्त कई तरह की आश्चर्यनजक कथाएं बतलायी गयी हैं जिन्हें सावित्री का वैज्ञानिक मस्तिष्क स्वीकार करने के लिए तैयार न था, विशेषकर यह कथा कि प्राचीन काल में बद्रीनाथ और केदारनाथ का केवल एक ही पुजारी होता था। वह एक गुप्त मार्ग से रोज़ाना पूजा-अर्चना के लिए आता-जाता था।

मां को पालकी द्वारा नीचे उतरना था, सावित्री को वापस यात्रा पैदल ही करनी थी, अतएव मां को मंदिर में पूजा करते छोड़ वह धर्मशाला में आ कर चलने की तैयारी में जुट गयी। मां की पालकी को उठाने वाले चार पहाड़ी युवक धर्मशाला में प्रतीक्षा करते हुए दिखे। उन्हें अपनी पैदल यात्रा शुरू कर देने की योजना बतला कर सावित्री आश्वस्त हो गयी। मां का आवश्यक सामान बटोर कर उसने पालकी में रख दिया और अपना थैला उठा कर छड़ी के सहारे पगडंडी पकड़ चल पड़ी।

रास्ते में धूप बिखरती हुई दिखी, कुछ फूल आदि भी खिले हुए थे जिनकी महक अत्यंत मनमोहक थी। खुले वातावरण में स्वतंत्र अकेले बढ़ते समय उसे रवीन्द्रनाथ की पंक्ति याद आ गयी, 'एकला चालो रे, एकला चालो रे'। कभी वह 'ओम नमः शिवाय' का जाप करती, कभी 'ओम कृष्णाय नमः'। उसकी मधुर ध्वनि से प्रभावित हो कर एक कृष्णभक्त बड़े विनीत भाव से समीप आ कर बोला, "माता, आप तो बड़ी पढ़ी-लिखी विद्वान महिला लग रही हैं, आपके मुंह से अपने इष्टदेव का नाम सुन कर मेरा मन आपसे बातचीत करने के लिए लालायित हो उठा है। आपको पैदल यात्रा गौरीकुंड तक करनी हो तो मेरे साथ को स्वीकार करें, मुझे पहाड़ों के बीच वाला एक छोटा रास्ता पता है, वहां से आप केवल तीन-चार घंटे में ही अपने गंतव्य स्थान तक सहज पहुंच सकेंगी। वैसे पांच-छह घंटे बराबर चलते रहने से थक जायेंगी या घोड़े द्वारा पहुंचना संभव होगा।"

सावित्री ने यह सुझाव सुन कर छोटा रास्ता पकड़ उस साधु के साथ जाना हितकर समझा, किंतु किसी अनजाने पर एकाएक इतना विश्वास कर लेने में उसे संकोच हुआ, "आप मेरे लिए कष्ट न करें, केवल रास्ता बता दें, पूछते पूछते मैं गौरीकुंड पहुंच जाऊंगी।"

"इसमें कष्ट क्या है? मैं भी गौरीकुंड जा रहा हूं। रास्ते में हरि चर्चा करते रहेंगे, इस तरह हमें शारीरिक थकान कम होगी और मन प्रफुल्लित रहेगा।"

सावित्री मौन रही। साधु ने मौन को स्वीकृति मान उसे पहाड़ी छोटे मार्ग से पथ-प्रदर्शन करने का दायित्व सहज भाव से ले लिया। सावित्री को यह मार्ग पहाड़ों के बीच से जाती हुई पगडंडी सा लगा, शायद भेड़-बकरियां चराने वाले एवं स्थानीय लोगों में पैदल चलने के लिए यह रास्ता बना रखा था। कभी तो उसे झाड़ी पकड़ कर काफ़ी ऊंचाई से कूदना पड़ता तो कभी सीधी ढलान ऐसी होती कि पैर फिसला कि अब फिसला, उस समय वह साधु पहले से उसे चेतावनी दे देता और फिसलता देख उसकी बांहों को

पकड़ संभाल लेता। एक चंचल छोटी लड़की की तरह कूदती-फांदती सावित्री रामबाण क़रीब आधे घंटे में पहुंच गयी। रास्ते में न तो उसे कीचड़ मिली न ही कोई यात्रिगण घोड़े या पैदल यात्रा करते हुए दिखा। रामबाण आते देख कर साधु ने पूछा, "क्या वह यहां से सीधे छोटे रास्ते से जाना पसंद करेगी या सड़क के आम रास्ते से?" सावित्री का शरीर और मन दोनों ही इस कूद-फांद से हलके हो गये थे, अतः उसने रामबाण के बाज़ार में जाने की मनाही कर दी और पगडंडी के रास्ते से चलना मंजूर किया।

साधु ने सावित्री के अंतरमन को पहचान लिया, वह पूरे रास्ते उसे प्रेम से, वृंदावन की अनेक रोचक कथाएं, ब्रजभाषा में सुनाता आया। दुर्गम रास्ते की कठिनाइयां भक्ति भाव से विभोर होने के कारण सावित्री के मन पर अपना असर नहीं डाल पायीं। इसके अतिरिक्त सुबह का सूरज लगातार बढ़ रहा था, उसकी धीरे धीरे बढ़ती गर्मी पा कर शरीर में समायी रात्रि के कड़ाके की सर्दी जो शरीर में व्याप्त हो गयी थी, ग़ायब हो गयी। ऐसा विचित्र अनुभव सावित्री ने पहली बार किया था। वापसी की यात्रा इतनी सुलभ बन गयी कि कब गौरीकुंड आ गया, पता नहीं लग पाया। साधु ने विदा का समय आते देख अत्यंत विनीत हो कर कहा, "माता, मुझे गंगोत्री जाना है, बस आदि के ख़र्चे के लिए मेरे पास बहुत थोड़े पैसे हैं, यदि तुम श्रद्धानुसार मदद कर दो तो मेरी गंगोत्री की यात्रा शीघ्र संभव हो जायेगी, बस गौरीकुंड से मिलती है।"

सावित्री ने साधु की इच्छा पूर्ण कर देने के लिए मन ही मन संकल्प किया, किंतु उसे मौन देख साधु ने दुबारा पैसे मांगने की कोई कोशिश नहीं की। दोनों विचारमग्न चलते रहे। सावित्री इस रमणीक प्राकृतिक स्थान को अपनी बंद और खुली आंखों में एक कैमरे में फ़ोटो की तरह खींच कर सुरक्षित रखना चाह रही थी। सावित्री का ध्यान बस के एक सहयात्री की आवाज़ सुन टूट गया, "आप केदारनाथ से कितने बजे निकल पड़ीं, रास्ते में कहीं आप दिखलायी नहीं दीं? मैं तो सुबह चार बजे निकल पड़ा और घूमता-घामता आ पहुंचा हूं।"

"मैं पहाड़ों के बीच के रास्ते से आ रही हूं, इन्हीं साधु जी ने मुझे सरलता से चंद घंटों में यहां तक पहुंचा दिया है।"

"ओह, इस तरह आप पहुंच गयी हैं, मुझे यह रास्ता नहीं मालूम था, मुझे भी साथ ले लिया होता, कितना अच्छा होता! हम दिल्ली से एकसाथ बस में आये हुए हैं, मेरा परिचय आपसे नहीं हुआ है। मैं एक वकील हूं। हर वर्ष पाणिकर ट्रैवल्स की किसी न किसी यात्रा पर जाता रहता हूं, मुझे मंदिर आदि की वास्तुकला में दिलचस्पी है और यहां के पहाड़ों की शुद्ध हवाखोरी के लिए आता रहता हूं। वैसे मैं नास्तिक हूं, क्योंकि मैं कार्ल मार्क्स का अनुयायी हूं, मुझे पंडित-वंडित लोगों के चक्करों में पड़े भोले यात्रियों को देख दया आती है, पैसा लूटने के लिए इन लोगों के धंधों का जाल यहां बिछा हुआ है," कहते हुए वकील साहब रुक कर साधु को घूरने लगे।

सावित्री को वकील साहब के इस अभद्र व्यवहार से वितृष्णा हो उठी, उत्तेजित हो

वह बोली, "आपके धंधे में तो झूठ को सच बनाना ज़रूरी होता है, फिर सुयोग्य वकील की फीस जुटाने में लोगबाग अपना ज़ेवर, ज़मीन, जायदाद, यहां तक कि घर के बरतन तक बेच देने के लिए मजबूर हो जाते हैं, शायद इसीलिए आपको हर व्यक्ति दूसरों का पैसा छीनता हुआ नज़र आने लगा है। यहां तीर्थाटन मनुष्य जीवनभर की कमाई को श्रद्धापूर्वक अर्पित करने आता है, इसमें मंदिर के मठाधीशों, साधु-संतों का क्या दोष? इन्हें रास्ते चलते ठगों की टोली में ला कर क्यों गिन रहे हैं?"

"मैंने यहां की यात्रा एक नहीं, अनेक बार की है। आप तो पहली बार शायद आयी होंगी, फिर आपकी उम्र भी छोटी है। मेरे बाल पक गये हैं। मैंने जो देखा-सुना है, उसकी तह में जा कर अपना दृष्टिकोण बनाया है। आप केवल अंधविश्वास और भक्ति के नशे में हैं, कोई भी आपको लूट सकता है, ज़रा बच कर रहिए। मैंने कल केदारनाथ में आपकी मां को काफ़ी चिंतित देखा था। माना आप पढ़ी-लिखी कामकाजी महिला हैं, लेकिन आपको सुरक्षा देना और दुनिया के बारे में बतलाना मेरा कर्तव्य था," कह कर वकील साहब तेज़ी से गौरीकुंड की ओर चल दिये।

पीछे रुक कर सावित्री ने पर्स निकाला, कुछ नोट अपनी मुट्‌ठी में बांधे और साधु को उन्हें श्रद्धापूर्वक थमाते हुए कहा, "आप इन वकील साहब की बातों पर ध्यान न दो। आपसे मिल कर मुझे आत्मिक सुख मिला। आपकी रोचक वृंदावन की कथाएं सुनने का आनंद कदाचित् इस जीवन में पुनः मिल पायेगा, मेरी ओर से गंगोत्री जी पहुंच कर नमन करें, आपको अनेक अनेक धन्यवाद, आपकी कृपा से ही मेरी केदारनाथ की वापसी यात्रा इतनी सुंदर और सुगम रही है।"

सावित्री चकित थी कि वकील साहब पीछे मुड़ कर साधु के साथ होते इस वार्तालाप को ध्यान से सुन रहे थे। साधु सावित्री को आशीर्वाद दे कर वहां से तुरंत चल दिया। लेकिन वकील साहब ने सावित्री को आड़े हाथ लिया, "मैं रुक कर ध्यान से देख रहा था कि यह साधु आपसे क्या मांग रहा है, मैंने इसे मांगते तो नहीं सुना, आपको अवश्य मुट्‌ठी से उसे कुछ देते हुए देखा, मैं तो हैरान था कि आप जैसी पढ़ी-लिखी आधुनिक नारी साधु-संतों के चक्कर में आ जाती हैं। न जाने आपने इस साधु को कितने पैसे दिये हैं, इससे अच्छा होता कि आप घोड़े पर बैठ कर आतीं, उस बेचारे ग़रीब को···"

बीच में रोक कर सावित्री बोली, "बस, शांत रहें, आपको दूसरों के हित में अपनी राय देने का अधिकार अवश्य है, लेकिन अपनी राय को दूसरों पर लादने का नहीं। मुझे जो उचित लगता है, क्या आप उसे ठीक मान उसका पालन करना चाहेंगे?"

"बात आपने पते की कही, वकील को अपनी राय मुफ़्त में नहीं देनी चाहिए। मैंने आपको मुफ़्त में सीख दे कर भूल की। चलिए, छोड़ दीजिए इन बातों को। आपकी रक्षा करना मेरा कर्तव्य था, कहीं इस साधु से कोई हानि न पहुंचने पाये।"

यह सुन कर सावित्री शांत हो गयी, "धन्यवाद, सुरक्षा प्रदान करने के लिए, मैं यहां रुक कर अपनी मां की प्रतीक्षा करूंगी, उनकी पालकी अब तक तो पहुंच जानी चाहिए

थी, संभव है, मंदिर में पूजा-पाठ करवाने में उन्हें अधिक समय लग गया हो। पालकी वाले सुबह से इंतज़ार में खड़े थे, मैंने उनसे बातचीत की थी।"

"उन्हें इसके लिए पूरे पैसे मिलेंगे, इसीलिए इंतज़ार करते रहना उनका फ़र्ज़ बनता है। लेकिन यहां के ग़रीब लोग अपने फ़र्ज़ को अच्छी तरह निभाते हैं, यह उनकी कड़ी मेहनत की कमाई है, शहरी लोग इसकी क़द्र नहीं करते, बेशक मंदिर में जा कर हज़ारों रुपयों की भेंट चढ़ा आयें पत्थर की मूर्ति पर।"

सावित्री ने वकील साहब से प्रतिवाद करना उचित नहीं समझा। वह एक उन्नत शिला पर बैठ तीव्र गति से बहती हुई मंदाकिनी नदी की जलधारा को देखने लगी। वकील साहब को नहाने की जल्दी थी, अतः वह तप्तकुंड की ओर मुड़ गये। धीरे धीरे घोड़े और पालकी पर सवार बस के सारे यात्री एकत्र हो गये। सावित्री ने आगे बढ़ कर मां को पालकी से उतारा, उनका मुख क्लांत दिख रहा था। शायद तीन बजे उठ कर, पूजा-पाठ, अर्चना आदि करवाने के बाद भी उन्होंने सावित्री के इंतज़ार में कुछ खाया-पीया न होगा। मां-बेटी ने मिल कर प्रसाद ग्रहण किया और गर्म गर्म चाय पी। इसके बाद सावित्री तप्तकुंड में नहाने निकल गयी। मां को उसने गौरीकुंड की सीढ़ियों के पास सामान सहित बिठा दिया। बस के पूर्व निर्धारित प्रोग्राम के अनुसार शीघ्र ही प्रस्थान करने की घोषणा होने वाली थी, मां को नहाने में देर लगती, केदारनाथ में वैसे वह सुबह गर्म पानी से नहा-धो कर पूजा करवाने गयी थी। सावित्री ने पिछले चौबीस घंटों में एक बार भी स्नान नहीं किया था। अतएव मां ने उसे अकेले नहाने की अनुमति दे दी।

बस चल देने के बाद कहीं रुकना नहीं हुआ, संध्या तक रुद्रप्रयाग पहुंच जाना था जहां रात्रि के शयन एवं भोजन की व्यवस्था की गयी थी। रुद्रप्रयाग पहुंच जाने पर बस यात्री नरभक्षी शेर, चीतों की चर्चा करने लगे। कई यात्रियों ने बाज़ार में जा कर पुस्तक भी ख़रीद लीं। यहां के निरीह पर्वतवासियों को चालाक नरभक्षी जानवरों से मुक्ति दिलाने का अभियान शुरू करवाने का श्रेय एक प्रसिद्ध अंग्रेज़ शिकारी जिम कार्बेट को है। यहां के स्थानीय लोग उसका नाम श्रद्धा से लेते हैं और यात्रियों से कार्बेट पार्क को देखने का आग्रह करने लगते हैं। सावित्री का मन घने जंगल में प्रसिद्ध कार्बेट पार्क देखने के लिए ललक पड़ा किंतु बस की समय सारणी में उसका कोई स्थान न था।

रुद्रप्रयाग में रात्रि भोजन एवं शयन करने के उपरांत भोर के समय से पहले ही बस हरिद्वार की ओर तेज़ गति से बढ़ रही थी, यात्रिगण बस में बैठे बैठे सो रहे थे। रुद्र-प्रयाग छोड़ते समय किसी ने इतने सुबह उठ कर कुछ खाया-पीया न था, सबका आग्रह था कि बस किसी अच्छे रेस्त्रां के सामने रुक कर, जलपान आदि का शीघ्र प्रबंध करवाने के बाद आगे बढ़े। तय हुआ, श्रीनगर रास्ते में पड़ेगा, वहां एक होटल में दक्षिणी भारत के भोजन की अच्छी व्यवस्था है, गर्म गर्म इडली और कॉफ़ी पीने को मिलेगी, तथा वहां शौच आदि की भी व्यवस्था है। यात्रिगण यह घोषणा सुन कर श्रीनगर पहुंचने के लिए अति आतुर हो उठे।

बस श्रीनगर के बस स्टैंड पर रुकने वाली थी, किंतु ड्राइवर ने शहर में छाया सन्नाटा देख घोषणा की कि बस होटल के सामने रोकी जायेगी जिससे यात्रियों को पैदल चलने की असुविधा न हो। होटल के सामने रुकते ही सब यात्री बस से उतर कर रेस्ट्रां की ओर बढ़ने लगे। यह देख मां ने सावित्री से आग्रह किया, "बेटी, तुम उतर कर जो भी गर्म जलपान मिल रहा हो, बंधवा कर ले आओ, मेरा शरीर थकान के कारण अकड़ गया है, नीचे उतरने और चढ़ने में कष्ट होगा, फिर मेरे कारण तुम्हें भी खाने-पीने में देरी हो जायेगी।"

मां को हताश देख सावित्री खिन्न मन से रेस्ट्रां के भीतर घुसी, लेकिन बाहर निकलते सहयात्री ने उसे चेतावनी दी, "यहां तो पूरे शहर में आज हड़ताल है। खाने-पीने की चीज़ें आज न बनने के कारण शायद महंगे दामों पर कल की बनी कुछ खाने-पीने की सूखी चीज़ें और कोल्ड ड्रिंक मिल सकता है।" सावित्री को पता था कि मां के पास जलपान का ऐसा सामान थैले में अवश्य होगा और मां ठंडे पेय पदार्थ को पीना पसंद नहीं करेंगी। बस से उतर जाने के कारण सावित्री ने सोचा, क्यों न इस होटल के अच्छे बाथरूम को देखा जाये, न जाने कितनी दूर बाद बस लघुशंका आदि के लिए रुकने का समय दे। बाथरूम की तलाश काफ़ी देर करने के बाद जा कर पता चला कि नलों में पानी नहीं आ रहा था, हड़ताल हो जाने के कारण इस शहर की बिजली, पानी आदि सबके प्रबंध पर असर पड़ा था। पानी न होने पर भी बाथरूम का प्रयोग कई सहयात्री कर चुके थे। वहां पर व्याप्त दुर्गंध को सावित्री ने भी अपनी नाक बंद कर दूर कर देने की कोशिश की, किंतु उसे लघुशंका पूरी तरह से नहीं हो सकी। हताश हो वह बस में आ कर मां से श्रीनगर जैसी सुंदर घाटी के शहर में आतंक फैलाने वाली हड़ताल की चर्चा करती रही। सुनने में आया था कि किसी ने दिन दहाड़े दो स्थानीय एम.एल.ए. (विधान सभा सदस्य) की हत्या कर दी है। अभी उनकी चिता नहीं जली है इसलिए पूरे शहर में शोक छाया हुआ है। हरिद्वार जाते पथ पर कई पड़ाव दिखलायी पड़े जहां यात्रियों से खचाखच भरी बसें रुक रुक कर उन धार्मिक स्थानों को दिखला रही थीं किंतु यह बस मानो पवन की द्रुत गति से नीचे उतरने के लिए विवश थी। कई यात्रियों ने परेशान हो कर ड्राइवर से अनुरोध किया कि वह बस को इतनी तेज़ी से कृपा करके नहीं चलाये। बस की तेज़ गति में हिलते रहने से उनके शरीर के अंजर-पंजर ढीले हो गये हैं। देर तक कहा-सुनी के बाद बस एक अज्ञात तीर्थस्थल पर रुकी, वहां पर यात्रियों को मंदिर देखने के लिए नदी तट के समीप जाना था। छोटी पहाड़ी की टेढ़ी-मेढ़ी ढलान वाला रास्ता देख कई यात्रियों का उत्साह ठंडा पड़ गया लेकिन सहसा सावित्री को केदारनाथ वाली वापसी यात्रा का ध्यान आ गया। वह फुर्ती से भेड़-बकरियों की तरह पगडंडी से उतरने लगी और नदी तट पर ठंडे जल से हाथ-पांव अच्छी तरह धो कर मां के लिए नदी का पानी लिये लौट आयी। उसके साहस को देख कर कई सहयात्रियों ने उसका अभिनंदन करते हुए कहा, "धन्य हैं आप! मां के लिए इस पूरी यात्रा में जिस

तत्परता से आपने उन्हें हर तीर्थों का दर्शन करवाया है, भविष्य में ईश्वर आपकी हार्दिक इच्छा अवश्य पूरा करेगा।''

सावित्री इस प्रशंसा को सुन कर कान तक लाल हो उठी। मां के लिए उसे जीवन में कुछ करने का अवसर कहां मिल पाया है? मां ही उसके लिए अपना स्नेही आंचल की तरह, छोटे-बड़े कामों को अपना कर्तव्य मान सदैव करती आयी हैं। यह बस वाले यात्री इस सत्य को नहीं जानते, केवल जो वर्तमान में घटित हो रहा है, उसी के अनुसार धारणा बना बैठे हैं। लेकिन इन सबकी शुभकामनाओं और मां के आशीर्वाद से उसे सत्यवान की पत्नी बनने का यदि सौभाग्य प्राप्त हो जाये तो निस्संदेह वह ईश्वर की असीम अनुकंपा का प्रतिफल होगा।

बस हरिद्वार पहुंच कर एक बड़े मैदान में खड़ी कर दी गयी। यात्रियों से बतलाया गया कि वह हरिद्वार में गंगा नहाएं, बाज़ार घूमें, खाये-पीयें, शाम की गंगा जी की आरती में भाग लें और रात्रि का भोजन करने के बाद बस में आ कर अपना आसन जमा कर बैठ जायें, बस कल सुबह होते होते सबको दिल्ली पहुंचा देगी। जो यात्री गुरुद्वारा रोड से पहले उतर जाने के इच्छुक हैं, उन्हें बस वाले को पहले बतला देना होगा। बीच में रुक कर बस उन्हें सामान सहित सड़क पर छोड़ देगी। जो यात्री अपना सामान उठा सकने में असमर्थ हों वह कृपया पाणिकर ट्रैवल्स के दफ़्तर पहुंच कर ही उतरें, वहां ऑटो, टैक्सी आदि मिलना कठिन न होगा।

इस घोषणा को सुन कर ख़ुशी की लहर दौड़ गयी। तीर्थाटन के अंतिम पड़ाव हरिद्वार में बस एक ऐसे स्थान पर रुकी थी जहां से पैदल गंगा जी जाना सरल था। रास्ते में 'सुलभ' द्वारा बनवाये गये शौचालय पड़े। मां को नित्यकर्म से निवृत्त करवा कर सावित्री ने गंगा तट की ओर प्रस्थान किया। मां ने सावित्री को भी नित्यकर्म से निवृत्त होने की सलाह दी, किंतु बराबर बस की सीट पर बैठे रहने के कारण वह क़ब्ज़ का शिकार हो गयी थी। वैसे ही सावित्री को ऐसे शौचालय में निवृत्त होने में कठिनाई होती है जहां कुछ लोग बाहर खड़े इंतज़ार कर रहे हों कि अंदर वाला कब जल्दी से बाहर आये। यह सावित्री के संकोची स्वभाव की अत्यंत गोपनीय बात थी जिसका अहसास केवल उसकी मां को था।

गंगा तट को पार कर मां-बेटी 'हर की पौड़ी' पहुंच गयीं। प्रभात बेला की शीतल पवन ने उनकी थकान अपने वेग द्वारा उड़ा कर रख दी। मां के साथ सावित्री को पतित पावनी गंगा के अंदर डुबकी लगाने में अत्यंत आत्म संतोष हुआ। वह चंचल हो एक छोटी बालिका की तरह मां का हाथ छोड़ आगे बढ़ने को आतुर हो उठी। मां ने कहा, ''तुम आगे निकल गयीं तो मुझे गंगा जी बहा कर ले जायेंगी।''

''मां, तुम्हारे पास मज़बूत लोहे की जंज़ीर है जो खंभे से बंधी है उसे पकड़ लेना, मुझे आगे बढ़ने का मन कर रहा है, मेरे को मत रोको, कब तक तुम मुझे अपनी छोटी सी मुनिया बना कर रखोगी? मैं और तुम आज से स्वतंत्र हैं,'' हंसते हुए सावित्री लहरों

के साथ बढ़ती गयी।

मां ने मज़बूती से सावित्री की साड़ी का सिरा हाथ में ले लिया और मन ही मन गंगा जी से प्रार्थना करने लगीं, 'मां, तुम्हीं अब अपनी बेटी की रक्षा करना, इसका उन्माद तुम्हारी तरह सागर में तिरोहित होने के लिए लालायित है।'

सावित्री को लगने लगा कि उसकी साड़ी पानी के वेग के साथ बराबर खुलती जा रही है। मां के हाथ में उसकी साड़ी की पकड़ यदि सुरक्षा प्रदान करती है तो वह अपनी साड़ी को आज त्याग देगी, केवल पेटीकोट में गंगा स्नान करती हुई निमग्न हो जायेगी। थोड़ा सा गंगाजल पीने के बाद उसने नाक पकड़ कर अकेले एक डुबकी लगायी, जल में बैठते ही उसे लघुशंका होने का आभास हुआ, उसका मन ग्लानि से भर उठा। उसने गंगा जैसी पवित्र नदी को दूषित कर दिया है, भविष्य में क्या वह इस पाप से मुक्त हो सकेगी? आंखों से आंसू की धार बहने लगी जो गंगा जी के पवित्र जल में निमग्न हो अज्ञात में खो गयी। सावित्री का हृदय हाहाकार कर उठा। अकेले में कितनी बार वह रोयी है, किंतु आज मां गंगा के पवित्र जल का स्पर्श पा क्या भविष्य में अपने अज्ञात इस जन्म-जन्मांतर के पाप से मुक्त हो सकेगी? सावित्री ने अपने शरीर को निढाल हो डाल दिया, वह गंगा जी के हृदय स्थल से चिपक कर बिसूर बिसूर कर रोना चाह रही थी।

सावित्री को डूबते देख गंगा तट पर खड़े यात्रियों में खलबली मच गयी। एक चतुर स्त्री ने तीव्र गति से आगे तैर उसका हाथ मज़बूती से पकड़ उसको डूबने से बचा लिया। तट पर खड़ी भीड़ ने मां-बेटी को एक दूसरे का हाथ छोड़ कर, गंगा जी में लोहे के खंभे से आगे निकल नहाने के लिए फटकारा और उस चतुर स्त्री महिला की सूझबूझ की प्रशंसा की, जिसने सावित्री को सहारा दे कर डूबने से बचाया। सावित्री के मन में अपनी इस सहायक महिला के लिए कृतज्ञता के भाव न थे, वह तो डूबने के लिए तत्पर थी, उसे बचाने का इस अपरिचिता को किसने अधिकार दिया? मां की मनःस्थिति इसके बिलकुल विपरीत थी, वह महिला के प्रति हृदय से आभारी थीं। मन से अनेक उठे हार्दिक आशीर्वादों को वाणी से प्रस्फुटित न कर पाने से उनका गला भर आया। अपनी डबडबायी बूढ़ी आंखों से वह उस महिला का मुख बराबर देखती रहीं जब तक कि वह महिला स्थिति को संयत करवा कर गंगा तट से चली न गयी। सावित्री ने सुव्यवस्थित हो अपनी गीली साड़ी पहन ली और मां का हाथ पकड़ गंगा जी की आरती को सुनने में अपना ध्यान लगा लिया। सावित्री को मन ही मन हैरानी हुई कि तट पर खड़ी भीड़ में से किसी यात्री ने उससे इस विषय में पूछताछ नहीं की। शायद यहां की वेगवती धारा में व्यस्त स्नान करते समय उसकी तरह अन्य लोग भी डूबने लग जाते होंगे, जिन्हें आसपास के चतुर स्नानार्थी सहज बचा लेते होंगे। हरिद्वार में नहाने के घाटों में जलधार में मज़बूत लोहे की ज़ंजीरें कदाचित इसीलिए किसी मज़बूत लौह खंभे से बंधी रखी गयी हैं। घबरायी हुई मां को सहज करने के लिए सावित्री ने उचित जलपान करवाना आवश्यक समझा। तट पर मां की पूजा-अर्चना के बाद वह हरिद्वार के बाज़ार में आ

गयी थी।

मां-बेटी ने असली घी में बनी हुई गर्म गर्म पूड़ी और छोले का नाश्ता किया और पेय में गर्म गर्म मलाई वाला शुद्ध दूध लिया। कहते हैं, मृत्युद्वार तक पहुंच कर जीवन की तृष्णा अति वेगवती हो उठती है। सावित्री को अत्यधिक भूख लगने लगी थी, पाव भर गर्म गर्म जलेबी ख़रीद कर मां को उसे खाने का अनुरोध किया, मां ने केवल एक ही ली, शेष सावित्री ने सुस्वाद से ख़त्म कीं।

पूरे दिन भर का समय हरिद्वार में व्यतीत करना था। अतएव मां ने किसी आश्रम में जा कर सत्संग का लाभ उठाने का अनुरोध किया। इतनी अधिक पेट पूजा के बाद अध्यात्म चर्चा सुनते समय सावित्री को नींद आ जायेगी, इस संभावना से मां ने हठ करके समीप दिखे आश्रम में आसन जमा लिया। वहां एक स्वामी जी का भाषण चल रहा था, "जो नहीं रहा उसको ले कर मन को भटकाना, मृग मरीचिका के पीछे घूमने जैसा है। भारतीय दर्शन के अनुसार अतीत से नाता जोड़ कर रखना व्यर्थ है, आगे नयी कर्मभूमि है, उसे मज़बूती से पकड़ो और अपना भविष्य बनाओ।" स्वामी जी भी बोलने में अत्यंत प्रभावशाली थे और सावित्री की मनःस्थिति को डूबते को तिनके की तरह सहारा देने में समर्थ किंतु क्लांत शरीर होने के कारण वह बैठते ही सो गयी। मां ने उसका सिर अपनी गोद में रख लिया। श्रोतागण का ध्यान स्वामी जी की तेजस्वी वाणी की ओर था, लेकिन समीप बैठी स्त्रियों की जिज्ञासा को मां ने बेटी की तबियत ख़राब है कह कर शांत किया।

एकाएक गहरी नींद की झपकी टूट पड़ी। सावित्री इस विचार को सोच कर बेचैन थी कि विगत से कोई नाता नहीं जोड़ कर रखना चाहिए, वह तो मृगतृष्णा है, केवल आगे कर्मभूमि है, क्या वह किसी बुद्ध विहार में आ गयी है? हिंदू शास्त्र के अनुसार जन्म-जन्मांतर के बंधनों से मनुष्य मुक्त नहीं हो पाता, पाप-पुण्य की डोर से बंधी आत्मा चौरासी कोटि योनियों में भटकती रहती है। विगत के कर्मों से, बंधनों से संन्यासी भी नहीं बच पाता। गेरुआ वस्त्र धारण करने मात्र से वह अतीत के संस्कारों से मुक्त नहीं हो जाता। केवल सतत साधना और वैराग्य संस्काररहित करने में सक्षम है। अपने मन के झंझावात से मुक्ति पाने के लिए उसने स्वामी जी के प्रवचनों को सुनने की कोशिश की :

"कहा जाता है कि मनुष्य यदि संसार को छोड़ दे, संन्यास ले कर जंगल चला जाये तो उसका मन शांत हो जाता है, दुख मिट जाता है। मेरे प्यारे गृहस्थवासियो, मुझ जैसे संन्यासी को भोजन के लिए आपके घर भिक्षा लेने आना पड़ता है, पुराना ज़माना नहीं रहा, कोई जल्दी जल्दी अपरिचित को घर में कैसे घुसने दे? द्वार पर से भगा दिया जाता है। लेकिन हमारे कृष्ण भगवान ने संन्यासयोग से ऊपर कर्मयोग और भक्तियोग की महिमा बतलायी है। संसार और संघर्ष के बीच रह कर एक ऐसी मनःस्थिति बनाने की ओर साधना का द्वार खोला है जहां मनुष्य अधीर या अशांत नहीं रह सकता। जब शांति

बनाये रखने का कोई उपाय नहीं रह जाता तो उन्होंने अर्जुन से युद्ध करके शांति लाने का मार्ग बतलाया, स्वयं कृष्ण ने शांति बनाये रखने के लिए मथुरा छोड़ कर द्वारिका में वास किया। भक्तो, कृष्ण भगवान को समझना आसान नहीं है। जरासंध ने अठारह बार मथुरा पर चढ़ाई की, अठारहवीं चढ़ाई में एक विदेशी 'कालयवन' की सहायता से जब मथुरा पर आक्रमण किया, तब कृष्ण ने बलदेव सहित मथुरा को छोड़ दिया। शायद रणभूमि छोड़ देने के मार्ग को अपनाने से युद्ध का रक्तपात रुक जाये। आप तो कृष्ण को केवल कंस को मारने वाला, गोपियों के साथ रासलीला करने वाला या अर्जुन को गीता का उपदेश देने वाला मात्र जानते हैं, लेकिन वास्तव में वह एक अवतारी पुरुष थे। उन जैसा विराट व्यक्तित्व पूरे संसार के इतिहास में नहीं मिल सकता। वह योगी-भोगी दोनों हैं। उन जैसा उत्कृष्ट प्रेमी और निर्मोही अन्य कोई नहीं हो सकता। वे साहित्य, कला, दर्शन के मर्मज्ञ थे। वह तो सर्वगुणसंपन्न महापुरुष जो कभी नहीं मरते, प्रेम से बंधे, परम प्यारे, राजदुलारे नंद नंदन श्याम सुंदर हैं। प्रेम से बोलो, जय जय राम, जय जय श्याम, नंद नन्दन श्री भगवान," तीन बार संवेगित स्वरों में कीर्तन करवाने के बाद स्वामी जी ने कथा समाप्त कर दी।

सभाकक्ष से बाहर जब सावित्री अपनी मां के साथ निकली तब आश्रम के प्रांगण में स्वामी जी खड़े दिखलायी पड़े। श्रद्धा भाव से मां-बेटी ने पुनः नमन किया। स्वामी जी ने आशीर्वाद देते हुए सावित्री से स्नेहपूर्वक पूछा, "आपकी तबियत क्या खराब है? मैं डॉक्टर था, शायद अब भी आपका उपचार कर सकूं, निःसंकोच बोलो, बेटी।"

"आपकी कृपादृष्टि हो गयी, हमारे भाग्य धन्य हैं," मां ने गद्गद स्वर में कहा लेकिन सावित्री मौन रही।

कुछ देर तक स्वामी जी शांत भाव से देखते रहे, उनका स्नेह पा कर सावित्री ने विचलित हो पूछा, "स्वामी जी, क्या पूर्वजन्म का सिद्धांत मानने योग्य है। आप तो डॉक्टर रह चुके हैं, शायद आप मेरी शंका का निवारण कर सकें।"

"कहीं बैठ कर तुम्हारी शंका समाधान करने का प्रयत्न अवश्य करूंगा। चलो, अंदर के कमरे में बैठते हैं," कह कर स्वामी जी तत्परता से डग भरते हुए कमरे के अंदर के भाग में दोनों को बिठा कर किसी आवश्यक कार्यवश कुछ देर के लिए बाहर चले गये।

सावित्री ने देखा, कमरा स्वच्छ और किसी कुशल डॉक्टर के आधुनिक चिकित्सा के परीक्षण कक्ष सा प्रतीत लगा। दीवार पर अवश्य रामकृष्ण परमहंस और विवेकानंद जी की फ़ोटो लगी थी। स्वामी जी ने आते ही बतलाना शुरू कर दिया, "हमारे यहां आत्मा को पथिक की उपमा दी गयी है और शरीर को अतिथिशाला जिसमें एक पथिक आ कर मानो विश्राम कर रहा है। यूनान के प्रसिद्ध दार्शनिक पाइथोगोरस ने लिखा था कि मरने के बाद आत्मा पुनः जगत के किसी भी प्राणी में आ पहुंचती है, जैसे हम लोग कहते हैं, कोई भी पथिक अन्य किसी गेस्ट हाउस या अतिथिशाला में ठहर सकता है। भगवान कृष्ण ने गीता में कहा है, एक पुराने वस्त्र को छोड़ कर नये वस्त्र को जैसे धारण किया

जाता है, आत्मा वैसे ही एक शरीर को छोड़ कर दूसरे को धारण कर लेती है।''

सावित्री ने जिज्ञासा में पूछा, ''तो आप वैज्ञानिक हो कर भी क्या पूर्वजन्म को मानते हैं?''

स्वामी जी ने शांत स्वर में जवाब दिया, ''क्या मैं वैज्ञानिक हो जाने से हिंदू नहीं रहा? बुद्ध के अनुयायी भी इस जन्म से परे, अनेक पूर्वजन्मों के बाद प्राप्त निर्वाण आदि को मानते हैं, समस्त हिंदू जाति मानती है, आजकल तो विदेशों में इस पर अनुसंधान हो रहा है। ईसाइयों के ग्रंथ बाइबल तक में पूर्वजन्म की बातें लिखी हैं। ईसामसीह ने यहां तक उपदेश दिया है कि पूर्वजन्म के अस्तित्व को माने बिना मनुष्य स्वर्ग पाने का अधिकारी नहीं बन सकता। आधुनिक उपकरणों से परा-मनोविज्ञान की अनुसंधान क्रियाओं में कई लोगों ने अपने पूर्वजन्म की कथा को विस्तार से लिखवाया और जब वैज्ञानिकों ने उन घटनाओं की सत्यता के बारे में खोजबीन की, तो वह टेप की हुई स्मृतियां सत्य घटनाएं निकलीं। अनेक वैज्ञानिकों ने पूर्वजन्म के विषय को प्रतिपादित करते हुए ग्रंथ लिखे हैं। यदि आप स्वयं पढ़ना चाहें तो उनकी लिस्ट बनवा कर मैं आपके घर के पते पर भेज सकता हूं। केवल अपनी आत्मा को मैं ब्रह्मलीन करना चाहूंगा इसीलिए यहां आ कर साधनारत हूं।'' कुछ देर चुपचाप रह कर स्वामी जी बोले, ''क्योंकि मैं विज्ञान का छात्र रहा हूं, मुझे आत्मा-परमात्मा विषय में रुचि ब्रह्मलीन होने के अतिरिक्त उसकी जड़ को जान लेने की ओर बढ़ती जाती है। कई बार पढ़ा है और शायद आपने भी सुना होगा कि संसार में चौंसठ लाख योनियां हैं और मनुष्य कर्मानुसार इन्हीं में घूम कर फिर जन्म लेता रहता है। मैं सोचता हूं कि शरीर के अन्य तत्त्वों की तरह क्या आत्मा का भी कोई तत्त्व होता है? पता नहीं मुझे इस तत्त्व के बारे में किंतु इतना विश्वास हो गया है कि कर्मों का प्रभाव शरीर पर पड़ता है और जैसा घट या शरीर के कर्म होते हैं, वैसी ही योनि में जन्म होता है। परोक्ष रूप से जीव के कर्मों का प्रभाव आत्मा पर पड़ता है जिसे गीता में भोक्ता, साक्षी, अनुमंता आदि रूप में बतलाया गया है, लेकिन आत्मा उन तीनों गुणों से दूर है जिन्हें सत्त्व, रजस, तमस कहा गया और जिनका प्रभाव हमारे शरीर पर पड़ता रहता है। जब जीव अपने शुद्ध आत्मा रूप का ज्ञान कर लेता है, सूक्ष्म से अतिसूक्ष्म हुई आत्मा शरीर की ऊर्जा ख़त्म हो जाने पर ब्रह्मलीन हो जाती है।

''गीता में स्पष्ट लिखा हुआ है : *'मां च योऽव्यभिचारेण भक्तियोगेन सेवते, स गुणान्समतीत्यैतान्ब्रह्मभूयाय कल्पते'* ॥26॥ (श्रीमद्भागवतगीता चतुर्दशोऽध्यायः)। पूर्ण आयु पर मरने पर आत्मा नहीं भटकती, आत्महत्या करने पर आत्मा भटकती रहती है। कहते हैं, अकाल मृत्यु होने पर भी आत्मा भटकती है। यदि हमें शरीर में प्राण फूंक देना नहीं आता तब प्राण लेने का कहां से अधिकार है?''

यह सुन कर सावित्री स्वामी जी के चरण पकड़ कर रोने लगी। अवरुद्ध कंठ से क्षमा मांगती बोली, ''मैंने आज गंगा जी में डूब जाने की कोशिश की है, आत्महत्या

करना पाप है, मुझसे जघन्य अपराध हुआ। स्वामी जी, लघुशंका कर गंगा के जल को मैंने दूषित कर दिया है।"

अपने चरणों से प्रेमपूर्वक सावित्री को ऊपर उठाते हुए स्वामी जी बोले, "मां गंगा को कौन नहीं दूषित कर रहा इस वैज्ञानिक युग में? तुमसे अनायास आज जो अपराध हुआ, उसके लिए हृदय से क्षमा मांग लेना पर्याप्त है। वह तो पतित पावनी गंगा मैया है, मरने के बाद उन्हीं की गोद में जाना है," कह कर स्वामी जी हाथ जोड़ कर खड़े हो गये, यह इशारा था कि उनको कहीं जाने की जल्दी है।

वहां से विदा ले कर मां-बेटी प्रसन्नचित्त बाज़ार की ओर चल पड़ीं। कामकाजी महिला होने के कारण सावित्री को पहले कभी इतना समय नहीं मिला था कि वह बाज़ार में आ कर निरर्थक घूमे। हरिद्वार की तंग गलियों की दुकानों में अनेक प्रकार के घरेलू सामान, प्रसाधन, ज़ेवर, साड़ियां व कपड़ों से ले कर धार्मिक पुस्तकें, देवी-देवताओं की फ़ोटो, पूजा का समस्त सामान उपलब्ध होता है। साड़ियां सावित्री ने इतनी सस्ती बिकती कहीं नहीं देखी थीं, इसलिए अपने कामकाजी जीवन में प्रयोग में आने वाली कई साड़ियों का चयन किया। उनका ढेर बना कर उसने मां से पूछा, "आपके लायक़ तो शायद ही कोई साड़ी इसमें हो, आप अपने लिए दो साड़ी पसंद कर चुन लो, फिर दुकानदार से इकट्ठी साड़ियों की कीमत के बारे में मोल-तोल करते हैं।"

"तुम्हें बाहर जाने के लिए कई साड़ियां चाहिए, मेरे लिए काफ़ी सफ़ेद धोतियां घर में हैं, वैसे भी इस यात्रा में तुम्हारा बेहद खुला हाथ रहा है, मेरे लिए यहां से साड़ी मत ख़रीदो," मां ने तटस्थ होते हुए जवाब दिया।

"यदि एक भी अपने लिए नहीं ख़रीदोगी तो मैं इतनी साड़ियां कैसे ख़रीद सकती हूं?" मां को मनाने के लिए सावित्री ने कहा।

"तुम नहीं मानती हो तो मेरी भावज के लिए एक साड़ी ख़रीद लो, इतने दिनों बाद जा रही हूं, ख़ाली हाथ···"

"उनके लिए तो मेरी साड़ियों में से जो आपको पसंद आ जाये, ले लीजिएगा। लेकिन फिर तो मामा और उनके बच्चों के लिए भी कुछ ख़रीदना होगा। वैसे कई और हमारे रिश्तेदार इलाहाबाद में हैं जो आपसे भेंट करने आयेंगे, फिर तो उपहार में कुछ न कुछ सबके लिए देना होगा?" सावित्री ने मां से पूछा, "मैंने तुम्हें केवल अपने लिए ख़रीदने की सलाह इसीलिए दी थी, नाते-रिश्तेदारों में सबको जगह जगह के प्रसाद का वितरण किया जा सकता है। हरिद्वार के बाज़ार में काफ़ी सारी प्रसाद की चीज़ें उपलब्ध हैं, उन्हीं को मिला कर प्रसाद बढ़ाया जा सकता है।"

मां-बेटी की बातें सुन कर चतुर दुकानदार ने कहा, "अरे मां जी, क्यों नहीं आप प्रसाद के साथ एक एक वस्त्र लगा कर रिश्तेदारों को भेंट कीजिए? यहां पर भारत के हर कोने से यात्री आ कर ख़रीदारी करके जाता है। इतनी सस्ती चीज़ें आपको अन्यत्र नहीं मिलेंगी, दुकानदार केवल पैसा कमाने के लिए यहां हरिद्वार में नहीं बैठे हैं, हमारा

ध्येय यात्रियों की सेवा करना है। आपने किसी अन्य शहर में शुद्ध घी से बनायी गयी मिठाई, पूड़ी, चाट आदि इतनी सस्ती बिकती देखी हैं? बिजली के सामान से ले कर यहां पापड़, अचार, मसाले सब आपको शुद्ध और उचित क़ीमत पर मिलेंगे।''

दुकानदार से सावित्री ने अपनी पसंद की हुई साड़ियों की कीमत पूछ, इस चर्चा को समाप्त करना चाहा, लेकिन बतरस का आनंद लेते हुए दुकानदार ने मां को समझाया, ''मां जी, आपको अपने लिए एक सफ़ेद साड़ी ज़रूर ख़रीदनी पड़ेगी। वह साड़ी जब भी पहनेंगी, हरिद्वार की याद आपको अवश्य आयेगी,'' कह कर दुकानदार ने कई तरह की सफ़ेद साड़ियों का ढेर खोल कर सामने रख दिया, लेकिन जब मां की पसंद की कोई भी साड़ी नहीं निकली तब दुकानदार ने नौकर को गोदाम से नये माल की गठरी लाने की आज्ञा दी।

नया माल कलकत्ता से आया था जिसमें काफ़ी महंगी सूती साड़ियां थीं। अतएव मां ने खिन्नता से कहा, ''मेरी पसंद की साड़ी इतनी जल्दी नहीं मिल पाती है, आप कृपया मेरी बेटी की पसंद की हुई साड़ियों की क़ीमत बतलाएं।''

''आपको ख़ाली हाथ अपनी दुकान से नहीं जाने दूंगा। बहन जी तो किसी बड़ी दुकान में एक बार अपनी पसंद की साड़ियां मिल जाने पर फिर पैसों की चिंता नहीं करती होंगी, आप क्यों पैसों की चिंता कर रही हैं? मैं अपनी ख़रीद क़ीमत पर आपकी पसंद की साड़ी बेच दूंगा, आप पसंद तो कीजिए,'' कह कर दुकानदार ने कुछ कम क़ीमत वाली मिल की बनायी हुई सफ़ेद साड़ियों को खोल कर दिखाना शुरू किया।

सावित्री दुकानदार की वाक्‌पटुता से अधिक उसके धैर्य से प्रभावित हुई। मां की पसंद की चीज़ें ख़रीदने में उसे कई दुकानों की धूल खानी पड़ती थी, बड़ी मुश्किल से वह मां की पसंद की चीज़ का चयन कर पाती थी। कई बार तो दोनों में चकचक, मैं मैं-तू तू, होने लगती थी। आज सावित्री के पास समय का अभाव न था और उसके मन में स्वामी जी के दर्शन के बाद से शांति थी।

मां-बेटी अपनी अपनी पसंद की साड़ियां ख़रीद कर दुकानदार को रुपये दे कर निवृत्त हुईं, तब तक दोपहर के तीन बज चुके थे। भोजन का समय निकल चुका था लेकिन सावित्री ने अनुरोध किया कि इस समय खाना नहीं खायेंगे तो रात्रि का भोजन बस में बैठ कर यात्रा के कारण अल्पाहार होगा। अतएव दिन का पूरा खाना खाना उचित रहेगा। बाज़ार में एक नहीं, अनेक दुकानें थीं जहां कच्ची रसोई का भोजन उपलब्ध था। वहां बैठने की सुविधा एवं स्वच्छता को देख दोनों ने गर्म गर्म चपाती एवं कई तरह की सब्ज़ियां, दाल फ्राई और भात से सजी दो थाली का ऑर्डर दिया। दुकानदार ने अनुरोध किया कि यहां के दही की लस्सी अवश्य पीयें। शुद्ध दूध, दही की चीज़ें हरिद्वार की विशेषता है, जो कि पीने के बाद दोनों को सत्य लगा।

गंगा तट पर शाम को की जाने वाली आरती का आनंद शब्दों में व्यक्त करना असंभव है। सावित्री और मां की मनःस्थिति का अनुमान पाठकगण सहज लगा सकते

हैं। गंगा के विभिन्न रूपों की भारतीय मानस पर अमिट छाप पड़ी हुई है, किंतु हिमालय पर्वत के चरण पखारती हुई हरिद्वार की गंगा की छवि निराली है। आज उनकी विशेष कृपा दोनों मां-बेटी की चेतना में केंद्रीभूत हो उठी। गंगा मैया यमराज के द्वार से सावित्री को लौटा लायीं। अतएव शाम को कृतज्ञता से आविर्भूत हो कर जब पत्ते की बनी तिकोनी नौका में फूल, धूप और दीपक संजो कर सब श्रद्धालु यात्रियों के साथ गंगा जी की वंदना की तो उन्हें चहुं दिशाओं में गंगा का गुणगान करती हुई घंटियां बजती हुई प्रतीत होने लगीं। जलधारा में दीपक की लौ प्रकाश बिखेरती हुई आगे बढ़ती जाती, जो आशा की लौ जैसी मां-बेटी के जीवन में जगमगाने लगी। आरती ख़त्म होते होते अंधेरा चहुंओर व्याप्त होने लगा।

तीर्थाटन से विदा लेने का समय आते देख बस के सब ही यात्री शोकाकुल हो उठे। एक दूसरे से पत्र व्यवहार द्वारा संपर्क रखने के लिए एक दूसरे का पता नोट करने लगे, केवल सावित्री ही अन्य यात्रियों जैसा समाजीकरण न कर पाने के कारण किसी को अपना पता बताने और दूसरों के पते को नोट न कर सकी। उसने सुखद संगति के लिए यात्रियों को मन ही मन धन्यवाद दिया और बस की सीट पर आसन जमा किसी गंभीर चिंतन में डूब गयी। क़रीब दस बजे गंगा तट को छोड़ बस हरिद्वार से रात भर चलने के कार्यक्रम की घोषणा कर चल दी। कुछ दूर तेज़ी से चलने के बाद एकाएक एक गांव के पास आ कर रुक गयी। दो घंटे वहां बस रुकी रही क्योंकि रात्रि का भोजन ड्राइवर को सड़क के ढाबे में करना था। सबको आश्चर्य हो रहा था कि ड्राइवर ने हरिद्वार के किसी अच्छे रेस्ट्रां को छोड़ कर इस वीरान जगह में खाना खाना क्यों पसंद किया?

पुरुष वर्ग में कानाफूसी होने लगी। उनकी हंसी-मज़ाक़ की जो बातें आधी अंग्रेज़ी-हिंदी में की जा रही थीं, वे सावित्री के कानों तक आने लगीं। यात्री अभी तक अत्यधिक धार्मिक प्रवृत्ति के लग रहे थे, सहसा उनमें से कुछ मदिरा, मांस, मछली और नारी तन के कामुक लोभी पुरुष बन बैठे थे। सावित्री ने मां को बेसुध सोता देख ठंडी सांस ली। तीर्थाटन के समय ऐसे पुरुषों की संगति मिली होती तो मां अवश्य उसे ले कर इस बस से उतर पड़तीं, अब तो दिल्ली पहुंच कर ही ऐसी कुसंगत से पीछा छूटेगा। अच्छा किया, उसने किसी का पता नहीं पूछा, न ही अपना ऐसे पुरुषों को दिया। ऐसे कामुक व्यक्तियों को यदि पता लग जाता कि वह अविवाहित है तब उनकी गिद्ध दृष्टि से बचना असंभव हो जाता, विशेषकर दिल्ली के गेस्ट हाउस में ठहरे उसे सत्यवान के साथ मिलते-जुलते देख़ कर।

चित्त में अनायास परपुरुष की लोलुपता का विचार आते ही सावित्री का मन वितृष्णा से भर गया। उसे आज तक सत्यवान जैसे पुरुषों से अत्यधिक घृणा थी, सदैव वह अपने कौमार्य की रक्षा करने के लिए सत्यवान को प्रताड़ित करती और इसके लिए मज़ाक का विषय बन अंदर की घृणा को पीती रही है।

'तुम्हारी अपनी मां के साथ जुड़ी अंबिकल कॉर्ड (शिशु की नाभि से जुड़ी नली)

अभी तक नहीं कटी है, सवि! तुम्हें पता नहीं, दुनिया कहां से कहां पहुंच चुकी है। हम से ज़्यादा होशियार नवजवान आज के छात्र-छात्राएं हैं। वे लोग शादी-वादी के बंधन को नहीं मानते, यहां हम दोनों हैं कि एक दूसरे के लिए इंतज़ार करते करते बूढ़े हो चले हैं मानो अभी तक मैं तुम्हें छू लेने के लिए साहस नहीं बटोर पा रहा हूं।' सत्यवान के ये विचार कौंधते ही सावित्री ने हंस कर स्वयं से पूछा, 'क्या विवाहित और तीन बच्चों का बाप होते हुए भी सत्यवान कामपुरुष है?' सावित्री ने वैज्ञानिक पुस्तकों में इंपोटेंसी (नपुंसकता) और फ्रिजिडिडी (नारी की संभोग के प्रति निर्जीवता) के बारे में पढ़ रखा है किंतु संभोग क्रिया के अनुभव की शून्यता के कारण वह इस विषय से अनभिज्ञ रही है। लज्जावश वह सत्यवान के आगे पूछने के लिए अपना मुंह भी नहीं खोल सकती। ऐसे विषयों पर उसने अपनी प्रिय सहेली मिसेज़ दास से भी चर्चा करने की हिम्मत नहीं की। लैब में आये अमेरिकन वैज्ञानिकों को अकसर 'फक' शब्द कहते अवश्य सुना है किंतु उसके अर्थ को शब्दकोश में खोल कर नहीं देखा क्योंकि संदर्भ से पता लगाया था कि वह कोई अभद्र गाली है जो नयी पीढ़ी के युवा स्त्री-पुरुष अकसर प्रयोग में ले आते हैं, जैसे वह 'शिट' शब्द का भी प्रयोग बात बात में करते रहते हैं। सावित्री की चेतना इस कुसंगत में कीचड़ के कमल की तरह ऊपर उठी रही। अंतर्मुखी, संकोची स्वभाव और अत्यधिक अकेली रहने के कारण सावित्री एक छोटी बच्ची की तरह सरल भोली और ऐसी सांसारिक बातों से अनभिज्ञ थी। कुशल वैज्ञानिक होने के बाद सेक्स (काम वासना) संबंधी बातों का ज्ञान उसके लिए एक शब्दावली की तरह रहा है। इस ज्ञान के पीछे उसकी बुद्धि और मन में ज़मीन-आसमान का फ़र्क़ रहा है, बुद्धि से वह ज्ञान को निर्णय द्वारा अलग रखती आयी है। उसका चित्त स्वच्छता, पवित्रता, निष्ठा, त्याग, बलिदान, श्रद्धा आदि की भावनाओं से ओत-प्रोत रहना चाहता है। मानसिक रोग होने के बाद से कभी कभी क्रोध और काम की भावनाएं उसके अवचेतन मन से उभर कर चेतन में आने लगीं, किंतु मिसेज़ दास और कदाचित् मां के अतिरिक्त अन्य किसी के आगे उन्हें प्रकट नहीं कर सकी थी। सत्यवान सच्चा प्रेमी बन एवं कामुक अनुभवी पुरुष होते हुए भी सावित्री की इस विशुद्ध अनोखी भावनात्मक कगार को तोड़ देने में असमर्थ रहा है। सहज ही ग्लानि, दोष आदि की भावनाओं से प्रताड़ित हो जाने के कारण सावित्री का मन कामवासना की लपटों से अछूता रहा है। इस आग से खेल लेने का कौतूहल तीर्थाटन के बाद एकाएक क्यों आज जाग्रत हो उठा, सावित्री समझ न सकी। शायद पाठकगण इसका अनुमान लगा लेने में सक्षम हों, लेकिन यह विचार-विमर्श आगे की कथा पढ़ लेने के बाद।

मां को प्रयागराज गाड़ी में बिठा देने के बाद सावित्री को गेस्ट हाउस में आ कर वह कमरा अपने घर के कमरे की तरह सुरक्षा प्रदान करने वाला लगा। वह स्वच्छ बाथरूम में गर्म पानी से मल मल कर नहायी। यात्रा की धूल की परतें उतारते समय उसे अपने सुकोमल शरीर से अनायास प्रेम हो उठा। विवाह-उत्सव आदि में कन्या को

हल्दी-चंदन का उबटन जैसे लगाया जाता है वैसी उमंग से मन झूम उठा। नहा-धो कर उसने शीशे के सामने खड़ी हो कर जब अपनी छवि को निंहारा तब मन पर निराशा छा गयी, आंखों के नीचे काली स्याही सी पुती नज़र आ रही थी। सारे खुले शरीर की खाल धूप की किरणों से झुलस कर काली पड़ गयी थी। शरीर में अत्यधिक थकान के कारण तकिये पर सिर रखते ही उसे गहरी नींद आ गयी। गेस्ट हाउस के किसी कर्मचारी ने उसे उठाने की कोशिश नहीं की। भूखी-प्यासी वह कितने घंटे सोती रही, इसका उसे पता नहीं लगा, ऐसी नींद तो उसे गत कई सालों से नहीं आयी थी।

पूरे चौबीस घंटे प्रतीक्षा करने के बाद सत्यवान ने गेस्ट हाउस के कर्मचारी को टेलीफ़ोन पर आज्ञा दी कि वह कमरे के बाहर जा कर दस्तक दे। क्या कारण है, वहां ठहरी मेम साहब अपना टेलीफ़ोन नहीं उठा रही हैं? कर्मचारी के दरवाज़ा ज़ोर से खटखटाने के उपरांत सावित्री उठी और हड़बड़ा कर दरवाज़ा खोल दिया। कर्मचारी उसे नींद में अस्त-व्यस्त देख कर बोला, "सॉरी मैडम, आपको डिस्टर्ब किया। आपका फ़ोन आया है। रूम में क्या घंटी ख़राब है, आपने रिसीवर नहीं उठाया? कोई साहब आपसे बात करने के लिए लाइन पर हैं।"

सावित्री ने रूम का रिसीवर उठाया, सत्यवान ने आतुर स्वर में पूछा, "हलो, मिस सावित्री बोल रही हैं क्या?"

"हां, मैं हूं। आप कितनी देर से टेलीफ़ोन कर रहे थे? मैं सो गयी थी, क्षमा करें।"

"कब आयीं? मैं तुम्हारी प्रतीक्षा में कल से हूं। तुम्हारा तो कल आने का प्रोग्राम था।"

"ओह! क्या लेट हो गयी? मैं दस तारीख को यहां पहुंच गयी थी, नहा-धो कर सो गयी थी।"

"ओह! चौबीस घंटे बिना खाये-पीये सोते रहने का रिकॉर्ड क़ायम किया है आपने," हंस कर सत्यवान ने कहा, "अच्छा, मैं आ रहा हूं। टेलीफ़ोन करने की कल भी कोशिश की, आज मिलने पर बात होगी, अब टेलीफ़ोन रख रहा हूं।"

सावित्री ने उठ कर नित्यकर्म से निवृत्त हो कमरे में ही चाय-नाश्ता मंगवा लेना उचित समझा। वह चाय पी रही थी तब ही सत्यवान ने दस्तक दी। दरवाज़ा खुलते ही स्वच्छ हवा के झोंके जैसे सत्यवान ने उसके शरीर को पुलकायमान कर दिया। अपने को सत्यवान के प्रश्नों की बौछारों से बचाने के लिए सावित्री ने मौन हो कर अपनी पराजय स्वीकार करना हितकर समझा। सत्यवान चिंतित हो पूछ उठा, "क्या बात है, तुम्हारी तबियत ठीक नहीं क्या? मैं तुम्हें कैसे बतलाऊं, झंझटों के कारण चाह कर भी मैं तुमसे संपर्क स्थापित नहीं कर सकता हूं। तुम्हारे टेलीफ़ोन को न उठाने से मेरे मन में यही ख़याल आता रहा है कि शायद तुमने उस दिन के लिए मुझे माफ़ नहीं किया है। मैंने तुमसे वायदा किया था कि मैं शाम को मिलने आऊंगा किंतु घर में बाहर जाने की अनुमति नहीं मिली। मैं तुम्हारे साथ पूरी दोपहर रह गया था, इतनी देर आजकल मैं

बाहर कहीं नहीं जाता हूं, नौकरी भी नहीं है इसीलिए उमा को शक हो गया कि मैं किसी चक्कर में हूं···बस फिर क्या, उसने मुझे बाहर निकलने नहीं दिया। घर से टेलीफ़ोन द्वारा मैं तुम्हें बतला भी नहीं सकता था कि मैं आ नहीं पाऊंगा, मेरा इंतज़ार मत करती रहना···जानती हो, उमा ने एक्सटेंशन लगवा रखा है। जब भी मैं किसी से बात करता हूं। इसीलिए मैं तुम्हें बाहर से फोन करता हूं,'' कह कर सत्यवान सावित्री की आंखों में झांकने लगा। उसे लगा, सावित्री भी उस पर विश्वास नहीं कर रही है। वह अनमने मन से केवल उसकी सफ़ाई सुन रही है। खीज कर वह सावित्री के कंधे हिला कर झकझोरने लगा, ''सवि, क्या हुआ है तुम्हें? तुम तो मूर्ति की तरह देख रही हो?''

''क्या मैं वाक़ई चौबीस घंटे बिना खाये-पीये सोती रही हूं, यह सोच कर हैरान हूं।''

''इसमें हैरानी की क्या बात है? तुम लोग इतनी लंबी यात्रा बस में बराबर कई दिनों तक करते रहे हो, थक कर चकनाचूर हो गयी थीं इसीलिए घोड़े बेच कर सो गयीं।''

''नहीं, हम ज़्यादातर रात के समय कहीं न कहीं ठहरते रहते थे, बस में केवल दो रात गुज़ारी थीं—जाते समय और आते समय, उसमें भी बस के भीतर सोते सोते आये थे।''

''ख़ैर, जाने दो, पुरानी बातों को याद करने से क्या फ़ायदा! अब कब तक यहां ठहरने का प्रोग्राम है?''

''क्यों, अभी आये हैं, क्या आपको जाने की जल्दी है?''

''ज़्यादा समय इस अकेले कमरे में तुम्हारे साथ मेरा रहना उचित नहीं है। चलो, कहीं बाहर चलें, तुम टहल कर अपने हाथ-पैर सीधे कर लो।''

सत्यवान का यह सुझाव सुन सावित्री कपड़े बदलने चली गयी। तैयार हो कर आयी तो सत्यवान कमरे में नहीं था, वह लॉबी में इंतज़ार करते हुए दिखा।

सावित्री का नारी मन इस अवहेलना से मुरझा गया। बाहर आ कर उसने अपने कमरे की चाबी कर्मचारी को थमाते हुए कहा कि वह दोपहर का खाना बाहर खा कर वापस जल्दी लौट आयेगी।

सत्यवान ने सावित्री को डांटते हुए कहा, ''तुम्हें उस कर्मचारी को अपना प्रोग्राम बतलाने की क्या ज़रूरत थी? हम देर से या जल्दी आयेंगे, कहां गये हैं, इस सबसे उसे क्या?''

''आप तो मेहमानों की तरह यहां आ कर खड़े हो गये, चौबीस घंटे सोने के बाद यहां से मैं आपके साथ बिना कुछ कहे-सुने चल दूं? यह कर्मचारी हुआ तो क्या हुआ, है तो यह मनुष्य, उसे मेरी गतिविधियों पर अपनी निगाह रखनी चाहिए, उसके साथ इसीलिए मैंने बातचीत करना उचित समझा। आगे से नहीं करूंगी, सॉरी···।''

सत्यवान ने चुपचाप चलना ही उचित समझा, वह बेहद सावधानी से चारों ओर देखता हुआ जा रहा था। उसके इस व्यवहार से सावित्री खिन्न हो उठी, उत्तेजित हो वह

बोली, "आपको मेरे साथ चलने में अत्यधिक घबराहट हो रही है, शायद कोई आपको मेरे साथ देख न ले। यदि दुनिया का इतना ख़याल है तो आप आये क्यों मेरे से भेंट करने? मैं कमरे में वापस जा रही हूं।"

"देखो, तुम अब कोई नाटक नहीं करोगी। मैं जो उचित समझता हूं, उसे करने में किसी से नहीं डरता, तुम भी मुझे रोक नहीं सकतीं," कह कर सत्यवान सावित्री का हाथ पकड़ तेज़ गति से चलने लगा।

काफ़ी फ़ुर्ती से पैदल चलने के कारण दोनों शीघ्र ही थक गये। रेस्ट्रां में बैठ कर खाने-पीने का सुझाव सावित्री ने दिया जिसे सत्यवान ने शीघ्र मान लिया। मौन हो कर चुपचाप दोनों ने खाना खाया। बिल चुकाने के लिए सावित्री ने जब अपना पर्स खोला तो सत्यवान ने प्रतिवाद किया, "ये अधिकार मेरा है। माना तुम्हारे पास अपनी कमाई के पैसे हैं लेकिन मेरे सामने तुम्हें अपना पर्स नहीं खोलना है।"

गेस्ट हाउस के कमरे में आ कर सावित्री ने दरवाज़ा अंदर से बंद करके चिटकनी लगा दी। सत्यवान ने हंसते हुए कहा, "लगता है, तुम काफ़ी होशियार हो गयी हो।"

"अपनी रुचि का पता है," कहते हुए सावित्री ने सत्यवान को अपनी ओर प्रेम से खींच कर चूम लिया।

सत्यवान के शरीर में बिजली की तरंग दौड़ पड़ी। वह सावित्री की ओर कामातुर हो बढ़ता गया। सावित्री ने कोई प्रतिवाद नहीं किया, मानो वह सत्यवान की मानसिक त्रासदी और समस्त वेदना को पूर्ण नारी समर्पण द्वारा पी जाने के लिए लालायित थी। लहरों की तरह एक दूसरे में समाते हुए उन्हें भान न रहा कि वह एक दूसरे से अलग दो शरीर और प्राण हैं जिनका मिलन पूर्वजन्म के कर्मों द्वारा निर्धारित अवश्य हुआ होगा लेकिन वर्तमान की विषमताओं के कारण यह मिलन निषेध है। हताश हो सत्यवान ने अपने शरीर को तुरंत विलग कर लिया और बाथरूम की तरफ़ दौड़ पड़ा।

अपनी नारी देह को तिरस्कृत होता देख सावित्री का कोमल हृदय हाहाकार कर उठा। वह घायल पशुवत् पलंग पर निर्वस्त्र पड़ी रही। सत्यवान बाथरूम में सुव्यवस्थित हो कपड़े पहन कर जब निकला तो पलंग पर पड़ा सावित्री का अस्तव्यस्त नारी शरीर रूप देख चीख़ पड़ा, "क्या पागल हो गयी हो? तुम्हारा यह···"

"हां, मैं तो सर्टीफ़ाइड (प्रमाणित) पागल हूं, मेरा मनोचिकित्सक द्वारा इलाज चल रहा है, आज तक मैंने तुम्हें बतलाया नहीं है," सावित्री निर्विकार भावावेश से यह कह कर बाथरूम में अपने कपड़े ठीक करने चली गयी।

सत्यवान ने स्वप्न में भी कल्पना न की थी कि सावित्री उसे इस तरह प्रताड़ित करेगी। गत वर्षों से उसे लग रहा था कि सावित्री का व्यवहार बहुत तेज़ी से बदल रहा है, जिसे आज उसने सावित्री की प्रबल मातृत्व इच्छा को अपने आधिपत्य के बल से दबा देने की प्रतिक्रिया को समझा। अतएव सावित्री के सुव्यवस्थित हो बाथरूम से बाहर आ जाने पर उसने सावित्री को प्रेमपूर्वक अपने पास बिठा कर धैर्य दिया, "मैं जानता हूं और

आज अपने को दोषी मान रहा हूं, तुम्हारे यौवन और स्त्री सौंदर्य को मैंने खंडित करने का अपराध किया है, तुम्हें मातृत्व के गौरव से वंचित किया है। सवि, इस समय मेरा कर्तव्य ही नहीं, दायित्व है कि तुम्हें किसी तरह की चोट न पहुंचे। तुम्हारी लगी चोट का सीधा प्रहार मुझ पर होगा। मैं अपने आपको कभी चोट नहीं पहुंचा सकता, तुम्हारे विश्वास पर आघात कर देने की कल्पना भी नहीं कर सकता। अपने को इस तरह तुम संसार के सामने पागल कह कर अपमानित मत करो। एक बार कहो कि तुमने सोच-समझ कर नहीं कहा है कि तुम मानसिक रोग से पीड़ित हो?"

सावित्री सत्यवान के कंधे पर सिर रख कर फफक फफक कर रोने लगी। सत्यवान उसकी आंखों से टपके आंसुओं को होंठों से पी कर थामता रहा और प्रेमपूर्वक दुलारते हुए केवल मौन रहा। सावित्री भी उसे इस समय धैर्यपूर्वक सहारा देने के लिए हृदय ही हृदय में आभारपूर्वक धन्यवाद देते हुए निहारती रही।

समय की गति दोनों प्रेमियों के हृदय की गति सी तेज़ी से बढ़ती गयी। सावित्री ने सचेत हो कर सत्यवान को चले जाने की सलाह दी। सत्यवान अपने जीवन की कठोर वास्तविकता से भली भांति परिचित था, अतएव कल फिर आने का वायदा कर तुरंत वह तेज़ गति से कमरे से बाहर चला गया। सावित्री मौन पलंग पर निढाल गहन चिंतन में न जाने कितनी देर तक पड़ी रही, उसे समय का भान न रहा। न जाने कब रात्रि का सघन अंधकार उसके कमरे में आ कर व्याप्त हो गया। उठ कर उसने बिजली जलायी और हाथ-मुंह धो कर रात्रि का खाना खाने निकल पड़ी। इस गेस्ट हाउस में उसके और सत्यवान के संबंध को ले कर कोई चर्चा न उठे, इस बात का उसे विशेष ध्यान था।

दूसरे दिन वह सुबह उठ कर टहलने निकली और नहा-धो लेने के बाद नाश्ता रेस्त्रां में जा कर किया। कमरे में वापस आ कर उसके कान टेलीफ़ोन की घंटी को सुनने के लिए बराबर लगे रहे। पूरा दिन इसी इंतज़ार में ख़राब हो गया लेकिन सत्यवान वायदे के अनुसार भेंट करने न आ सका। घर पर उसे टेलीफ़ोन न करने की सख़्त मनाही थी, पिछली बार सत्यवान ने जिस तरह टेलीफ़ोन पर उसकी अवहेलना की थी, उसकी याद आते ही उसके दिमाग़ में क्रोध और अपमान की ज्वाला धधकने लगती। इसी उत्तेजना में उसने जो भी गाड़ी इस समय मिल सके, उसे पकड़ कर घर वापस लौट जाने की ठान ली। एक विचार आया कि वह इलाहाबाद मां के पास लौट जाये किंतु इस मनःस्थिति में वह अपने नाते-रिश्तेदारों के बीच नहीं जाना चाहती थी, केवल अपने घर की चहारदीवारी में सिर छिपा कर आश्रय मिल सकने की आशा दिखलायी पड़ी।

सावित्री के पास वापसी के लिए रेल का आरक्षित टिकट था किंतु उसकी तारीख़ के कई दिन बाक़ी थे।

ट्रेन में बैठ जाने के बाद सावित्री को ध्यान आया कि वह इस टिकट से यात्रा नहीं कर सकती है। दिल्ली से चली तमिलनाडु ट्रेन आगरा छावनी जा कर रुकी, इस यात्रा में सावित्री ट्रेन के डिब्बे में खड़ी एक तरफ़ हो कर आयी क्योंकि टिकटचेकर ने कई बार

प्रार्थना करने पर भी उसे सीट देने का प्रबंध नहीं किया था। संकोची स्वभाव होने के कारण वह स्वयं किसी यात्री से पूछ कर उसकी सीट पर कैसे आसन जमा लेती? उसे दयनीय अवस्था में एक ओर इतनी देर तक खड़ी देख एक सहयात्री ने पूछा, "आप कहां तक जा रही हैं? आपका सामान भी थोड़ा सा है, क्या पास ही ग्वालियर तक ही यात्रा है?"

"नहीं, मुझे तो गुंटूर से और आगे जाना है। सीट मिलने के प्रबंध के लिए कह रखा है, उसी के इंतज़ार में हूं।"

"अरे, तो आप साइड की सीट पर बैठने की अनुमति मांग लें, यहां कब तक खड़ी रहेंगी? रात होने को आयी है, मैं अपनी सीट पर आपको बैठने की अनुमति देता हूं, जब तक आपको टिकटचेकर आपकी अपनी सीट नहीं दे देता है।"

"धन्यवाद," कह कर सावित्री टस से मस नहीं हुई, वहीं खड़ी हुई रेल की द्रुतगति में अपने अंधकारमय भविष्य को थाम लेने की चेष्टा करती रही। शरीर नींद और थकान से बोझिल हो रहा था। यदि मन में सत्यवान की याद का सहारा न होता तो वह गिर कर इसी समय चलती ट्रेन से प्राण दे देती। एकाएक मन में उसे हरिद्वार में स्वामी जी की बातें याद आयीं, 'आत्महत्या करना पाप है, ऐसी आत्मा सदैव भटकती रहती है,' किंतु इस समय क्या उसका शरीर, प्राण, मन, आत्मा सब भटक नहीं रहे हैं? यह कौन से उसके पूर्वजन्म के पापों का फल है कि वह और सत्यवान एक दूसरे को अत्यधिक चाह कर भी मिल सकने में असमर्थ हैं? उनका हर मिलन और वियोग मानसिक त्रासदी में बदल जाता है? काश, इस घुटन से छुटकारा पा जाने का कोई विकल्प मिल पाता! दूरी होने पर मिलन की आशा जाग्रत रहती है, मिलन होने पर वह घोर निराशा में क्यों बदल जाती है?

झांसी पहुंच कर सावित्री को सीट का आरक्षण मिल गया लेकिन आरक्षित वापसी टिकट का पैसा मद्रास के रेलवे स्टेशन पर मिल पायेगा, यह जान कर उसे चिंता होने लगी। मद्रास तक नया टिकट ख़रीद सकने के लिए उसके पास पर्याप्त पैसे नहीं थे। काफ़ी ढूंढ़ने के बाद उसे अपने अंदर के पर्स के हिस्से में छिपे कुछ नोट दिखलायी पड़े। झांसी तक के टिकट में बर्थ न दिये जा सकने के कारण रेल का किराया भी कम हो गया था, लेकिन टिकट कर्मचारी को कुल पैसा देने के बाद सावित्री के पास रास्ते के खाने और हाथ ख़र्च के लिए पर्याप्त पैसे न बचे थे। इस आर्थिक विषमता में सावित्री के मनोबल ने परिस्थितियों की विषमताओं से युद्ध करने के लिए उसे कटिबद्ध कर दिया। मद्रास तक उसने रास्ते में केवल केले के पत्ते में बंधा दही-चावल का पैकेट और काफ़ी और चाय ख़रीदे। इस अल्पाहार में दो दिन रहने के कारण उसका शरीर अत्यधिक जर्जर हो गया। वह थकी-मांदी अपनी बर्थ पर सोते सोते ट्रेन का इतना लंबा रास्ता पार करने को बाध्य थी। मद्रास आने के बाद एक बस द्वारा उसे अपने शहर पहुंचना था, जहां पहुंच कर उसने सीधे मिसेज़ दास के घर जाना उचित समझा। उसमें इतनी शक्ति नहीं

थी कि वह अपने घर अकेली जा कर उसे खोले और अकेले अपने खाने आदि की व्यवस्था करे।

मिसेज़ दास घर बंद करके दफ़्तर जाने के लिए बाहर निकल ही रही थी कि एकाएक उसकी निगाह घर के सामने खड़े रिक्शे पर गयी। सावित्री को शारीरिक रूप से अस्त-व्यस्त और अत्यधिक अशक्त देख वह कुछ पूछ नहीं पायी। उसको सहारे से उठा कर उसने दरवाज़ा खोला और सावित्री को पलंग पर लिटा दिया। कुछ देर आराम करने के बाद सावित्री ने उससे विनयपूर्वक कहा, "आप जाइए, मैं काफ़ी थकी और बीमार हूं, मेरे से आज कामकाज हो नहीं सकेगा। अभी मेरी कुछ दिनों की छुट्टी बाक़ी हैं, आपके घर में पूरे दिन आराम करने के बाद मैं शाम को अपने घर वापस चली जाऊंगी।"

मिसेज़ दास का हृदय पसीज उठा, "तुम्हें एकाएक क्या हो गया? ऐसी हालत में तुम अकेली दिल्ली से यहां तक यात्रा कैसे करके आयी हो? मुझे तो आश्चर्य है कि मां ने तुम्हें अकेले यात्रा करने की अनुमति कैसे दे दी!"

"मां को मैंने प्रयागराज की गाड़ी में तीर्थाटन के बाद बिठा दिया था, घर पहुंच कर वह अपने नाते-रिश्तेदारों में मगन होंगी, मेरी तबियत दिल्ली में कुछ दिन ठहरने के उपरांत बिगड़ती गयी है। अभी इतना लंबा अकेले सफ़र करके लौटी हूं शायद इसीलिए आपको बीमार लग रही हूं।" फीकी मुस्कान को बिखेर कर सावित्री ने अपनी पीड़ा को छिपाना चाहा।

"ख़ैर, यह अच्छा किया कि तुम सीधे मेरे घर आ गयी हो। यहां से जब तक स्वस्थ हो कर तुम नौकरी ज्वॉइन न कर लो तब तक मैं तुम्हें हिलने-डुलने की अनुमति नहीं दूंगी। मैंने सुबह ही खाना पका लिया था, बचा हुआ कुछ रसोई और फ्रिज में पड़ा है, तुम नहा-धो कर खा लेना, दफ़्तर से आने के बाद मैं तुम्हें डॉक्टर के पास ले कर चलूंगी। देखो, मुझे मना न करना। तुम्हारी शक्ल को देख कर ऐसा लग रहा है, जैसे तुम कई महीनों से बीमार हो। अपना ख़याल रखना, मैं चली। अंदर से दरवाज़ा बंद कर लो।" मिसेज़ दास चिंतित मन से सावित्री को समझा-बुझा कर तुरंत चल दी।

सावित्री ने किसी तरह नहाया-धोया और थोड़ा सा गंगाजल जो वह हरिद्वार से लायी थी, वह दो घूंट पीया। बिस्तर पर लेटते ही वह सो गयी। उस दिन बिस्तर पर जब से लेटी तब से उठ नहीं पा रही थी। शाम को मिसेज़ दास ने आ कर जगाया तो निर्बल स्वर में बोली, "आप कब आयीं? घंटी नहीं बजायी, कैसे दरवाज़ा खोला?

"घंटी तो कई बार बजायी। जब तुमने दरवाज़ा नहीं खोला तब मैंने अपनी दूसरी चाबी लगा कर ताला खोलने का प्रयत्न किया। पता नहीं, कैसे ऊपर की चिटकनी सरक कर नीचे आ गयी। इस कमरे में तुम्हारा कैसा हाल रहा, कुछ खाया-पीया कि नहीं तुमने? रसोई घर देख आयी हूं, सब कुछ वैसा ही पड़ा है। तुम तो बहुत निर्बल और बीमार दिख रही हो। चलो, डॉक्टर को दिखला आयें…"

"मेरे शरीर में उठने की शक्ति नहीं रही है।"

"डॉक्टर को घर बुला कर दिखला लेते हैं," धैर्यपूर्वक मिसेज़ दास ने सुझाव दिया।

"नहीं, मुझे बस ऐसे ही लेटे रहने दीजिए, व्यर्थ में डॉक्टर बुलवा कर पैसा मत ख़र्च कीजिए," हठ करते हुए सावित्री ने कहा।

"तुम्हारी हठ अब नहीं चलेगी, पैसा किसलिए हम कमाते हैं?" मिसेज़ दास यह कह कर गर्म दूध लेने रसोई में चली गयी। उसके मस्तिष्क में सावित्री के निर्बल शरीर और अत्यंत दयनीय मनःस्थिति को देख भय का कुहरा सा छा गया था। वह स्पष्ट हो कर नहीं सोच पा रही थी कि तीर्थाटन के बाद सावित्री का यह हाल कैसा हो गया है। जब दूध ले कर आयी तो देखा, सावित्री आंसू बहा रही थी। मिसेज़ दास ने कोमल स्वर में कहा, "सवि, रो कर जी हलका वे लोग करते हैं जिनको किसी के कंधे का सहारा मिला होता है। निर्बल शरीर में ख़ून की कमी होती है, ऐसे में रोने-धोने के बजाय यह गर्म दूध पी लो।"

दूध का गिलास होंठों में लगते ही सावित्री एक भोले शिशु की तरह उसे गटगट पीने लगी। मिसेज़ दास ने तुरंत निर्णय लिया कि वह ऐसी हालत में सावित्री को अकेले मकान में जाने की अनुमति नहीं देगी।

मिसेज़ दास की तीन दिनों की अथक सेवा-सुश्रूषा से सावित्री के बदन में इतनी शक्ति वापस आ गयी कि वह खुद उठ कर अपने नित्यकर्म कर सके। मिसेज़ दास ने इतनी जल्दी स्वास्थ्य लाभ का चमत्कार सावित्री की मां का आशीर्वाद समझा, क्योंकि सावित्री की हठ के सामने वह किसी डॉक्टर को बुला सकने में असमर्थ रही थी। केवल पौष्टिक आहार और शांति से सोने की सुख-सुविधा मिल जाने मात्र से शरीर में शक्ति वापस आ जाने के बाद सावित्री ने कोमल स्वर में कहा, "मिसेज़ दास, आज मुझे क्षमा मांगनी है, बिना किसी पूर्व सूचना के मैं आपके घर आ गयी और अपनी बीमारी का पूरा भार आप पर डाल दिया है। मैं अपने हृदय की पीड़ा का थोड़ा सा भार डाल कर अपने को मुक्त कर देना चाह रही हूं। तीर्थाटन से मैं सकुशल लौटी थी। किंतु दिल्ली में मां को प्रयागराज की ट्रेन में चढ़ा देने के उपरांत मैं अपनी मृगतृष्णा की खोज में एक गेस्ट हाउस में ठहर गयी। वहां मैं चौबीस घंटे तक सोयी रही, यदि सत्यवान गेस्ट हाउस में आ कर मेरी चेतना को…"

मिसेज़ दास ने अपने कानों पर हाथ रखते हुए कहा, "बस, रहने दो, बीती बातों को दुहरा कर तुम पुनः अशांत हो उठोगी। मुझे अपना अपराध विस्तारपूर्वक सुना कर तुम्हारा चित्त रो रो कर अपने प्राण देने के लिए तत्पर हो जायेगा।"

"नहीं, मुझे अपनी बात कहने दीजिए, सत्यवान के इस बार के मिलन से यह निश्चित हो गया है कि मैं मां कभी नहीं बन सकती। मुझे मां के गौरव को न प्राप्त करने का इस जन्म में अभिशाप मिला हुआ है," कहते हुए सावित्री की क्लांत मुद्रा एक पत्थर की मूर्ति की तरह निष्प्राण बन गयी। उसकी पथरायी सूनी आंखों में कोई भाव न था—

न दुख का, न किसी तरह की पीड़ा का, केवल शून्य में खोयी एक अज्ञात दिशा की ओर इंगित करती निर्विकार दृष्टि।

मिसेज़ दास ने सावित्री को पलंग पर लिटा दिया और उसका सिर अपनी गोद में रख चुपचाप दबाने लगी। मातृत्व से भरा स्नेहिल स्पर्श पा कुछ देर में सावित्री की चेतना वापस लौट आयी। उसने कुछ कहने के लिए होंठ खोलने का प्रयास किया, किंतु कुछ कह न पायी।

मिसेज़ दास ने स्नेह से गद्‌गद स्वर में कहा, "कुछ कहने-सुनने की ज़रूरत नहीं रही है। आज के युग में तुम जैसी पढ़ी-लिखी नारी का जीवन केवल मां बन जाने के बाद सार्थक होता है, यह मैं नहीं मानती। मैं स्वयं कब और कैसे मां बन गयी, कभी इसका मुझे गर्व नहीं हुआ। अब उस पद की गरिमा को मैंने पा कर खो दिया है। देखा जाये तो आज तुम और मैं, जीवन के ऐसे मोड़ पर आ कर खड़ी हैं जहां नारी जीवन की वास्तविक अस्मिता बना सकने की चुनौती हमारे सामने खड़ी है। तुम जिस घुटन में तिल-तिल कर अपने को जला रही हो, उसी में तुम्हारा सारा यौवन नष्ट हो जायेगा। सत्यवान को अपना सब कुछ दे कर भी तुम्हें मन की शक्ति नहीं मिल पायी है। मेरी समझ में सत्यवान तुमसे प्रेम करने के दर्प में एक शराबी की तरह डूबा हुआ है। केवल अपने शब्दों और विचारों से तुम पर कैसे आधिपत्य जमाये हुए है, बतलाओ? आज तक तुम्हारे विश्वास की किस कसौटी पर खरा उतरा है? केवल भविष्य की आशा पर वितान बनाये तुम इस कठिन जीवन की डग पर कब तक चलती रहोगी? मेरी समझ में इसी तनाव में तुम्हारा मानसिक और शारीरिक स्वास्थ्य डगमगा कर नष्ट हो गया है। आशा तो हमेशा महाठगनी कही गयी है। तुम्हारे पास अब समय एकांत में सोचने के लिए नहीं रहा है, जीवन के मध्य काल में आ जाने के बाद इस मृगतृष्णा की खोज में तुम अपना और अपनी मां का बुढ़ापा नष्ट मत करो, सवि!" सचेत करके मिसेज़ दास उठ कर चली गयी।

सावित्री ने एक बार फिर से अपने को व्यवस्थित करने का निश्चय किया। थोड़े दिनों बाद ही वह मिसेज़ दास के घर से नौकरी पर जाने लगी। वहां जा कर काम-धंधे में लगी रहने से उसे सोचने का समय नहीं मिलता। खाने-पीने का अच्छा प्रबंध मिसेज़ दास की कृपा से स्वास्थ्यवर्द्धक रहा। मां का जब कभी इलाहाबाद से पत्र आया तो उसका तुरंत उत्तर दे कर मिसेज़ दास ने उन्हें पूर्ण रूप से आश्वस्त कर दिया कि सावित्री उसके पास रह रही है, वह जितने दिन चाहें, चिंतामुक्त हो इलाहाबाद में रह सकती हैं।

मिसेज़ दास इस तरह सावित्री की अभिन्न सखि बनती गयी। सावित्री ने सत्यवान के विषय में उसे खुल कर बतला दिया लेकिन ये बातें गोपनीय रखने के लिए उनसे वचनबद्ध पहले करवा लिया। जीवन मंथर गति से चलता गया। सावित्री को सत्यवान के पत्र की सदैव प्रतीक्षा बनी रहती, क्योंकि सत्यवान नौकरी से निलंबित हो कर केस लड़ रहा था। उस क़ानूनी दांव-पेंच के बाद निर्णय क्या हुआ, यही सोच सोच कर सावित्री एकांत में व्यथित हो उठती।

सात

जीवन को पूर्ववत् सामान्य बनाने की प्रबल इच्छा ने सावित्री को जल्दी ही इलाहाबाद जा कर मां को वापस लाने के लिए बाध्य किया। शायद अवचेतन मन में पुनः सत्यवान से दिल्ली में भेंट हो जाने की आशा ने उसे अवश्य सतत उद्वेलित किया होगा। इस बार मिसेज़ दास ने सावित्री को इतनी दूर अकेले जाने की अनुमति नहीं दी और स्वयं संगम नहाने की अपनी इच्छा प्रकट कर सावित्री के उत्तर भारत जाने की तैयारियां शुरू कर दीं। रेलवे में आरक्षण से ले कर, नौकरी में एक साथ दोनों की छुट्टी मंज़ूर करवाने का भार उन्होंने अपने ऊपर ले लिया। इस सब कार्य में समय कितनी तेज़ी से भाग गया, दोनों सहेलियों को पता ही नहीं लग सका।

इस यात्रा की तैयारी में सावित्री तटस्थ भाव से रही थी, विशेषकर यह जान लेने के बाद कि वे लोग सीधे इलाहाबाद पहुंचेंगे। रेल का छोटा रास्ता झांसी से ट्रेन बदल लेने के उपरांत वहां से कनेक्टिंग ट्रेन (जोड़ने वाली) मिल जायेगी। इस तरह दिल्ली ठहरना संभव न था। सावित्री को शंका हो गयी कि मिसेज़ दास ने उसे सत्यवान से भेंट करने का मौक़ा नहीं देने के लिए यह प्रोग्राम बनाया है। इसका खुल कर प्रतिवाद वह अपनी अभिन्न मित्र से कैसे करती? किंतु वह मन ही मन इलाहाबाद से दिल्ली जाने की योजनाएं बनाने लगी।

ट्रेन की यात्रा में विंध्याचल की पहाड़ियां देख मिसेज़ दास की आंखें थक जातीं लेकिन उसका मन नहीं भरता। हिमालय पर्वत के दर्शन करने का उसे सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ था, अतएव वह किंचित् ईर्ष्यालु हो कर बोली, ''सावित्री, तुम तो इतनी आत्मकेंद्रित रहती हो, काश! मैं भी रह पाती। तुम्हें पता नहीं है, मुझे कितना बुरा लगा था जब तुम मां-बेटी तीर्थाटन के लिए चली गयी थीं, मुझे अकेला छोड़ कर। मेरा कितना मन था हिमालय की गोद में जा कर वहां की यात्रा करने का, क्या वहां की पर्वत श्रेणियां भी ऐसी ही थीं?''

''नहीं, विंध्याचल की पर्वत श्रेणियां तो उतनी ऊंची नहीं हैं, न ही उतनी विशाल और भव्य जितनी हिमालय की। इन पर छायी हरीतिमा को देख इन्हें तो किसी सुंदर महिला के कमर पर नूपुर जड़ित करधनी की उपमा दी जा सकती है। हिमालय तो संपूर्ण

पुरुष है जिसके सिर पर हिमाच्छादित स्वर्ण मुकुट विराजमान रहता है। देखा जाये तो वैसे यहां सब जगह पर्वत ही पर्वत हैं, सब ही एक दूसरे के अभिन्न अंग हैं। हिमालय की यात्रा करते समय हम मां-बेटी ने आपकी याद ख़ूब की थी, आप तो हमारे जीवन के साथ रहें या दूर रहें, कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता, मन में आपकी याद सदैव बनी रहती है,'' कहते हुए सावित्री ने मिसेज़ दास के ईर्ष्याभाव को अपने भोलेपन से धो डाला।

इलाहाबाद पहुंच कर मिसेज़ दास का विशेष सत्कार होना स्वाभाविक था। मां ने दोनों बेटियों को हृदय से लगा कर आशीर्वाद दिया, किंतु मिसेज़ दास का विशेष आभार माना कि वह उन्हें वापस दक्षिण ले जाने के लिए स्वयं इतनी दूर यात्रा करके आयी है। सावित्री को देखने की लालसा की अपनी तृप्ति के लिए वह हार्दिक मन से मुखर हो उसे धन्यवाद देने लगीं। सावित्री तो उनकी अपनी थी और मामा की इकलौती भानजी। अतएव घर के नाते सब ही रिश्तेदारों का ध्यान मिसेज़ दास की आवभगत करने में लग गया। सावित्री को यह देख किंचित्मात्र भी ईर्ष्या का भाव नहीं आया। मिसेज़ दास ने इतना अधिक उसे स्नेह और अपनत्व दिया था जो उसे एक बड़ी बहन ही प्रदान कर सकती है।

सावित्री स्वजनों से कट कर ज़्यादा अपना ध्यान अकेले बैठे सत्यवान की मधुर स्मृतियों को संजोने में लगाने लगी। बचपन से उसकी इस घर में अनेक मीठी-खट्टी यादें जुड़ी हुई थीं, किंतु दिल और दिमाग़ पर केवल सत्यवान से मधुर मिलन की उत्कंठा जाग्रत हो जाने के कारण वह अकसर उठते-बैठते अतीत में खोजती, जिसकी डोर उसके प्रियतम के हाथ में होती। सत्यवान ने एक बार सावित्री को उमा के साथ उसे स्वीकार करने की शर्त रखी थी, क्योंकि दशरथ के तीन पत्नियां थीं, कृष्ण ने सोलह हज़ार रानियों से विवाह किया था। सत्यवान की शिक्षाकाल में विश्वविद्यालय के सब ही प्रोफेसरों ने एक से अधिक विवाह किये थे और उनके कई के रोमांस की चर्चा आये दिन विश्वविद्यालय में सुनने में आती रहती थी। अपने तर्क को प्रमाणित करने के लिए सत्यवान ने सावित्री को एक ऐसी पत्थर की मूर्ति ख़रीद लेने के लिए प्रेरित किया था जिसके बीच में एक पुरुष था तथा दायें और बायें अंग पर दो सुंदर नवयुवतियां खड़ी उसके साथ विनोद कर रही थीं। सावित्री इस आग्रह को सुन कर उसे काट न सकी, किंतु अपने जीवन में बहुपत्नीत्व के पुरुष अधिकार को स्वीकार करने के लिए उसने निराश कर दिया। हताश हो सत्यवान ने हंसते हुए कहा था, ''तुम तो इकलौती संतान हो। काश, तुम्हारी कई बहनें, बुआ, मौसी आदि होतीं, तो मैं सबको बारी बारी से जीत कर लाता और एक हरम बना वहां तुम्हें पटरानी बना कर रखता!'' यह कल्पना भरी बात सुन सावित्री अवाक् हो गयी थी। सत्यवान के इस कामुक रूप से उसे सदैव से घृणा थी। काश, ऐसे तुच्छ विचारों की याद उसके मस्तिष्क में कभी न आती! कुछ देर बाद प्रयत्न करके सावित्री ने ध्यान को सत्यवान से अकेंद्रित किया क्योंकि इस तरह से अन्यमनस्क रहना संकट पैदा कर सकता था, विशेषकर उसकी प्रिय सहेली मिसेज़ दास

की उपस्थिति से दूर अपने सम्मिलित परिवार के बीच कुछ पूछे जाने पर। सावित्री ने सुना, मामा जी पूछ रहे थे, "आप सब लोग उन्हें मिसेज़ दास क्यों बुलाते हैं, मैं तो उन्हें सावित्री की तरह अपनी भानजी मानता हूं, मैं इनका नाम ले कर पुकारूंगा।"

"हां, मामा जी, अवश्य, मां तो मुझे बेटी कह कर पुकारती हैं, आप मुझे मेरा नाम 'शामला' ले कर बुलाएं," सहर्ष मिसेज़ दास बोल उठी।

सावित्री का मन मिसेज़ दास को अपने स्वजनों के बीच पानी में चीनी की तरह घुले देख कर खुश था लेकिन मन ही मन उसे एक आशंका सताती रहती, कहीं परिवार का कोई सदस्य यह न पूछ बैठे कि उनका पति कहां है? कितने बच्चे हैं आदि। इन प्रश्नों का उत्तर देना मिसेज़ दास जैसी मुंहफट महिला के लिए कठिन न होगा, किंतु उत्तर प्रदेश के उच्च्व जातीय संपन्न घराने में एक तलाक़शुदा महिला को कदापि नहीं अपनाया जा सकेगा। सावित्री यह सोचने के लिए बाध्य थी, स्त्री कितनी भी पढ़-लिख जाये, आर्थिक रूप से स्वतंत्र हो जाये, फिर भी उसका रोना कभी पूरा नहीं होता। समाज उसे पूरी तरह से हंसने भी नहीं देता, शायद क्या इसलिए कि वह एक याचक की तरह अपने दुख और सुख दोनों में दूसरों पर आश्रित रहती है?

"मामा जी, गंगा स्नान का प्रोग्राम जल्दी बना दीजिए, मैंने गंगा जी नहीं देखी है," स्नेहपूर्वक मिसेज़ दास पूछ रही थी।

"जब चाहो, हम प्रयागवासी तो नित्य गंगा स्नान करते हैं, यहां नलों में उसी का पानी आता है। हमारी भानजी सावित्री को गंगा स्नान करने की इच्छा क्यों नहीं हो रही है? बचपन में तो वह घंटों गंगा जी में स्नान करती रहती थी, बाहर निकलने का नाम नहीं लेती थी। उसे मैंने ही तैरना सिखलाया था," मामा जी ने सावित्री को संबोधित करते हुए कहा।

सावित्री ने मौन रहना उचित समझा। वह चाहती थी कि मिसेज़ दास, मां और परिवार के अन्य सदस्य जब संगम स्नान को जायें, उस समय वह दिल्ली के गेस्ट हाउस में टेलीफ़ोन द्वारा संपर्क करके वहां रूम का आरक्षण करवा कर ट्रेन के टिकट का उसी अनुसार प्रबंध कर सके।

मिसेज़ दास संगम नहाने के प्रोग्राम को शीघ्र बन जाने के कारण इतनी अधिक खुश थी कि उन्होंने सावित्री के मौन हो जाने की प्रतिक्रिया को समझने की कोशिश नहीं की, लेकिन मौन को उसकी स्वीकृति समझा। सावित्री ने अपना मंतव्य स्पष्ट नहीं किया क्योंकि उसे अपनी अस्वीकृति स्पष्ट कर देने से घर में कलह-कलेश हो जाने की आशंका थी।

सुबह होने से पूर्व ही घर के सब सदस्य संगम की तैयारी में जुट गये। सावित्री ने उठ कर सबको चाय बना कर दी और मां के कपड़े आदि की व्यवस्था पूरी कर दी। मिसेज़ दास का हाथ पकड़ कर प्रेमपूर्वक कहा, "आज मुझे गंगा स्नान की अनुमति नहीं है, आप परिवार के सदस्यों के साथ जायें, वहां ऊषा की लाली फैलने से पूर्व जाना उचित रहेगा, शायद यमुना की शांत धारा गंगा जी की ओर बढ़ रही होगी। आकाश में उदित

होते हुए सूरज के लाल गोले को शनैः शनैः अपनी किरणें जलधारा में बिखेरते हुए देख वहां मुझे याद करना। आपको सरस्वती नदी आती हुई दिखलायी नहीं पड़ेगी, केवल वहां का चतुर नाविक स्नान कराने आपकी नाव संगम स्थल पर ले जायेगा। वहां पहुंच इन तीनों नदियों का अति विशुद्ध रूप से दर्शन करने के बाद आप डुबकियां लगाते समय अपने सब प्रियजनों का नाम अवश्य लीजिएगा। कहते हैं, उस नाम उच्चारण मात्र से फल उन सबको मिलता है जिनके नाम की डुबकियां आप लगायेंगी।''

''बड़ी चतुरता से कहां भाग रही हो सवि? मैंने स्वप्न में भी नहीं सोचा था कि तुम गंगा स्नान के लिए नहीं चल रही हो। सावित्री की यही विडंबना है, आज लगता है, 'चम्म' (मासिक धर्म) आ गया है।'' इस बात को सुन कर बेचारी सावित्री एक अपराधिन की तरह मौन रही और दरवाज़े तक जा कर सब स्वजनों को विदा कर आयी। कमरे में आते ही उसने डायरी से दिल्ली के गेस्ट हाउस का टेलीफ़ोन नंबर नोट किया। भाग्यवश दिल्ली की लाइन तुरंत मिल गयी और चार दिनों बाद गेस्ट हाउस के लिए रूम की बुकिंग हो गयी। इस कार्य के लिए उसे सत्यवान के नाम एवं पूर्व अपने आरक्षण के संदर्भ की चर्चा करनी पड़ी। यह सब कार्य इतनी जल्दी संभव हो जायेगा, सावित्री ने कल्पना भी नहीं की थी। शायद यह कार्य भगवान की असीम कृपा से संभव हुआ। अतएव स्टेशन चले जाने पर इसी समय में रेलवे के टिकट का आरक्षण भी संभव होगा। इसी संभावना से प्रेरित हो सावित्री ने स्टेशन जा कर प्रयागराज ट्रेन का आरक्षण ले लिया।

मिसेज़ दास आदि के संगम नहा कर लौटने से पहले घर पहुंचने में किसी तरह की अड़चन का सामना नहीं करना पड़ा। सावित्री को लगने लगा, भगवान की कृपा से शीघ्र ही उसकी सत्यवान से भेंट हो जायेगी। उसे जो करना चाहिए था, वह काम निपटा दिया है। यह सब जब ईश्वर की इच्छा से ही हो रहा है, तब क्या असंभव है?

मिसेज़ दास ने संगम स्नान से लौटने के उपरांत सविस्तार से अपने अनोखे अनुभव को सावित्री को सुनाया, ''मामा जी ने घाट से नाव द्वारा संगम जाने का प्रबंध करवा दिया, किंतु वह कुछ कार्यवश हमारे साथ नहीं आये। यमुना के शांत जल पर धीमे धीमे चलती हुई हमारी नाव जा रही थी। मेरा मन संगम की ओर जाते हुए उत्साह से भरा हुआ था। मल्लाह अपनी नाव को हाथों से ठेल ठेल कर अपनी नाव की नोक को अन्य नावों के बीच में डाल देता, इस तरह हमारी नाव स्वयं पानी में अपना स्थान बना कर आगे बढ़ गयी। संगम के पास कुछ चौकियां पड़ी हुई थीं, पता चला कि पंडों की चौकियां हैं, जहां हम अपने कपड़े, सामान आदि सुरक्षित रख नहाने के बाद उसी पंडे ने हमें दूध, गंगाजल, चंदन, फूल आदि सब दे कर विधिवत पूजा करवायी। उसने बड़े गर्व से हमें बतलाया कि कुंभ पर्व में विशेषकर मौनी अमावस्या के दिन यहां करोड़ों स्नानार्थियों की भीड़ लगती है, उस समय पूरा क्षेत्र एक नगरी बन जाता है। क़रीबन 500 एकड़ के भूखंड पर यहां उत्तर प्रदेश राज्य द्वारा मेले का आयोजन होता है। असंख्य तंबू लगाये

जाते हैं जिसमें रह कर श्रद्धालु लोग एक माह तक कल्पवास करते हैं। अनेक साधुओं, संतों का डेरा यहां जमा रहता है जहां उनके प्रवचन होते रहते हैं। प्रशासन सब शिविरों में बिजली का प्रबंध कर देता है और स्वास्थ्य विभाग द्वारा चिकित्सा की सब सुविधाएं उपलब्ध की जाती हैं। खाद्य पदार्थों की भरमार बनी रहती है और मेले में किसी प्रकार की दुर्घटना होने पर उसके लिए विशेष आपातकालीन सेवा की व्यवस्था मिल सकती है। बिना स्वयं देखे आप कल्पना नहीं कर सकतीं कि यहां कुंभ का मेला कितना विशाल और भव्य होता है। यह सब पतित पावनी गंगा मैया की कृपा है। हम सबको क्या, इस क्षेत्र के समस्त निवासियों को, मैया हमारी रोज़ी-रोटी का प्रबंध करवाती है। भगवान ने चाहा तो आप भी भविष्य में कुंभ पर्व के दर्शन कर गंगा मैया को चुनरी चढ़ायें। सवि, मैं उस पंडे की ये बातें मुग्धभाव से सुन रही थी, यही लगा कि यह पंडा भक्तिभाव से विभोर हो कर चर्चा कर रहा है किंतु एकाएक उसने ब्राह्मण भोजन, गोदान आदि के लिए 101 रुपये की मांग कर दी तब मैं चकित हो उठी। यह ठग विद्या भोले ग्रामवासियों की जेब काट सकती है, मेरी नहीं, केवल पूजा-अर्चना के लिए 5 रुपये दे कर हम लोग चल दिये। वह पंडा हमारा पीछा कहां छोड़ने वाला था, 51 रुपये दे कर किसी तरह पीछा छुड़ाया। कितनी कंगाली और अव्यवस्था आ गयी है इस देश में। तट पर आये तो भिखारियों की भीड़ जमा थी। किसी तरह पीछा छुड़ा कर हनुमान गढ़ी के मंदिर के दर्शन किये और रिक्शा करके लौटे। बड़ी थकान हो गयी है, तुमने नाश्ता किया कि नहीं? मिसेज़ दास ने पूछा।

"आपके इंतज़ार में नाश्ता बना कर बैठी हूं," निर्लिप्त भाव से सावित्री ने कहा।

"मेरा बहुत मन था कि संगम स्नान करने के बाद गंगा तट पर रुक कर उसे निहारती रहूं किंतु वहां के वातावरण की परेशानियों को देख, शांतचित्त हो बैठने का मन नहीं किया। हम लोगों ने नाश्ते में वहां गर्म गर्म जलेबी और समोसे अवश्य खाये थे, शायद तुम्हारे लिए मां ने रखे होंगे," मिसेज़ दास यह कह कर सावित्री के लिए लेने चली गयी।

सावित्री को लगा कि संगम जैसे पवित्र स्थान में जा कर मन की मलिनता को दूर करने के लिए श्रद्धा और विश्वास की ज़रूरत है। वहां की कुरूपता उन लोगों को व्याप्त नहीं होती जो ईश्वरभक्त हैं। मां तो संगम स्नान करके कृतार्थ हो उठी होंगी। सावित्री ये बातें सोचने-समझने के मूड में नहीं थी, उसे घर वालों को अपने दिल्ली के प्रोग्राम बना लेने के बारे में सूचित करना था। दिल्ली में गेस्ट हाउस की बुकिंग करवा लेने के बाद से सावित्री के मन में जहां अंधेरा था वहां एक छोटा सा दिया जला कर किसी ने रख दिया था, जहां उसे पहले कुछ नहीं दिख रहा था, वहां अब दिखने लगा था।

मां को दिल्ली जा कर दफ्तर का ज़रूरी काम करवाने का बहाना बता देना, ऐसा बहाना सावित्री ने मिसेज़ दास की सलाह पर कर दिया क्योंकि उसने स्पष्ट शब्दों में अपनी प्रिय सहेली से सत्यवान से भेंट करने के लिए दिल्ली जाने की अपनी योजना

विस्तार से बतला दी थी। यह सत्य है कि इस समय सत्यवान को सावित्री की जितनी ज़रूरत है, जीवन में फिर कभी न होगी। वह नौकरी से निलंबित ही नहीं, एक क़ानूनी फंदे में फंसा हुआ है, ऐसे में उसका मनोबल टूट चुका है। मिसेज़ दास एक प्रबुद्ध महिला थी। अतएव उसने सावित्री के मन का विश्लेषण करके यह निष्कर्ष निकाला कि इस समय सावित्री के रुक जाने से अहित होगा। हो सकता है, इस भेंट के बाद सावित्री के मन और मस्तिष्क में समायोजन हो जाये, भविष्य में वह सत्यवान को पूर्ण रूप से पाने की कामना को अपने मन से निकाल दे। सावित्री जैसी उदारहृदया तपस्विनी महिला का प्रेम ऊर्ध्वगामी है, उमा के सुख के लिए, सत्यवान की संतान के कल्याण के लिए, सत्यवान की मान-प्रतिष्ठा के लिए सावित्री को यह बलिदान देना होगा। उसने तो सदैव जीवन में 'सत्यं शिवं सुंदरं' भावनाओं की समग्रता में प्रतिपादित करने की इच्छा की है, अपने अहं की तुष्टि के लिए वह बसी-बसायी एक गृहस्थी को नहीं बिगाड़ सकेगी। सत्यवान को पा जाने के बाद भी सावित्री का अकेलापन कोई नहीं मिटा सकता। जीवन के मध्यकाल में शारीरिक सुख की आकांक्षा में बंध कर जीवन शैली को एकाएक बदल देना क्या बुद्धिमानी होगी?

ट्रेन के आरक्षित डिब्बे में सावित्री का सामान जमा कर मिसेज़ दास ने चुपचाप बाहर आ कर सावित्री के हाथ को पकड़ने की कोशिश की, खिड़की से अपना हाथ निकाल कर सावित्री ने उसे कस कर पकड़ लिया। विदा लेने का समय जैसे जैसे नज़दीक आने लगा, उसका हृदय इस बिछोह से कांपने लगा। ट्रेन चलने में अधिक समय नहीं रह गया था। कंपित अधरों से सावित्री ने कहा, "मैं आपकी बहुत आभारी हूं, आपने मुझे चिंतामुक्त कर दिया, मेरे हृदय में अब कोई ग्लानि नहीं रही है। यदि सत्यवान से भेंट न हो सकी, तो वापस आ कर आपके कंधे पर सिर रख कर ख़ूब रो लूंगी।"

"नहीं सवि, इस बार सत्यवान के कंधे पर सिर रख कर जितना रो सको, रोना, वहीं अपने सब आंसू बहा कर आना। अपने दिल और दिमाग़ में छाये हुए गत वर्षों के असमंजस को धो डालना। तुममें प्रेम देने की क्षमता है, कभी किसी को देने में कृपणता नहीं करती हो, मुस्कराते हुए अपना सर्वस्व लुटा देना।"

पता नहीं, सावित्री अपनी सहेली की इस शिक्षा को सुन पायी या नहीं? ट्रेन चल पड़ी थी। एक कठिन व्रत को सावित्री अवचेतन मन से वर्षों से करती आयी है, शायद जन्म-जन्मांतर तक वह सत्यवान के साथ इसी डोर में बंधी हुई थी।

सोचने के लिए पूरा जीवन पड़ा है, यह सोच कर सावित्री ने अपने विचारों पर इतिश्री लगाने के लिए सोने का उपक्रम किया। ऊपर की बर्थ होने के कारण बिस्तर लगा कर लेट जाने में अड़चन न थी। सावित्री की आंख सुबह जा कर खुली। नित्यकर्म से निवृत्त हो कर वह नीचे की सीट पर बैठने के लिए लालायित थी, किंतु वहां सहयात्री बर्थ पर अपना सामान रख कर बाथरूम में गया हुआ था, परपुरुष की बर्थ पर बैठ जाने

में वैसे भी उसे संकोच था। कुछ देर प्रतीक्षा करने के बाद सामने की अकेली सीट मिल गयी। वहां बैठ कर सावित्री बिलकुल शांत थी, मानो उसके मस्तिष्क में छाया झंझावात बंद हो गया हो! प्रयागराज ट्रेन का सफर सुखद रहा। सावित्री ने दिल्ली स्टेशन से गेस्ट हाउस तक के लिए प्री-पैड स्कूटर कर लिया, वहां कमरा आरक्षित होने के कारण कोई असुविधा नहीं हुई। नौ बजने से पहले ही सावित्री अपने कमरे में व्यवस्थित हो गयी। उसने कमरे से टेलीफ़ोन द्वारा सत्यवान के घर का नंबर मिलाने की स्वागत कक्ष से मदद ली। लाइन मिल जाने पर टेलीफ़ोन कर्मचारी ने बात करने को कहा तब हिचकिचाते हुए सावित्री ने पूछा, "कौन बोल रहा है, क्या मैं···"

"मैं बोल रहा हूं, अरे सवि! यह कितनी अधिक सुखद घटना! सुबह सुबह कहां से बोल रही हो? कब तक रहोगी? मैं अभी मिलने आ रहा हूं, पता बतलाओ।"

"मैं उसी गेस्ट हाउस में ठहरी हुई हूं जहां आपने पहले मुझे ठहराया था। भाग्यवश कमरा नंबर भी वही है जो मुझे पहले मिला था।"

"भगवान से मुझे कुछ और आज मांगना चाहिए था, मैं···घर में बिलकुल अकेला हूं, मेरी पत्नी और बच्चे दिल्ली से बाहर गये हुए हैं।" सत्यवान की प्रसन्नता का मानो ठिकाना न था, उसका स्वर अत्यधिक संवेगित था।

थोड़ी देर में सत्यवान ने आ कर किवाड़ पर दस्तक दी, सावित्री ने तुरंत दरवाज़ा खोल दिया। सदैव गर्वीला रहने वाला सत्यवान निःशब्द निढाल हो सावित्री की गोद में सिर रख कर उसकी आंखों में अपनी छवि को निहारता रहा। कुछ देर के मौन के बाद सावित्री ने पूछा, "आपकी नौकरी का क्या हुआ? आशा है, आप केस जीत गये हैं।"

"हां, तुम सब लोगों की प्रार्थना भगवान ने सुन ली। इस समय उमा बच्चों सहित तिरुपति जी के मंदिर में प्रसाद चढ़ाने दक्षिण गयी हुई है। काफ़ी सालों की दौड़धूप और पैसों की बरबादी के बाद हाई कोर्ट द्वारा मुक्ति मिली। मैंने तो जीतने की आशा ही छोड़ दी थी। यह मुक़दमा तो उमा के धैर्य और पारिवारिक संपन्नता के कारण हम जीत सके। मुझमें हाई कोर्ट जाने की न शक्ति थी, न पैसा। सवि, मैंने कितनी बार चाहा था कि तुम्हारे पास जा कर छिप जाऊं, तुम मुझे अपने घर में एक चूहे की तरह कहीं छिपा कर···"

सत्यवान के होंठों पर हाथ धर सावित्री बोली, "बस, यह बात पहले भी कह चुके हैं। आपने जीवन में कभी पराजय नहीं देखी थी, आपका जीवन सदैव एक सूर्य की भांति पृथ्वी को ऊष्मा देने के लिए परिक्रमा करता रहा है लेकिन क्लांत सूर्य शाम के समय समुद्र के पानी में कुछ देर तक डुबकी लगाता हुआ सा प्रतीत होता है। आपका अवश्य यह दुर्दिन का समय रहा होगा लेकिन कल सूरज फिर क्षितिज पर चमकेगा, यह मेरा विश्वास नहीं, सूरज का वायदा है धरा को।"

"तुम्हारी बातें सुन कर तो मेरा रोम रोम ख़ुशी से नाच उठा है, जैसा अनुभव मैंने कन्याकुमारी में जा कर एक अत्यंत दुर्लभ दृश्य देखने के बाद किया था। मैंने पश्चिम

दिशा से सूर्य का डूबना और पूर्व दिशा से चंद्रमा को उदित होते एक साथ देखा था, चलो, तुम्हें मैं आज अपने घर···मेरा मतलब, उमा के घर ले चलूं। वह तीन-चार दिनों बाद लौटेगी।

"मुझे आपके साथ अपने घर जाना है, जो हम दोनों का घर हो, उसके भीतर उमा की छाया भी नहीं घुस सकती," सावित्री ने दृढ़ता से कहा।

यह सुन कर सत्यवान हत्प्रभ हो गया, "क्यों, उमा का घर मेरा नहीं है? मैं तुम्हें प्रेमपूर्वक ले जा रहा हूं, तब तुम्हें क्यों आपत्ति है?"

"उमा की गंध मेरे लिए असहनीय है, उसके घर में जा कर मैं सांस नहीं ले सकूंगी।"

"मेरे शरीर से उमा की गंध अवश्य आती होगी, तुम मुझे कैसे सहन कर पाती हो?" सत्यवान ने एक शरारती बालक की तरह आंख नचा कर पूछा।

"मुझे अवश्य आती रही है, इसीलिए आपके शारीरिक मिलन से मैं भागती आयी हूं," कह कर सावित्री ने अपने शरीर को सत्यवान से विलग कर लिया। सत्यवान ने बलपूर्वक सावित्री को अपनी ओर खींच कर होंठों से अपनी पिपासा को शांत करना चाहा। कुछ देर के बाद सावित्री ने हंस कर कहा, "इस तरह आपके होंठों की प्यास बुझ जाती होगी, मेरा कंठ तो प्यास से तड़प रहा है, कब स्वाति नक्षत्र आयेगा और मुझ पपीहे की प्यास बुझेगी?"

"अब इस जन्म में संभव नहीं, अगले जन्म तक प्रतीक्षा करो, मैं अवश्य अपना वचन निभा दूंगा, यह मेरा वायदा रहा, अगले जन्म हम पति-पत्नी रूप में मिलेंगे।"

"किसने अगला जन्म देखा है, मुझे ऐसी सब बातों में विश्वास नहीं है," निराशा से हताश हो कर सावित्री बोली।

"ओह! तुम जैसा धार्मिक संस्कारों से जुड़ा हुआ भीरु व्यक्ति मैंने पहले कभी नहीं देखा था, लेकिन आज तुम एक वैज्ञानिक नये विचारों की महिला क्यों बनी बैठी हो? मेरे गृहस्थी बसाने के बाद तुम्हारे गोद में खेलती हुई मेरी संतान तुम्हें वैज्ञानिक जगत से कोसों दूर चौके-चूल्हे में बांध कर रख देगी, भूल जाओगी वैज्ञानिक प्रयोगशाला, रिसर्च, नौकरी, नारी स्वतंत्रता आदि की बातें।"

"काश, वह सब संभव हो पाता! उसकी प्रतीक्षा में मेरा जीवन कितने दुर्गम स्थलों से निकल कर बढ़ता गया है, अब उस धार को पीछे ढकेला नहीं जा सकता," आग्रह भरे स्वर से सावित्री ने कहा, "हिंदू होने के कारण आप पूर्वजन्म के सिद्धांत को मानने के लिए बाध्य हो गये हैं। एक कुशल वैज्ञानिक होने के नाते मुझे पता है, इन धार्मिक बातों को सुन कर आपके मन में कितनी कड़वाहट हो जाती है।"

"नहीं, सवि, नहीं," प्रतिवाद करते हुए सत्यवान कुर्सी से उछल पड़ा। "इस बीच में मैं भी कई तीर्थ स्थानों में जा कर घूमा हूं। तुम्हारे मानसिक रोग की बात सुन कर मैं बेहद हिल गया था। आज तुम्हें एक घटना बतलाना चाहूंगा, मैं हरिद्वार में एक स्वामी

जी से मिला। अपने ज़माने के वह एक कुशल डॉक्टर थे, इसीलिए उन्हें रामकृष्ण मिशन के अस्पताल का कार्यभार दिया गया होगा। उन्होंने मेरी मनःस्थिति बिना कुछ कहे-सुने जान ली और तुम्हारी यात्रा के वर्णन का मुझे संकेत दिया, यह सब उसे कैसे पता चल गया? यह सब हमारी साइंस नहीं बतला सकती। उन्होंने मुझे आदेश दिया कि मैं रोज़ पूजा किया करूं, एक फूल अपने इष्टदेव के चरणों में रखूं और अपने कल्याण हेतु प्रार्थना करूं, दूसरा फूल रख कर अपनी पत्नी और बच्चों का नाम ले कर उनके कल्याण की प्रार्थना करूं, तीसरा फूल ले कर अपनी किसी परमप्रिय सखी या सखा के मानसिक स्वास्थ्य के हित की प्रार्थना करूं। इसके अतिरिक्त स्वामी जी ने मुझे हफ़्ते में एक बार मानसिक रोगियों की सेवा के लिए किसी अस्पताल में जा कर उन्हें भोजन आदि देने या उनसे प्रेमपूर्वक बातचीत करने का आदेश दिया, जो मैं इधर कई दिनों से लगातार कर रहा हूं। उससे मुझे काफी शांति मिली है, लेकिन आश्चर्य है, स्वामी जी को बिना कुछ बतलाये ही···।''

''क्या आपने स्वामी जी से हमारे विवाह की बात नहीं पूछी थी? क्या उन्होंने उसकी स्वीकृति दी है?'' सावित्री ने टोक कर पूछा।

सावित्री ने देखा कि सत्यवान इसका उत्तर न दे सका, वह चुपचाप अपराधी भाव से सावित्री की ओर देखता रहा।

''चलो, चल कर पेट पूजा की जाये, मुझे भूख लग रही है,'' सत्यवान कह कर बाहर लॉबी में चला गया।

सावित्री आज इस मौन को देख विचलित नहीं हुई, उसे एक विचित्र अनुभूति हुई, मानो वह एक शमशान के समीप खड़ी है, चारों ओर हाहाकार करती हुई संतापमयी वायु बह रही है, लेकिन उसके चित्त में संसार से वैराग्य लेने की लालसा अत्यधिक है, फिर भी पेट पूजा करना अनिवार्य बन गया क्योंकि यह सत्यवान का आदेश था।

रास्ते में दोनों पैदल चुपचाप चलते रहे। सत्यवान ने अपनी पसंद के रेस्ट्रां में घुस कर भोजन व्यवस्था के बारे में जानकारी कर लेने के बाद सावित्री को सूचित किया कि इस समय यहां मांसाहारी भोजन ही उपलब्ध है जिसे वह खाना पसंद नहीं करेगी, किंतु सलाद आदि मिल सकेगा। यहां शांति से बैठने की अच्छी व्यवस्था है, अन्य रेस्ट्रां में इस समय बेहद भीड़ होगी, लेकिन वहां शाकाहारी भोजन अच्छा मिलेगा। इस बात का सावित्री ने बलपूर्वक प्रतिवाद किया कि वह सलाद खा कर गुज़ारा कर ले। वह इस समय पूरा भोजन करना पसंद करेगी। अतएव वहां से निकल कर सत्यवान को उसे दूसरे रेस्ट्रां में ले जाना पड़ा।

दिल्ली शहर में दोपहर के समय लाइन लगा कर लोग रेस्ट्रां में भोजन के लिए इंतज़ार करते दिखलायी पड़े। सत्यवान ने सावित्री को एक मेज़ पर ख़ाली कुर्सी देख वहां बैठ जाने का संकेत दिया और स्वयं अपने नंबर आने की प्रतीक्षा करने लगा। कुछ देर के इंतज़ार के बाद जब नंबर न मिला तो उसने सावित्री के बग़ल में बैठे हुए जोड़े से

उनकी मेज़ पर बैठ जाने की अनुमति मांगी। युवा जोड़ा सत्यवान की प्रार्थना को अस्वीकार न कर सका। सत्यवान अपनी इस सूझबूझ पर काफ़ी गर्वीला हो उठा। वह कभी सावित्री की ओर प्रशंसा पाने की दृष्टि से देखता तो कभी उस युवा जोड़े की ओर, मानो उनकी मेज़ पर अपना आसन जमा कर बैठ जाने से वह उनकी मान-प्रतिष्ठा को बढ़ावा दे रहा हो। इस रेस्ट्रां का खाना काफ़ी स्वादिष्ट था। सत्यवान ने दिल खोल कर उस युवा जोड़े से अपने ऑर्डर की गयी चीज़ों को लेने का अनुरोध किया, लेकिन संकोचवश वह जोड़ा इतने प्यार से परोसे गये खाने को खाने के बजाय वहां से अपना बिल चुका कर चला गया। इस तरह उस मेज़ पर सत्यवान का पूरा आधिपत्य हो गया।

सावित्री ने खाना खाते हुए सत्यवान का ध्यान अपनी भावी योजना की ओर आकर्षित करने के लिए कहा, "क्यों न हम दोनों हरिद्वार चल कर उन स्वामी जी के एक साथ दर्शन करके आयें, मेरा बहुत मन कर रहा है कि मैं आपके साथ भेंट करके स्वामी जी से अपने भविष्य के बारे में पूछूं।"

यह सुन कर सत्यवान का हर्षोल्लास एकाएक बुझ सा गया वह गंभीर हो कर बोला, "मैं कैसे दिल्ली छोड़ सकता हूं? किसी समय उमा का फ़ोन आ सकता है। मेरी घर से अनुपस्थिति इस समय संकट पैदा कर सकती है। मेरे पर कड़ा पहरा रहता है, कोई न कोई व्यक्ति जासूसी करता रहता है।"

यह उत्तर सुन कर सावित्री का चित्त उदास हो गया। दोनों चुपचाप खाना खा कर गेस्ट हाउस लौट आये। विदा का समय नज़दीक आता देख सावित्री ने धीमे स्वर में कहा, "आप कमरे के अंदर न चलें। काफ़ी देर से आप अपने घर से बाहर रहे हैं, मेरी समझ में आपको फ़ौरन घर वापस चले जाना चाहिए।"

सत्यवान ने सहमत हो कर कहा, "तुम्हारा सुझाव मेरे लिए हितकर है, लेकिन जाने से पहले अपना प्रोग्राम बतला दो।"

"मैं आज ही बस पकड़ कर हरिद्वार चली जाऊंगी, वहां से परसों सुबह लौटूंगी, यह कमरा मेरे नाम पर आरक्षित परसों रात तक है। परसों रात प्रयागराज से इलाहाबाद लौट जाने का विचार है क्योंकि वापसी का टिकट उसी दिन का है।"

"ठीक है, मैं बस स्टैंड पर तुम्हें लेने आऊंगा और वहां से पूरे दिन मैं गेस्ट हाउस में तुम्हारे साथ रहूंगा, दोपहर का भोजन साथ करेंगे फिर मैं रात्रि को तुम्हें गाड़ी पर बिठा कर विदा कर दूंगा।"

यह सुन कर सावित्री अपने भाग्य को सराहने लगी, उसे सत्यवान अपने कर्तव्य के प्रति निष्ठावान लगने लगा था। सावित्री प्यार भरे स्वर में बोली, "जब भी आपका मन हो, गेस्ट हाउस आ जाइएगा, मैं आपकी प्रतीक्षा में बैठी मिलूंगी, आपसे विदा लेना मेरे लिए सदैव कष्टदायी रहा है।"

"प्रिय सवि, तुमने मेरी प्रतीक्षा पिछले कितने सालों से की है, मैं अपने वायदे को निभा सकने में असमर्थ रहा हूं। इस जीवन में मैंने तुम्हें बहुत सताया है, हो सके तो मुझे

माफ़ करना, अगले जीवन में यह सब ब्याज सहित चुका दूंगा,'' यह कह कर सत्यवान ने सावित्री के दोनों हाथों को पकड़ लिया।

सावित्री इस भावावेश से विचलित हो उठी, ''छोड़िए, क्या कर रहे हैं? कोई देख लेगा। आपके अनुसार आपके चारों ओर जासूस लगे हुए हैं, अब आप फ़ौरन चले जायें, नहीं तो···''

''अच्छा, जा रहा हूं, बस स्टैंड पर इंतज़ार करते हुए परसों मिलूंगा,'' कह कर सत्यवान तेज़ी से निकल गया, फिर पीछे मुड़ कर उसने सावित्री को देखने की कोशिश नहीं की।

बेचारी सावित्री ठगी सी पंथ निहारती रही। अपने पूर्व निर्धारित प्रोग्राम के अनुसार सावित्री हरिद्वार की बस पकड़ स्वामी जी के दर्शन करने चली गयी। आश्रम पहुंच कर एक प्रौढ़ व्यक्ति से उसने पूछताछ की तो पता चला कि आजकल स्वामी जी योगाभ्यास का शिविर चला रहे हैं। कुछ देर प्रतीक्षारत रहने पर कुछ पीतवस्त्री किशोरों का समूह एक ओर से आता हुआ दिखलायी पड़ा। वे सब मधुर ध्वनि में वेदपाठ कर रहे थे। स्वामी जी गेरुए वस्त्र में उनके पीछे चल रहे थे। आश्रम के प्रांगण में इस दृश्य का सामूहिक प्रभाव अद्भुत था। सावित्री ने नतमस्तक हो कर स्वामी जी को प्रणाम किया। कुछ देर बाद एक किशोर बालक स्वामी जी द्वारा भेजी हुई चिट ले कर आया, सावित्री उसे पा कर आनंद विभोर हो उठी, किंतु एकाएक अंतरात्मा से आवाज़ आयी कि सत्यवान विवाहित है वह अपनी पत्नी का है, अतः स्वामी जी से प्रश्न मत पूछो। स्वामी जी के कक्ष में घुसते ही वह निःशब्द मूर्तिवत खड़ी रही। स्वामी जी ने संकेत द्वारा उसे आसन ग्रहण करने की आज्ञा दी और स्नेह से उसकी और मां की कुशलक्षेम पूछी। सावित्री स्वामी जी के स्मृतिपटल पर अपनी अमिट छाप देख उत्तेजित हो बोली, ''आपके पास तो नित्य कितने सारे दर्शनार्थी आते होंगे फिर भी आप मुझे और मेरी मां को नहीं भूले, मैं आपकी कृपादृष्टि से कृतार्थ हूं। मन करता है, मैं भी आपके योगाभ्यास शिविर में प्रशिक्षण के लिए यहीं ठहर जाऊं।''

''ऐसा सहर्ष करो, किंतु तुम्हारे पास समय का अभाव है, तुम्हारी मां कहां है इस समय?'' सहज भाव से स्वामी जी ने पूछा।

''आजकल वह तो अपने भाई के पास इलाहाबाद में हैं। मैं अकेली आपके दर्शन करने आयी हूं, एक प्रश्न पूछने की अभिलाषा से,'' सावित्री ने विनयपूर्वक स्वामी जी की स्वीकृति मांगी।

स्वामी जी उसकी प्रार्थना को सुन कर किंचित् गंभीर हो गये और मौन हो विचारमग्न दिखलायी पड़े। सावित्री का हृदय इस मौन को देख कर विचलित हो उठा। उसे लगा, अब प्रश्न पूछना व्यर्थ है, स्वामी जी बिना पूछे ही उसका प्रश्न जान गये हैं और इस मौन का अर्थ है कि इस जन्म में सत्यवान से उसका मिलना असंभव है। अतएव अपने मन की समस्त कड़वाहट को पीते हुए सावित्री ने पूछा, ''मेरे लिए क्या

आज्ञा है?"

"तुम एक कर्मठ महिला हो, एक मंद पवन की तरह अपना जीवन बहने दो। माना पवन की तरह तुम्हारा रूप और गंध किसी को दिखलायी नहीं दे रहा है किंतु उसकी शीतलता और गंध चारों ओर बिखरती रहेगी, मेरा तुम्हें आशीर्वाद है," कह कर स्वामी जी ने हाथ उठा दिये, जो संकेत था कि वह इस आशीर्वाद को ले कर वापस चली जाये। सावित्री को पहले अटपटा लगा, लेकिन उसे ईश्वर इच्छा समझ कर स्वीकार करने में उसे सबका हित लगा, शायद यही 'सत्यं शिवं सुंदरम्' का अर्थ है।

आश्रम के प्रांगण में आ कर सावित्री चुपचाप बैठ गयी। एक विचार उसके चित्त को झकझोर रहा था। क्यों नारी जीवन भर इस भ्रम के बंधन में बंधी रहती है कि दूसरों के लिए वह आवश्यक है? स्वामी जी ने उसे मंद पवन की तरह जीवन सार्थक बनाने का आदेश दिया है, हवा मनुष्य के लिए आवश्यक है, लेकिन मनुष्य हवा के लिए आवश्यक नहीं।

हरिद्वार से आयी बस सुबह सुबह दिल्ली के बस स्टैंड पर समयानुसार पहुंच गयी, किंतु सत्यवान वहां अपने वचनानुसार प्रतीक्षा करता हुआ नहीं दिखा। सावित्री ने उसे चारों ओर आंखें फैला कर खोजने की कोशिश की, कुछ देर ठहर कर इंतज़ार भी किया, निराश हो कर स्कूटर करके वह अकेली गेस्ट हाउस पहुंची। हरिद्वार की यात्रा ने उसके मन और शरीर को थकान से चकनाचूर कर दिया था। अतएव नहा-धो कर वह सो गयी।

दोपहर के वक़्त बेयरे ने आ कर उसे जगा दिया, नाश्ते का समय निकल चुका था इसलिए उसने दोपहर के खाने का ऑर्डर कमरे में लाने के लिए दे दिया। खाना खा कर उसका चित्त शांत हुआ। तब मस्तिष्क को यह विचार परेशान करने लगा कि आज सुबह सत्यवान बस स्टैंड पर क्यों नहीं आया? घर में वह अकेला है, पत्नी और बच्चे तिरुपति गये हुए हैं, फिर किस कारणवश वह अपने वचन को न निभा सका? अपने भावों और विचारों के द्वंद्व से मुक्ति पाने के लिए सावित्री ने सत्यवान के घर पर टेलीफ़ोन कर दिया, उधर से रिसीवर सत्यवान ने उठाया और बड़ी आत्मीयता से पूछा, "कैसी रही यात्रा? क्या उत्तर दिया स्वामी जी ने?"

"वह मैं आपसे भेंट होने पर बतलाऊंगी, पहले यह बतलाइए कि अपने वायदे के अनुसार आप सुबह बस स्टैंड क्यों नहीं आ सके?" दृढ़ स्वर में सावित्री ने पूछा।

"ओह! मैं सोता रह गया था, मेरी आंख ही नहीं खुली, घर में कोई उठाने वाला नहीं था। जब जागा तो लगा, अब तक तुम अकेली गेस्ट हाउस पहुंच चुकी होगी। इसके अलावा मैं सुबह सुबह तुम्हें लेने आता और तुम मेरे साथ घर आना पसंद नहीं करतीं, ऐसे में मुझे ही तुम्हारे पीछे गेस्ट हाउस के चक्कर लगाने पड़ते।"

"अच्छा, मैं आज रात प्रयागराज वापस जा रही हूं," कह कर सावित्री ने फ़ौरन टेलीफ़ोन रख दिया। वह सत्यवान का उत्तर सुन कर सुन्न हो गयी थी किंतु सत्यवान की भर्त्सना करने का उसे साहस नहीं हुआ। मन ही मन सारा गुस्सा पी लेने के कारण

सावित्री में इस अवहेलना के प्रति लड़ने का साहस आ गया। गेस्ट हाउस से विदा ले कर अकेली रात्रि के समय सावित्री प्रयागराज की ट्रेन में अपना सामान जमा कर खिड़की से बराबर बाहर झांकती रही। प्रतीक्षा में ऊब कर उसकी आंख भारी हो गयी थी। उसे लगा, दिल्ली आने की पूरी यात्रा निरर्थक रही, मानो लगभग ऊंघते ही व्यतीत हो गयी है। मन शीघ्र घर पहुंचने के लिए व्याकुल हो उठा था।

गार्ड ने हरी झंडी दिखलायी तब ही प्लेटफ़ार्म पर उसकी आंखें भागते हुए सत्यवान पर पड़ीं, अपनी खिड़की से उसने हाथ हिला कर अभिवादन किया। शायद किसी ने ट्रेन की जंज़ीर खींच दी थी इसीलिए चलती ट्रेन एकाएक रुक गयी, लपक कर सत्यवान खिड़की के पास आ गया और उत्साहित हो कर बोला, "मुझे आने में देरी हुई, गेस्ट हाउस में टेलीफ़ोन किया तो पता चला, तुम वहां से चल दी हो, अपनी कार तेज़ी से चला कर स्टेशन आया तब पता चला, ट्रेन छूटने को है, एकाएक यह ट्रेन न रोकी गयी होती तो आज तुम्हें अपनी सफ़ाई भी नहीं दे पाता।"

"इस भागादौड़ी से ज़्यादा अच्छा होता कि आप अगले स्टेशन पर मिल जाते। अभी भी मेरी समझ में अंदर आ जाइए, अगले स्टेशन पर उतर जाइएगा," सावित्री ने कातर स्वर में विनती की।

"नहीं, मेरी कार इसी स्टेशन के पार्क में खड़ी है, मैं तुमसे मिल तो गया हूं, वैसे मुझे विदा करना अच्छा नहीं लगता, मैं तो स्टेशन पर रिसीव करने का आदी हूं," कह कर सत्यवान हंसने लगा।

सावित्री इस बात का क्या उत्तर दे सकती थी? सावित्री ने सत्यवान के आत्मरति व्यक्तित्व को देखा ही नहीं, भोगा है, वह यदि इस मनोग्रंथि के विषय में जानती होती तो कदाचित् इस जाल में पड़ कर अपने जीवन को एक अभिशाप न बनाती। रुकी गाड़ी ने शीघ्र ही गति पकड़ ली।

मां ने उसे दूसरों के सुख में सुखी होने की शिक्षा दी है किंतु क्या यह आसान कार्य है? उसके मन में एकाएक अपने बचपन की एक स्मृति कौंध गयी—मां वैधव्य जीवन के हादसे को सहन नहीं कर पायी थीं, दिन भर रोती रहती थीं और उसकी देखरेख भी नहीं करती थीं, उन्हें समझाने-बुझाने कई लोग घर में आते रहते थे। एक दिन अबोध वह बालिका रोते रोते एक कोने में सो गयी, लेकिन मां का ध्यान उसकी ओर नहीं गया। जब कुन्दन भैया आये, वह बालिका को धरती पर सोता देख चीख़ पड़े, 'आप अपना ध्यान नहीं रखतीं, न खाने-पीने का न अपने शरीर का, लेकिन इस बेचारी नादान बच्ची को अपने साथ क्यों घसीट रही हैं? क्यों इसका बचपन अंधकारमय कर रही हैं?' कह कर उन्होंने सावित्री को स्नेह से उठा कर अपनी गोद में सुला लिया। कांपते हाथों से कुन्दन भैया ने मां के आंसू से भरे चेहरे को ऊपर उठाने की चेष्टा की, लेकिन मां ने उनके हाथों को बलपूर्वक झटक दिया, इस खींचातानी में बालिका सोते से उठ गयी और मां की दयादृष्टि के लिए सुबक सुबक कर रो उठी। मां का कर्कश शब्द उसके कानों

में आज भी गूंज उठा, 'मेरा यह लोक और परलोक बिगाड़ने का आपको कोई अधिकार नहीं है। इस बच्ची को पिता का सहारा देने का नाटक न करें, यह अभागिन जीना होगा तो ऐसे ही जी जायेगी, हम आपकी दया के भूखे नहीं हैं, इस संसार में आपदाएं किस पर नहीं आतीं? मेरे ललाट पर जो लिखा है, वह यह भी भुगतेगी।'

सावित्री को अपने बचपन में कभी नहीं समझ में आया था कि कुन्दन भैया मां से क्या चाहते थे? क्यों उसे अपने हृदय से लगाये बाहर घुमाने ले जाते थे? क्यों उसके लिए कपड़े, खिलौने आदि लाते रहते थे? बचपन में इतना अवश्य समझ में आया था कि कुन्दन भैया के आते ही मां उसे छोड़ कर कमरे में अपना दरवाज़ा बंद करके बैठ जाती थीं। आज सावित्री को समझ में आया कि क्यों मां कुन्दन भैया को सुख नहीं देना चाहती थीं, क्यों उनके सुख में सुखी हो जाना उन्हें स्वीकार न था। बचपन की स्मृतियों में खोयी सावित्री सुन्न बैठी रह गयी, वह किसके लिए दुखी थी, वह स्वयं नहीं जानती थी।

जीवन में दुख-सुख आने-जाने के क्रम के अनुसार अगले पंद्रह दिनों में ही सावित्री, मां और मिसेज़ दास के साथ इलाहाबाद से यात्रा कर अपने घर पहुंच गयी और पुनः नौकरी के कार्यभार में व्यस्त हो गयी। अपने परिवेश में हिलमिल जाने के कारण निश्चिंतता आ गयी जो उनके सुख का छोटा सा रूप है।

पाठकगण सावित्री के व्यक्तित्व की पहचान अब तक समझ गये होंगे। यह भी कि उसने सत्यवान से क्यों संबंध विच्छेद कर लिया। सावित्री ने अपने संस्कारों के अनुसार जब एकाएक निर्णय ले लिया कि दोष उसका ही है, कहीं उसकी निर्बलता थी जो सत्यवान जैसे प्रभावशाली व्यक्तित्व के संपर्क में आ जाने के कारण उसकी चेतना पर हावी होती गयी, किंतु वह अपनी भावनाओं पर नियंत्रण रखने का प्रयास करेगी, अन्य कोई विकल्प उसे नहीं सूझा, इसलिए सत्यवान के पूछे जाने पर आज क्यों वह इतने सालों बाद एकाएक छोड़ कर जा रही है, उसने उत्तर नहीं दिया। इसका उत्तर देती भी क्या? एक क्षणिक आवेश में बह कर असुरक्षित हो अपना सर्वस्व सत्यवान को सौंप चुकी थी, इस विडंबना के लिए किसको दोषी माने? किस न्यायालय में जा कर न्याय के लिए याचना करे? सत्यवान की हर स्मृति को संजो कर जीवनपर्यंत और जन्म-जन्मांतर तक रखना संभव न था किंतु उसे न पा सकने के आघात को, शायद स्वयं उसे छोड़ देने के निर्णय में सावित्री को आत्मदाह की अनुभूति हुई होगी। सावित्री ने जीवनकाल में अपनी मृत्यु को मन ही मन कितनी बार निमंत्रण दिया था। मृत्यु जैसा सबसे अधिक मुक्तिदायक विकल्प जब समीप आ जाता है तब व्यक्ति भयाक्रांत हो उठता है। सावित्री भी इस आत्मदाह का संकल्प करते समय विचलित हो छटपटायी, लेकिन सतत संशय और निश्चिंतता के ऊहापोह में झूलते रहने के कारण वह थक कर चकनाचूर हो गयी थी। उसकी अस्मिता को सत्यवान ने समाज में एक रखैल की संज्ञा दे दी थी जिसकी आर्थिक सुरक्षा प्रदान करने का भी उत्तरदायित्व उस पर न था। वह एक पढ़ी-लिखी, आर्थिक रूप से पूर्ण स्वतंत्र और कर्तव्यपरायण साध्वी महिला होने के कारण सत्यवान

से संबंध विच्छेद के विषय में चर्चा किससे करती? उसका प्रेमी सामाजिक उत्तरदायित्वों से पूर्णतया घिरा हुआ था। वह जीवन में अपनी महत्त्वाकांक्षाओं के पूर्ण करने में नैतिक-अनैतिक प्रश्नों में कभी नहीं उलझा था, किसी भी कीमत पर अपनी सफलता की ऊंचाई को प्राप्त करने में दूसरे व्यक्ति को वह एक सीढ़ी की तरह प्रयोग कर सकता था। पत्नी से अधिक एक चिरजीवनसंगिनी का गौरव प्रदान करने हेतु एवं अपनी सामाजिक प्रतिष्ठा को बनाये रखने के लिए अनेक लोगों का उसे सहयोग मिलना अनिवार्य था, विशेषकर अपनी नौकरी से निलंबित होने के बाद वह क़ानूनी फंदे से मुक्त होने के लिए पत्नी और उसके उच्च पद पर आसीन अपने ससुराल के रिश्तेदारों के प्रति आभारी था, जिनकी चर्चा सावित्री से सत्यवान ने अपनी विवशता स्पष्ट करते हुए अनेक बार की थी। सावित्री ने कटु यथार्थ को स्वीकार करने के लिए आत्मदाह का संकल्प कर लिया। सत्यवान से शारीरिक रूप से संबंध विच्छेद का एकाएक निर्णय ले लेने से मानसिक रूप से उसका मन बार बार रोने को होता। उसने सिर से अपना बोझ उतार दिया था किंतु मन करता था कि गिर कर दम तोड़ दे। क्या ऐसा कटु निर्णय करना उसका व्यक्तित्व था? मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से सावित्री का व्यक्तित्व स्वपीड़न रति की ग्रंथि से ग्रसित माना जायेगा। देखा जाये तो प्रेम के लंबे इतिहास में जहां विरहाकुल नायक-नायिका के उत्पीड़न का वर्णन बहुचर्चित रहा है और अनेक अमर गाथाएं हर प्रांत, हर देश में लोककथा के रूप में पायी जाती हैं, क्या ये नायिकाएं सावित्री जैसे व्यक्तित्व की कुंठाओं को उजागर करती हैं? सावित्री के मानसिक रोग के कारण उसके धैर्य का बांध कदाचित् इसलिए टूट गया होगा क्योंकि उसकी नींद नींद न रही, उसकी हर सांस पर सत्यवान की छाप लगे रहने के कारण उसका अपने जीवन पर अधिकार न रहा। किंतु वह पढ़ी-लिखी और आर्थिक रूप से स्वतंत्र होने के अतिरिक्त अति भावुक, श्रद्धालु एवं इस संसार में केवल सत्यवान का हाथ थाम कर चलने के लिए कटिबद्ध थी, उसने अपनी मां से इन संस्कारों को विरासत में पाया था। उसके कार्यक्षेत्र में मानवीय अधिकारों के प्रति सजगता थी, उन्हें दृढ़ता से लेने के लिए स्त्री-पुरुषों में होड़ चल रही थी जिसका सजग उदाहरण उसकी प्रिय सखि मिसेज़ दास थी। ऐसे सामाजिक परिवेश में नारी-पुरुष के रिश्ते तेज़ी से बदल गये हैं, दोनों ही एक दूसरे से अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए, विशेषकर नारी जो पुरुषप्रधान समाज में सदियों से दमन और दासता की त्रासदी भोगती आयी है, वह आज नारी स्वतंत्रता के आंदोलन में अपना झंडा उठा कर पारिवारिक घेरे से निकल अकेली बाहर आ जाती है, उसकी इस वितृष्णा को शांत करने के लिए पौरुष की आवश्यकता नहीं है। पुरुष की कोमल भावनाओं एवं साहचर्य की आवश्यकता है। प्रिया का मान रखने के लिए कहा गया है, 'मानिन राधा देखि, मानी कृष्ण न देखा, याचकता नमती देखी, दानी नमता न देखा।' ऐसे नारी-पुरुष के प्रेम में दोनों की कोमल भावनाओं को परस्पर संरक्षण मिलना अति आवश्यक है। सत्यवान ने आवेश में गंधर्व विवाह कर चुटकी भर सिंदूर सावित्री की मांग में भर देने का दर्प अवश्य

दिखलाया था, किंतु जीवन भर सत्यवान की गृहस्थी में प्रवेश की प्रतीक्षा करते रहने में सावित्री को तटस्थ पाया। लोक निंदा एवं अपनी पद-प्रतिष्ठा के भंग होने के भय ने सत्यवान को आक्रांत रखा, वह सावित्री को एक छोटा-मोटा उपहार तक कभी भेंट न कर सका, क्योंकि उसे पता था कि सावित्री के पास उसके दिये हुए उपहार को देख, कहीं भेद न खुल जाये। वह अपनी प्रिया की मांग को मोतियों से सजाने के कल्पनालोक में पहुंच कर सदैव के लिए विश्वस्त हो गया। सावित्री ने जब कभी सत्यवान को अपनी ओर से कुछ भेंट देने का साहस किया तो सत्यवान ने उसे सदैव प्रताड़ित किया, क्योंकि उसके अनुसार पति का दायित्व जब वह निभा नहीं पा रहा है तब पत्नी की कमाई को कैसे ग्रहण कर सकता है? प्रेमी-प्रेमिका के बीच उपहारों का लेन-देन जो एक सहज प्रक्रिया होती है, विशेषकर नारी हृदय को जीत लेने की चुंबक शक्ति आभूषणों में पायी जाती है, किंतु सब संभव हो कर भी असंभव रहा। दोनों के बीच विश्वास का अटूट सूत्र था। भविष्य में मिलन होने के बाद सत्यवान खुशियों से सावित्री की झोली को भर देगा, इसी आशा में सावित्री अकेली जीवन के झंझावातों से जूझती रही होगी, लेकिन उसे अकस्मात् एक दिन लगा कि सत्यवान के प्रेम में इच्छाशक्ति का अभाव है। वह जो कुछ भी कहता है, वह शब्द जाल फैलाने मात्र के लिए होता है। सत्यवान ने पीछे मुड़ कर नहीं देखा कि सावित्री को मानसिक रोग कब और कैसे हुआ। विश्वास की ज़ंजीर को तोड़ कब से सावित्री घोर निराशा के अंधकार में धंसती गयी है। उसे अपनी निजी उन्नति के शिखर पर जाने के लिए सावित्री के प्रेम के आधिपत्य की आवश्यकता थी जो उसे समय समय पर सावित्री से सहज प्राप्त हो जाता था, उस तात्कालिक अहं तृष्णा को मिटा कर वह समय के अंतराल में बहता गया और सावित्री को अपनी संपत्ति मात्र समझ बैठा, जिसको सुरक्षित रखने के लिए उसे किसी तरह के दायित्व निभाने की आवश्यकता न थी। शायद सच्चे प्रेम की कोमल भावनाओं का सतत शोषण इस प्रणय संबंध के विच्छेद का कारण बना, लेकिन क्या वह सत्यवान के व्यक्तित्व में परपीड़न-रति (सैडिज़्म) ग्रंथि की द्योतक नहीं? सावित्री की कुशाग्र बुद्धि इसके प्रति सजग क्यों नहीं हो सकी? हो सकता है, वह अपने व्यक्तित्व की कुंठा के कारण सतत इतने समय तक इस अत्यधिक घनघोर मानसिक त्रासदी को सहती गयी और मानसिक रोगी बन उपचार करवाने के लिए भटकती रही। इस जन्म में क्या, वह अगले अनेक जन्मों में अपनी नारी देह को ऐसे कामीपुरुष के आमोद-प्रमोद का साधन बनने की अनुमति देने के लिए तैयार न थी। हो सकता है, सावित्री के इन विचारों को समझ लेने के बाद पाठकगण उत्तेजित हो उठें, क्योंकि ऐसा विचार समाज में नारी-पुरुष के वर्गीकरण के प्रदूषण के फैलाने के लिए सशक्त है। यह सावित्री का अपना कटु जीवन अनुभव था जिसने आत्मदाह की ओर फिर आध्यात्मिक जगत् की ओर अग्रसर होने में उसे सुदृढ़ बनाया। अनेक प्रश्न हैं : अध्यात्म से ईश्वर से उसका साक्षात्कार हुआ या नहीं, या यह केवल भ्रांति रही जो उसके अवचेतन मन की स्वपीड़न-रति की द्योतक है?

क्या सत्यवान का सावित्री के प्रति अटूट प्रेम केवल कामवासना मात्र था? यदि सत्यवान-सावित्री की चेतना ने प्रेम को काम का क्षणिक आवेश माना होता तो यह प्रेम प्रसंग गत इतने वर्षों तक कैसे चलता? अवश्य ही दोनों को इस प्रेम में प्रगाढ़ स्नेह मिला, जीवन की अनेक विषमताओं से जूझ सकने की शक्ति और ऐसी सच्चाई जिसको दोष मुक्त हो स्वीकार कर लेने के बाद उसके अलौकिक रूप को इस जीवन में तथा अनेक जन्मों में भुलाया नहीं जा सकता। कदाचित् सावित्री घोर निराशा में भ्रमित हो जाने के कारण अपने विश्वाससूत्र को खो बैठी होगी। उसे चेतना से मिटा देने के लिए सावित्री ने संबंध विच्छेद किया जो एक ज्वलंत सत्य है, किंतु सत्य का सही निरूपण हम पार्थिव मानव कब कर पाये हैं? इसी निराशा में सावित्री का विश्वाससूत्र बिखर कर कहीं लुप्त हो गया। मानव संबंधों में कभी कभी ऐसी जटिल परिस्थितियों का सामना करना पड़ता है जहां बुद्धि भ्रमित हो जाती है, कोई विकल्प नहीं सूझता, लेकिन एक बार ज्ञान आ जाने पर अज्ञानी बन भोगते रहना, केवल अपने और भाग्य को कोसना, मनुष्य की योनि में शोभा नहीं देता। पाठकगण के लिए यह प्रश्न विचारणीय होते हुए भी इन पर निर्णय लेना एक गहन जीवन दर्शन का विषय है। सावित्री सहज रूप से आस्था और विश्वास से प्रेरित बचपन से थी, अतएव सत्यवान के प्रेमपाश में फंसती गयी। पति परमेश्वर, फिर ईश्वर इच्छा के लिए नतमस्तक हो जाना। इन दोनों का प्रेम देखा जाये तो एक अलौकिक शक्ति से संचालित प्रेरणा है। चेतना पर कुठाराघात लगने के कारण सावित्री मानसिक रोगी बनी अवश्य, लेकिन मनोविकार के शिखर पर पहुंच पुनः चेतना का ऊर्ध्वारोहण संभव हुआ और सावित्री मुक्ति के पथ पर बढ़ती गयी है। क्या नायक सत्यवान की कामवासना एवं अहं की तृप्ति के अवरोध ने उसे सावित्री की तरह अंदर झांकने के लिए उद्वेलित किया? यदि दोषमुक्त होने के लिए सत्यवान ने अंतर्मुखी हो अपने व्यक्तित्व की ग्रंथि खोलने का प्रयास किया होता तो अवश्य ही उसने प्रेम में भविष्य में कटिबद्धता का मार्ग अपनाने के लिए अपने को तैयार किया होता। यदि वह जीवन का संध्याकाल आता देख सावित्री को उसे धोखा दे देने के लिए अपराधी मान बैठा होगा तब ऐसी मनोवृत्ति उसके कुंठित व्यक्तित्व की सही पहचान है। ऐसे पुरुषों को नारी के प्रतिशोध के आघात पर आघात जीवनपर्यंत लगते रहते हैं। कहा गया है कि जिसे गिरना आया है, उसे फिर शिखर पर चढ़ना भी आया है। इस संदर्भ में स्वामी जी का लिखित कथन पाठकगण पढ़ कर अपना निर्णय स्वयं करें : 'शुद्ध जीवन की साधना में मानव हृदय के श्रेष्ठ संस्कार खिलते हैं, संयम का गौरव, विवेक का चमत्कार, मर्यादा की शोभा और आत्मबल की पहचान। इस युद्ध क्षेत्र में चरित्र एवं अपने व्यक्तित्व का निर्माण करने और भविष्य उज्ज्वल बनाने के अपूर्व अवसर मिलते हैं। अतएव युद्ध क्षेत्र में विचार, इंद्रिय और देह के सामने एक साथ मोर्चाबंदी करनी होती है। इस सतत संघर्ष में जो अपने प्रयत्न और पुरुषार्थ से, पूर्वजों के आशीर्वाद और प्रभु प्रार्थना से, विजयी होता है वह सचमुच अपने मन, हृदय और देह पर प्रभुत्व कर लेता है।'

उपसंहार

सावित्री के शुद्ध संकल्प का प्रतिफल या यह विधाता का विधान, सत्यवान-सावित्री का संबंध विच्छेद हुए दस साल व्यतीत हो गये हैं। इस बीच सत्यवान ने भी सावित्री की सुधबुध नहीं ली। सावित्री उसकी अवहेलना को झेलने की आदी बनती गयी। कदाचित् उसका अहं आड़े हाथ आता, उसने स्वयं आगे बढ़ कर संबंध विच्छेद की पहल की थी। जीवनपथ की सूनी डगर पर जो भी विघ्न-बाधाएं आयीं, वह समय के अंतराल के साथ सावित्री ने अकेले झेलीं। इस बीच उसकी मां का निधन हुआ जो उसके जीवन में एक भूचाल सा था। ममता भरी मां का आंचल उठने के बाद सावित्री मानसिक रूप से बेहद टूटी, किंतु अपनी नौकरी और नियमित शोधकार्य को करते रहने के कारण समय के साथ साथ वह घाव भरने लगा। वह एकांत में बैठ कर, आंसू बहा कर अपना जी हलका कर लेती। मां की दयनीय कातरता भरी आंखों में समा कर अब वह एक अबोध बालिका की तरह सिसक सिसक कर रो सकने में असमर्थ थी, अवश्य ही विधाता का साया उस पर रहा होगा, क्योंकि उसके कुछ लेख अंतर्राष्ट्रीय ख्याति की पत्रिका में छप गये जिससे उसे आशातीत ख्याति मिली। कार्यालय ने भी उसे प्रोत्साहन देने के लिए निजी लैब में अति आधुनिक वैज्ञानिक उपकरण उपलब्ध करवा दिये और उसे शोधकार्य करने की पूर्ण स्वतंत्रता प्रदान कर दी। लेकिन अपने शोधकार्य को अन्य विद्वानों के विचारार्थ प्रस्तुत करने के लिए जब उसे विचारगोष्ठी या सेमिनार आदि में जाने का निमंत्रण मिला, वह ऐसे सुअवसरों का लाभ न उठा सकी। वह अकेली जा कर अपने शोधकार्य को प्रस्तुत करने में हिचकिचाती थी। यह स्वभाव से अंतर्मुखी होने के कारण था या उसका अंदर ही अंदर पनपता हुआ एक भय था, कहीं वहां जा कर सत्यवान से भेंट न हो जाये, शायद ये दोनों ही कारण रहे होंगे। गत वर्षों में सावित्री ने इसी अंतर्द्वंद्व में कई सुअवसर खो दिये हैं। यह कार्यालय के वरिष्ठ लोगों के सतत कहने-सुनने का रिज़ल्ट रहा होगा, क्योंकि इस बार बनारस में आयोजित अंतर्राष्ट्रीय सेमिनार में शोधकार्य को प्रस्तुत करने को सावित्री ने अपनी स्वीकृति दे दी। सावित्री पूरी तैयारी के साथ अपने शोधकार्य का प्रपत्र ले कर वहां प्रस्तुत हेतु पहुंच गयी।

जिसका भय था, वही घटना अनायास बनारस की विचारगोष्ठी में आ खड़ी हुई। सावित्री ने अपने शोधकार्य को बड़ी शालीनता के साथ प्रस्तुत किया और सभा में खड़े

हो कर अन्य वैज्ञानिकों के विचारों से अवगत होने के लिए धैर्य से प्रश्नकाल की प्रतीक्षा की। शांत वातावरण में एक चिर-परिचित आवाज़ एकाएक गूंज पड़ी, "मिस सावित्री, आपने यह शोधकार्य स्वतंत्र रूप से जिस लगन के साथ पिछले कई वर्षों से किया है, उसी का नतीजा है कि आज इस विषय में आपका नाम और कार्य वैज्ञानिकों में चर्चित हो रहा है, किंतु क्या आपने यह शोधकार्य मेरी लैब में मेरे साथ काम करते हुए शुरू नहीं किया था? जैसा मुझे ध्यान है, इस विषय में आपकी रुचि उत्पन्न करवाने का सौभाग्य मुझे प्राप्त है। किंतु प्रयोगों द्वारा सिद्धांत का प्रतिपादन और गहराई में जा कर उसकी खोज करने में मैं असमर्थ रहा हूं। निःसंदेह वह कार्य आपने अपनी मेहनत और लगन से पूरा किया है, उसके लिए मेरी ओर से आपको हार्दिक बधाई।"

सत्यवान का यह कथन सुन कर सावित्री का चेहरा लाल हो उठा। वह कुछ उत्तर दे पाती, उससे पहले एक युवा वैज्ञानिक ने बीच में उठ कर सत्यवान की ओर पैनी निगाह डाल कर संबोधित किया, "लगता है, आप उनके गुरु होने का दावा पेश कर रहे हैं, लेकिन गुरु गुरु रहे, चेला शक्कर बन गया है।"

इस संवाद को दबाने के लिए सभापति ने उठ कर दोनों को शांत किया, "कृपया एक दूसरे से तर्क-वितर्क करने के लिए पहले मेरी आज्ञा लें या मेरे पास अपना प्रश्न लिख कर भेजें, इस तरह एक दूसरे पर कटाक्ष करने की अनुमति मैं नहीं दूंगा। यदि किसी को इस शोधकार्य पर टिप्पणी करनी है या कोई सुझाव देना है या असहमति प्रकट करनी है तो अवश्य करें, मैं अपने वरिष्ठ विद्वान साथी सत्यवान जी से अनुरोध करूंगा कि वह मिस सावित्री से अकेले में संपर्क स्थापित कर अपनी जिज्ञासा शांत करें। विज्ञान में अनेक शोधकार्य अन्य विद्वानों के सतत चिंतन और प्रयोग द्वारा ही ऐसी उच्च स्थिति में बहुधा पहुंचाये जाते हैं। एक मेधावी युवा विद्वान अपने मौलिक अध्ययन द्वारा उसे ऐसे शिखर पर पहुंचा देता है जहां पहले कोई पहुंच नहीं पाया था, इस एवरेस्ट की चोटी पर पहुंचने का श्रेय निःसंदेह इस विदूषी महिला को है। यदि अब कोई अन्य प्रश्न न हो तो धन्यवाद। सावित्री अपना शोधकार्य लगन के साथ करती रहें, यही हमारा सबका आपके लिए संदेश है। यह सभा यहीं विसर्जित होती है, अल्पाहार के लिए सब उपस्थितजन आमंत्रित हैं," कह कर सभापति ने अपना आसन छोड़ दिया।

सावित्री अपने काग़ज़ और स्लाइड आदि को संभालने में व्यस्त हो गयी और सत्यवान अन्य वरिष्ठ वैज्ञानिकों के साथ वार्तालाप करता हुआ सभागार से बाहर निकल गया। सावित्री अत्यधिक संवेगित हो जाने के कारण इस मनःस्थिति में न थी कि वह अल्पाहार कर सके। सबसे दूर भाग कर सभागार से अपने कक्ष में आ वह अकेले में अपना मुंह छिपा घंटों रोती रही। उसके अंतरतम की दारुण व्यथा को कोई भी समझ नहीं सकता था। काश, वह सत्यवान को बतला पाती कि सत्य क्या है!

पूरे दिन सावित्री के एकाएक सेमिनार से ग़ायब हो जाने से वैज्ञानिकों की सभा में सत्यवान पर छींटाकशी होना स्वाभाविक था लेकिन सारा कार्य विधिवत समाप्त हो जाने

के बाद ही सत्यवान ने सावित्री की खोज निकालना उचित समझा।

अंधेरा व्याप्त होने से पहले वह सभागार से बाहर निकलने में असमर्थ था। उसे भय था कोई उसे सावित्री के कक्ष की ओर जाते हुए देख न ले। इसके अतिरिक्त अंदर ही अंदर उसका अहं सर्प की तरह फुफकारें ले रहा था, अपने आपको यह महिला क्या समझती है? मैंने ही इसे नौकरी दिलवायी थी। कितना मान-सम्मान दिलवाया है जिसका नतीजा है यह आज इतनी अधिक ख्याति पा सकी है। मानो सावित्री उसकी ही बनायी हुई एक संरचना थी जिसे बना कर वह दर्पित था। आज अपना नाम लिखा हुआ न देख कर वह सावित्री से अपनी अवहेलना के लिए प्रतिशोध लेने के लिए लालायित था। लेकिन सत्यवान के अंतर्मन की भावनाओं में सावित्री के प्रति प्रेम का एक आकर्षण था जिसके खिंचाव में उसके जैसा अहंकारी पुरुष सावित्री के कक्ष के पास पहुंच कर इस बात की चिंता से मुक्त था कि सावित्री की क्या प्रतिक्रिया होगी? केवल अपनी मानिन प्रिया को मना सकने की लालसा एकाएक उसे उद्वेलित करने लगी।

सावित्री गेस्ट हाउस के पीछे कमरे में ठहरी हुई है, यह जान कर वहां सत्यवान सीधा जा पहुंचा। दरवाज़े पर देर तक दस्तक देने के बाद जब वह खुला नहीं तब वह निराश हो कर लौटने ही वाला था कि अस्तव्यस्त वेशभूषा में सावित्री ने दरवाज़ा आधा खोल कर धीमी आवाज़ में पूछा, "कौन है? मुझे इस समय किसी वस्तु की आवश्यकता नहीं है, कृपया मुझे डिस्टर्ब न किया जाये, बाहर से 'चुप रहने के लिए' लटका हुआ कार्ड लगा हुआ है।"

"मैं हूं, सत्यवान, दरवाज़ा खोलो, मैं भीतर आ कर तुमसे कुछ कहने की अनुमति चाहता हूं।" स्वर अत्यंत विनीत था, मानो चिरकाल से जिसकी प्रतीक्षा थी, वह महापुरुष सामने खड़ा था। सावित्री ने दरवाज़ा खोल दिया।

सत्यवान दबे पैरों से अंदर आ गया, लेकिन कमरे में छाये अंधकार को देख उसका मन निराशा से भर उठा। उसने सहमे स्वर में लाइट जला देने के लिए कहा। सावित्री ने तुरंत लाइट जला दी और चुपचाप एक कोने में पड़ी कुर्सी पर संयत हो कर बैठ गयी।

"इस समय मैं दोपहर के बारे में पूछने नहीं आया हूं, विचारगोष्ठी में नोकझोंक कर देना मेरी आदत है। फिर विचारगोष्ठी में ऐसी चर्चा करना केवल औपचारिकता मात्र होती है। आशा है, तुम मुझे अन्यथा नहीं समझोगी, तुम्हें अपने से अलग देख कर मैं बेहद विचलित हो जाता हूं। तुम मेरे लिए क्या हो, कैसे बतलाऊं? मेरे पास अपनी भावनाओं को कहने के लिए शब्द नहीं हैं, क्योंकि मैं वैज्ञानिक हूं, लेखक नहीं। लेकिन एक पुरुष क्या दो स्त्रियों को एकसाथ प्यार नहीं कर सकता? तुम मुझे अपने शरीर को छूने का भी अधिकार मत दो लेकिन यह सच है, मैं तुम्हें अपने दिल में सदा ही संजोये रखता हूं। अपनी पत्नी को मैंने वह सब कुछ दिया है जिस पर समाज और धर्म द्वारा उसका एकाधिकार है किंतु दिल तो मैंने तुम्हें दिया है।"

"अपना पुराना प्रलाप करने के लिए आपको यहां नहीं आना चाहिए था," कटुता

भरे स्वर में कह कर सावित्री कुर्सी छोड़ बाहर जाने के लिए खड़ी हो गयी।

"नहीं, तुम क्यों बाहर जाओगी? यह तुम्हारा कक्ष है, यदि मुझे कुछ कहने की''वर्षों से दबी अपनी भावनाओं को व्यक्त करने की भी अनुमति नहीं देनी हो तो मैं स्वयं उलटे पैर लौट जाता हूं," कह कर सत्यवान ने सावित्री का मार्ग दृढ़पूर्वक अवरुद्ध कर दिया।

सावित्री इस प्रहार से बाण लगे पक्षी सी कटी पलंग पर लेट गयी। सत्यवान दूर बैठ कर प्रतीक्षा करने लगा कि कब सावित्री अपनी भावनाओं के बढ़ते तूफ़ान से उबर कर तट पर लौट आये। इस मौन प्रतीक्षा में समय मानो थिर हो कर स्तब्ध खड़ा हो गया था। निरंतर बढ़ते रात्रि के अंधकार में सावित्री को सहज भाव में लाना अत्यंत कठिन होता गया। उसके गालों पर बहते अविरल अश्रु को पोंछ सकने की शक्ति सत्यवान में नहीं थी। अपने को इतना अधिक टूटा हुआ सत्यवान ने पहले कभी अनुभव नहीं किया था। अपनी समस्त विवशता को आत्मसात् करने के प्रयास में सत्यवान के मुंह से निकल पड़ा, "एक बात मैंने तुम्हें अभी तक नहीं बतलायी है कि मेरी पत्नी को एक असाध्य रोग है। उसके दिल में एक सूराख है जिसको डॉक्टरों ने हमारी पहली संतान के पैदा होते समय जांच द्वारा मालूम कर लिया था। यह जान कर कि वह ज़्यादा दिन जिंदा नहीं रह सकती, मैंने और उसके घर वालों ने उसकी पूरी डॉक्टरी देखभाल की है। हमें सदैव उसकी सुख-सुविधा का ख़याल रहता है। मैं तुम्हारे प्रति कोई कर्तव्य निभा नहीं सका हूं, इसका अवश्य दोषी हूं। हो सके तो मुझे माफ़ करना, लेकिन मैं अपनी पत्नी को तिलतिल जला कर मार नहीं सकता हूं। मैं उससे संबंध विच्छेद नहीं कर सकता हूं, वह मेरे बिना जी नहीं सकेगी।"

यह प्रलाप सुन कर सावित्री के मुंह से अपनी भावनाओं को व्यक्त करने के लिए शब्द नहीं निकल सके, केवल आंसुओं की धार अवश्य थम कर सूखने लगी। सत्यवान ने साहस करके सावित्री का हाथ थामना चाहा लेकिन वह टूटी पतंग सी गिरती-पड़ती उसकी पहुंच से दूर होती गयी।

कुछ देर तक सन्नाटा छाया रहा, सत्यवान ने पुनः साहस किया, "मुझे तुम्हारे शरीर पर अपना अधिकार नहीं चाहिए, लेकिन तुम्हारी अवहेलना मेरे लिए असहनीय है। तुम्हें सामने देख कर मैं अपने दिल पर पत्थर नहीं रख सकता, जैसे मैं अपनी पत्नी के प्रति अपने कर्तव्यों से मुंह नहीं मोड़ सकता। मैंने चाहा कि इस जीवन में दो पत्नियों का भार वहन कर सकूं, इसीलिए भावनात्मक रूप से तुम्हारे सहारे के लिए आया हूं," कहते हुए सत्यवान अपना एकाधिकार सुरक्षित करने की चेष्टा में सावित्री के पास पलंग पर आ कर लेट गया।

सावित्री की समस्त चेतनाशक्ति मानो लुप्त हो गयी हो। वह निढाल हो आज पूर्ण रूप से सत्यवान के प्रति समर्पित होती गयी। पलंग पर सत्यवान ने प्रेमपूर्वक उसे अपने समीप लिटा लिया और एक अबोध बालक सा स्नेहातुर हो उसके वक्षस्थल से चिपक

गया, मानो उसका समस्त पुरुषत्व क्षमा-याचना कर रहा हो! कुछ समय के अंतराल में सावित्री को अनायास प्रतीत हुआ कि नारी हृदय की कोमल भावनाओं पर तुषारापात हो रहा है। उस असह्य पीड़ा ने मानो सावित्री को एक अमोघ शक्ति प्रदान कर दी हो, वह अपने को सत्यवान के प्रगाढ़ आलिंगन से मुक्त कर बोल उठी, "मैंने कदापि नहीं चाहा कि आप अपनी पत्नी को जीते जी मार डालें। जिस विरह वेदना में मैं तिल तिल कर जी रही हूं, ऐसा अभिशाप मेरे किसी दुश्मन को भी न मिले। मेरे लिए इतना ही पर्याप्त है कि मुझे आप मुक्त कर दें।"

सत्यवान यह सुन कर अवाक् रह गया। पत्नी के पास वापस लौट जाने के अतिरिक्त दूसरा कोई विकल्प न था। सावित्री ने सत्यवान के विवाह को सुरक्षित करने की जो पहल की थी, वह सावित्री का पूर्ण निष्ठा से अपने प्रेमी को सुखी कर देने का क्या भ्रममात्र कहा जायेगा? इसकी पहचान तो सच्चा प्रेम करने वाले दो युगल प्रेमी ही कर सकते हैं। पाठकगण का ध्यान सावित्री की तरह अन्य पढ़ी-लिखी महिलाओं की ओर अवश्य जायेगा जिनका शोषण समाज में स्वपीड़न-रति के कारण होना संभव होता है। निरंतर पीड़ा में आनंद ढूंढ़ना सावित्री जैसी नारी के व्यक्तित्व की क्या सही पहचान है? इस मनोवैज्ञानिक तर्क को पढ़ कर पुरुष जाति विश्वस्त अवश्य हो जाये किंतु उसके स्वार्थ और दंभ भरी मूर्खता से ही उसका अर्द्धांग नारी जाति पीड़ित है।

अमृतलाल नागर जी की नायिका माधवी ने इस कटु सत्य को पागलपन की सीमा लांघ, अपनी लंबी चुप्पी को तोड़ दिया : 'एकांगी दृष्टिकोण से सोचने के कारण ही पुरुष न तो स्त्री को सती बना कर सुखी कर सका और न वेश्या बना कर। इसी कारण वह स्वयं भी झकोले खाता है और खाता रहेगा। नारी के रूप में न्याय रो रहा है, महाकवि। उसके आंसुओं में अग्नि प्रलय भी समायी है और जल प्रलय भी' (पृ. 223, 'सुहाग के नूपुर')।

यह सब जान कर क्या आज की नारी अपनी दुर्गति में आनंद ले सकेगी? क्या चेतन-अवचेतन मानसिक ऊहापोह में उसके सारे मानव अधिकार और संकल्प निगल जायेंगे? ऐसी दुर्बल दुबिधा में बंधी नारी कभी किसी पुरुष को सहारा नहीं दे सकती, न ही उसकी सामाजिक विषम परिस्थितियों को दोषी कह कर उसे निर्विकार तटस्थ हो जाने की स्वतंत्रता दी जा सकती है। मानसिक रोग मानो एक पड़ाव है जिसे पार करके स्त्री-पुरुष दोनों को सम्यक् चित्त (शरीर, मन एवं बुद्धि की एकात्मकता) हो अपना अपना प्रेम में पगा स्वतंत्र व्यक्तित्व खोजना पड़ता है।